प्रवचन-क्रम

1. आलोक हमारा स्वभाव है 2
2. ये फूल लपटें ला सकते हैं 20
3. प्रेम बड़ा दांव है....... 39
4. प्रार्थना या ध्यान? 58
5. धर्म क्रांति है, अभ्यास नहीं....... 81
6. प्रार्थना अंतिम पुरस्कार है....... 105
7. बोध क्रांति है 128
8. प्रेम ही धर्म है....... 150
9. जो है, उसमें पूरे के पूरे लीन होना समाधि है....... 169
10. जरा सी चिंगारी काफी है 192

पहला प्रवचन

आलोक हमारा स्वभाव है

पहला प्रश्नः भगवान,

"साहेब मिल साहेब भये" नई प्रवचनमाला के प्रारंभ में हम आपका स्वागत करते हैं, प्रणाम करते हैं और विनती करते हैं कि आप हमें बताएं कि परमात्मा को "साहेब" क्यों कहते हैं?

आनंद संत, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जैसा कि साधारणतः समझा जाता है। उस भ्रांत समझा के कारण ही मंदिर बने, मस्जिद बने, काबा बने, काशी बने; मूर्तियां, हवन-यज्ञ, पूजा-पाठ, पांडित्य-पौरोहित्य, सारा सिलसिला, सारा शडयंत्र, मनुष्य के शोषण का सारा आयोजन हुआ। सारी भ्रांति एक बात पर खड़ी है कि जैसे परमात्मा कोई व्यक्ति है।

परमात्मा का केवल इतना ही अर्थ है कि अस्तित्व पदार्थ पर समाप्त नहीं है। पदार्थ केवल अस्तित्व की बाह्य रूपरेखा है, उसका अंतस्तल नहीं। परिधि है, केंद्र नहीं। और परिधि मालिक नहीं हो सकती। केंद्र ही मालिक होगा। इसलिए परमात्मा को "साहेब" कहा है।

कहना कुछ होगा, नाम कुछ देना होगा। लाओत्सु ने कहाः उसका कोई नाम नहीं है, इसलिए मैं "ताओ" कहूंगा। मगर वक्तव्य पर ध्यान देना। उसका कोई नाम नहीं, फिर भी इशारा तो करना होगा, अंगुली तो उठानी होगी, उसका कोई पता-ठिकाना तो देना होगा, अंधों तक उसकी कोई खबर तो पहुंचानी होगी, बहरों के कान में चिल्लाना तो होगा, सोयों को झकझोरना तो होगा। सभी नाम उपचार मात्र हैं। कोई भी नाम दो। काई भी नाम दिया जा सकता है।

बुद्ध ने उसे धर्म कहा। महावीर ने उसे परमात्मा ही कहा, लेकिन हिंदुओं ने बहुत भिन्न अर्थ दिये। हिंदुओं का अर्थ हैः वह, जिसने सबको बनाया। स्रष्टा, नियंता, सर्वनियामक। महावीर का अर्थ हैः आत्मा की परम शुद्ध अवस्था--परम आत्मा।

अर्थ कुछ भी दो, नाम कुछ भी दो, अनाम है अस्तिव तो। लेकिन बिना नाम दिये काम चलेगा नहीं। बच्चा भी पैदा होता है तो अनाम पैदा होता है। फिर कुछ पुकारना होगा। तो राम कहो, कृष्ण कहो, रहीम कहो, रहमान कहो। सब प्रतीक हैं, इतना स्मरण रहे तो फिर कुछ भूल नहीं होती। लेकिन प्रतीक को ही जो जोर से पकड़ ले, प्रतीक को ही जो सत्य मान ले, तो भ्रांति हो जाती है। चित्र चित्र है, इतनी स्मृति बनी रहे तो चित्र भी प्यारा है। लेकिन चित्र ही सब कुछ हो जाए तो चूक हो गयी। जिससे सहारा मिलना था, वही बाधा हो गया। मूर्ति मूर्ति है तो प्यारी हो सकती है।

बुद्ध की मूर्तिया, महावीर की मूर्तियां, कृष्ण की मूर्तियां, प्यारी हो सकती हैं--प्रतीक समझो तो। तो कृष्ण की बांसुरी बजाती हुई मूर्ति उत्सव का प्रतीक है--नृत्य का, गीत का। कृष्ण की नृत्य की मुद्रा में खड़ी मूर्ति इस बात की खबर है कि अस्तित्व उदासीनों के लिए नहीं है। जिन्हें जीना हैं, जो जीने के परम अर्थ को जानना चाहते हैं, वे नाचें, गाएं, गुनगुनाएं; उड़ाएं रंग, जीवन को उत्सव बनाएं। उदासीन तो जीवन से भागता हैं, भगोड़ा होता हैं, पलायनवादी होता है, जीवन विरोधी होता हैं। और जीवन के सत्य को जीवन की तरफ पीठ करके कैसे पा सकोगे? चूक सकते हो, पा नहीं सकते। जीवन में गहरे उतरना होगा, डुबकी मारनी होगी--ऐसी कि लीन ही हो जाओ, कि लौट कर आने को भी कोई न बचे।

रामकृष्ण कहते थे, नमक का एक पुतला सागर की थाह लेने गया था, फिर लौटा ही नहीं। लौटे भी कैसे? थाह लेते लेते ही लीन हो गया। नमक का ही पुतला था, सागर से ही बना था, सागर से ही आया था, सागर में ही वापस हो गया, लौटे कौन? खबर कौन दे कि कितना गहरा है सागर? गहराई जिसने पायी, वह गहराई हो गया। जीवन से पीठ करोगे, सागर की तरफ पीठ करके भाग खड़े होओगे, तो तुम सोचते हो कि तुम सागर की गहराई जान पाओगे? फूलों से आंख बंद कर लोगे, तो सौंदर्य से पहचान कैसे होगी? इंद्रधनुषों से जी चुराओगे और फिर भी सत्यम शिवम सुंदरम का पाठ करते रहोगे? सब तरह से अपने को कुरूप करोगे, विरूप करोगे, विकृत करोगे और फिर भी संकोच न करोगे, शर्माओगे भी नहीं? फिर भी सत्यम, शिवम, सुंदरम का उदघोष? विरोधाभास भी न देखोगे? सत्य की परम अभिव्यक्ति है सौंदर्य। तो सौंदर्य को पहचानना होगा, जानना होगा, आत्मसात करना होगा, आलिंगन करना होगा। तब जान सकोगे, तब पहचान सकोगे।

वह जो कृष्ण के पीतांम्बर वस्त्र हैं, वह जो मोर-मुकुट है, वह जो हाथ में सधी बांसुरी हैं, वह जो पैर नृत्य की मुद्रा में हैं, वह जो पैरों में घूंघर बंधे हैं, वे सब खबर दे रहे हैं इस बात की कि उसका मार्ग केवल नर्तक ही पूरा कर पाए हैं। ऐसा प्रतीक समझो तो कृष्ण की मूर्ति प्यारी है। मगर तुम कृष्ण को भोग लगाओ, उठाओ, बिठाओ, झूला झुलाओ--पत्थर की मूर्ति को या धातु की मूर्ति को--तो तुमने फिर मूल से ही भूल कर दी। तुमने प्रतीक को ऐसा पकड़ा, उसकी ऐसी गर्दन दबायी कि उसके प्राण ही निकल गये।

महावीर की प्रतिमा के सामने सिर पटकने से कुछ भी न होगा--सिर टूट सकता है--महावीर की प्रतिमा को समझो। वह जो नग्न खड़ी प्रतिमा है, वह एक दूसरा इशारा, एक दूसरी अंगुली। एक कृष्ण हैं, सुंदर वस्त्रों में, आभूषणों में, मोर-मुकुट में, वह एक इशारा, एक ढंग का इशारा। चांद एक हो, अंगुलियां तो हजार तरफ से उठ सकती हैं। अंगुलियां तो हजार तरह की हो सकती हैं। अंगुलियों का भेद चांद को भिन्न भिन्न नहीं कर देता। मगर पागल हैं ऐसे लोग, अंगुलियों को पकड़ लेते हैं! चांद से तो प्रयोज ही नहीं, अंगुलियों पर झगड़ा! कि किसकी अंगुली सुंदर? कि किसकी अंगुली श्रेष्ठ? कि किसकी अंगुली प्यारी? कि किसकी अंगुली पुरानी? कि किसकी अंगुली शास्त्रीय? कि किसकी अंगुली के पक्ष में वेद, उपनिषद, गीता? कि किसकी अंगुली की चर्चा कुरान में, बाइबिल में? कौन सी अंगुली चांद की तरफ उठने का अधिकार रखती है? अंगुलियों पर उलझे हो। छोटे बच्चों की भांति हो। जैसे छोटे बच्चों को मां का स्तन न मिले तो अपनी अंगुलिया ही चूसने लगते हैं। स्तन से तो चूके जा रहे हो, पोषण से तो चूके जा रहे हो, चांद की तरफ तो आंख नहीं उठाते जहां से अमृत बरसे, अंगुलियों को चूस रहे हो!

छोटा बच्चा अंगुली चूसते चूसते सो जाता हैं। सोचता है कि मिल गया स्तन। सोचता है पा लिया पोषण। छोटे बच्चे को हम क्षमा भी कर सकते हैं, मगर यहां बड़े-बूढ़े भी छोटे बच्चों की तरह अंगुलियों को चूसते चूसते सो रहे हैं। कुछ भेद नहीं है।

प्रतीकों को लोग अति आग्रहपूर्वक पकड़ लेते है। इससे चूक हो जाती हैं। नहीं तो कृष्ण का सजा हुआ रूप भी एक इशारा है, महावीर की नग्न खड़ी प्रतिमा भी एक इशारा है। और जो समझता है, उसके लिए दोनों अंगुलियां एक ही चांद को दिखा रही हैं। महावीर की नग्न प्रतिमा कह रही हैः ऐसे निर्दोष हो जाओ, ऐसे जैसे छोटा बच्चा निर्दोष होता हैं; जिसे पता भी नहीं कि मैं नग्न हूं या नहीं। जिसे पता भी नहीं कि मैं पुरुष हूं कि स्त्री। जिसे छुपाने का अपने को अभी भाव नहीं आया। जहां छुपाने का भाव आया, वहां कपटता आयी, वहां चालबाजी आयी, होशियारी आयी, धोखधड़ी आयी, अहंकार आया। छोटा बच्चा नग्न है, उसे पता ही नहीं।

बाइबिल की कथा कि जब अदम ने ज्ञान के वृक्ष का फल खाया, तो जो पहला ख्याल उसे आया वह यह था कि मैं नग्न हूं। उसने जल्दी से पत्ते तोड़े और अपनी नग्नता पत्तों से ढक ली। जब तक ज्ञान का फल नहीं चखा था तब तक नग्नता का कुछ पता ही न था। तब तक एक नैसर्गिक सौंदर्य था, एक सहजता थी। वह खो गयी--तत्क्षण खो गयी। हर बच्चा अदम की तरह ही पैदा होता है--निष्कपट, निष्कलुष, कहीं कोई कालिख नहीं, कहीं कोई दाग नहीं, छुपाने का कोई सवाल नहीं। कहीं कोई पाप नहीं है, किससे छिपाना है, क्या छिपाना है? अभी यह भी सवाल नहीं हैं कि मैं पृथक हूं। अभी अस्तित्व के साथ एकता है।

ऐसी ही महावीर की नग्न खड़ी प्रतिमा है, कि जिस दिन तुम भी ऐसे निर्दोष हो जाओगे, छोटे बच्चे की भांति, उस दिन परमात्मा हो। उस दिन पा लिया। पा लिया पाने योग्य जो है। सब धनों का धन, राज्यों का राज्य, परम पद।

लेकिन वही मूढ़ता कि लोग नग्नता की साधना कर रहे हैं!

नग्नता साधना की बात नहीं हैं। क्योंकि साधी गयी नग्नता सरल नहीं हो सकती। बात इतनी सीधी और साफ है, साधी गयी नग्नता सरल नहीं हो सकती। बच्चा कोई नग्नता थोड़े ही साधता है, कि मां के पेट में नौ महीने नग्नता का अभ्यास करता है, वह नग्नता सहज है।

ऐसे ही ध्यान की एक घड़ी में जीवन ऐसा निष्कलुष हो जाता हैं। फिर तुम कपड़े उतारो कि न उतारो, वह गौण बात है। कुछ सभी जाग्रत पुरुषों ने कपड़े उतार दिये ऐसा भी नहीं, मगर एक गहरे अर्थ में सभी ने कपड़े उतार दिये। उनके और अस्तित्व के बीच कोई पर्दा न रहा, बेपर्दा हो गये। उन्होंने अस्तित्व के सामने अपने को खोलकर रख दिया। इतना तो प्रतीक है। इससे ज्यादा खींचा कि तुम मूढ़ता में पड़े।

अब जैन मुनि है जो अभ्यास करता है नग्नता का--पांच सीढ़ियों में अभ्यास करना पड़ता है। क्योंकि एकदम से नंगे खड़े हो गए तो जरा शर्म भी लगेगी, बेचैनी भी लगेगी--लोग क्या कहेंगे, क्या न कहेंगे। तो धीरे-धीरे पहले वस्त्र कुछ छोड़े--एक चादर रखी--फिर चादर भी छोड़ दी, लंगोटी रखी, फिर धीरे धीरे लंगोटी छोड़ी, यों छोड़ते छोड़ते, क्रमशः गणित से, हिसाब से--मगर यह सारा हिसाब ही तो चालबाजी है। फिर नग्न ही खड़े हो गये तो इस नग्नता और महावीर की नग्नता में फर्क हो गया। यह नग्नता सर्कसी है। क्योंकि अभ्यासजन्य है। महावीर की नग्नता सहज हैं, अभ्यासजन्य नहीं है।

महावीर के जीवन में बड़ा प्यारा उल्लेख है। जिसे मैं कहते कहते थकता नहीं! वे सब छोड़कर जंगल चले जाना चाहते थे। देख लिया सब। राज्य देखा, राज्य का वैभव देखा, सुख सुविधा देखी, सब देखा। लेकिन मां से आज्ञा लेनी चाही। और मां ने कहा कि भूलकर भी दुबारा यह बात मत उठाना जब तक मैं जिंदा हूं। मैं बर्दाश्त न कर सकूंगी। मेरे मर जाने के बाद जो तुम्हें लगे, करना। महावीर ने कहा, जैसी मर्जी। फिर बात ही न उठायी। चौंकने जैसा मामला है। इतने जल्दी राजी हो गये! इतनी सरलता से राजी हो गये! अदभुत आदमी रहे होंगे। जिद की होती कि यह मामला संन्यास का है। पहले तो आज्ञा लेने का कोई सवाल ही न था। जिसको सब छोड़कर जाना है, वह आज्ञाएं लेगा! और कौन आज्ञा देगा! और कोई भी आज्ञा नहीं देगा तो बस रुक गये! कोई कहानी को ऊपर से देखेगा तो लगेगा यह तो बचने का ढंग है। पहले ही से सोचा विचारा था। न मिलेगी आज्ञा, न जाने की जरूरत आएगी। लेकिन नहीं, मामला कुछ और ही था, गहरा था।

मां की मृत्यु हुई। तो मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई से आज्ञा मांगी, कि अब मुझे आज्ञा दे दें। मां ने यह कहा था कि जब तक वह है, तब तक न कहूं, तो चुप रहा। बड़े भाई ने कहा, तुम्हें होश है या तुम बेहोश हो? तुम पागल तो नहीं हो? एक तो मां मर गयी, अब तुम्हीं मेरे एकमात्र सहारे हो, तुम भी मुझे छोड़कर चले

जाओगे? पिता चल बसे, मां चल बसी, अब तुम्हारे सिवाय मेरा कोई भी नहीं; जब तक मैं जिंदा हूं, भूलकर यह बात मत करना। महावीर ने कहा, जैसी मर्जी। मां का मरना तो संभव भी था, कि चलो वृद्ध है, आज नहीं कल चल बसेगी, तो फिर संन्यस्त हो जाएंगे, लेकिन बड़े भाई में और महावीर में तो उम्र का भी कोई ज्यादा फासला नहीं था--दो साल का। यह भी हो सकता है महावीर ही पहले मरें। यह बड़े भाई की मौत कब होगी! मगर रुक रहे।

लेकिन तीन-चार वर्ष के भीतर ही बड़े भाई ने सारे परिवार के लोगों को इकट्ठा किया और कहा कि अब रोकना उचित नहीं हैं। क्योंकि अब कुछ रुका नहीं है। महावीर यूं रहने लगे घर में ही जैसे हों ही न। उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, मगर शून्यवत। थे भी और नहीं भी थे। सब अभिनय हो गया। कोई रस न रहा। किसी काम में कोई उत्सुकता न रही। कोई कहता तो कर देते--इनकार भी नहीं था, कोई न कहता तो बैठे रहते, करने की कोई आकांक्षा भी न थी। उनकी इस भावदशा को देखकर महावीर के भाई ने परिवार के सारे लोगों से कहा कि अब उचित नही है रोकना। क्योंकि आत्मा से तो यह जा ही चुका, शरीर ही रह गया है, तो शरीर को भी हम रोकने के भागीदार क्यों बनें? हम क्यों यह पाप अपने सिर लें? इसका जुम्मा हमारा है। जहां तक इसका वश है, वहां तक तो यह गया, यह जंगल में ही है, अब इसे महल वगैरह दिखायी नहीं पड़ता, इसे कुछ दिखायी नहीं पड़ता; न धन-दौलत से कुछ लेना देना है; न किसी परिवार की, राज्य की उलझानों में कोई रस है, न कोई उत्सुकता है; पूछो तो हां-हूं कर देता है, न पूछो तो घर में आग भी लगी रहे तो यह बैठा देखता रहेगा--साक्षी मात्र। अब यह साक्षी का भाव इतना गहरा हो गया है कि रोकना उचित नहीं।

भाई ने खुद महावीर से प्रार्थना की कि तुम तो जा ही चुके, अब हम तुम्हारे शरीर को क्यों रोकें? तुम जाओ, तुम खुशी से जाओ।

तो महावीर चल पड़े। उठे और चल पड़े। एक अपूर्व सहजता है। रोक लिया, रुक गये, जाने दिया, चल पड़े। जो उनकी निजी चीजें थीं, बांट दीं। सिर्फ एक वस्त्र बचा था। वह भी रास्ते में आखिरी एक भिखमंगा मिल गया और उसने कहा कि मुझे कुछ भी नहीं मिला। मैं भागा आ रहा था, आप तो सब बांट ही चले। मेरे हिस्से का क्या हुआ? तो महावीर ने कहा, अब यह वस्त्र ही बचा है, कीमती है, आधा आधा कर लें। तू बेचेगा तो काफी तुझे मिल जाएगा। तो आधा आधा कर लिया। यूं आधे नग्न हो गये। अभ्यास से नहीं, आकस्मिक। संयोगवशात।

फिर गांव से निकलते वक्त बबूल की झाड़ी में आधा वस्त्र उलझ गया। तो अब कौन रुके! यूं भी बहुत देर रुक चुके थे। अब यह वस्त्र को कौन सुलझाए और निकाले बबूल की झाड़ी से। और फिर झाड़ी ने इतने आग्रह से मांगा है वस्त्र को, सो आधा वस्त्र झाड़ी को दे दिया। यूं नग्नता आयी।

इस नग्नता में और तथाकथित जैनमुनियों की नग्नता में जमीन-आसमान का भेद है। यूं कहा कि तू भी ले ले, अब और तो कुछ बचा भी नहीं है। यह सीमा थी राज्य की। यह बबूल की झाड़ी सीमा पर थी। कहा कि यह कुछ तेरा भी हिस्सा होगा, होगा किसी जन्म का कुछ लेना-देना, तू भी ले ले। अब न मुझे फुरसत है रुकने की, न इस कपड़े को सुलझाने की--और क्या तुझसे छीनूं! जब सब दे दिया तो इस छोटे से टुकड़े के लिए अब क्या उपद्रव करना।

यूं नग्नता आयी। यह अभ्यास नहीं था।

महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकर वस्तुतः नग्न नहीं थे। चौबीसों मूर्तियां तीर्थंकरों की नग्न हैं, उसका कारण है, महावीर की छाप। उसका कराण हैः, महावीर का ऐसा प्रभाव पड़ा--यद्यपि महावीर अंतिम तीर्थंकर हैं, वस्तुतः लेकिन वे ही प्रथम हैं। तेईस तीर्थंकर उनके पहले जो आए थे, सब फीके पड़ गये। महावीर के सूरज ने

सबके सूरज को धुंधला कर दिया। और महावीर की छाप ऐसी पड़ी कि नग्न होना तीर्थंकर होने के लिए अनिवार्यता बन गयी। लोगों का गणित! लोग हिसाब लगाए रखते हैं! उन्होंने बाकी तेईस को भी नग्न कर दिया। वे नग्न थे नहीं। सो उन्होंने वस्त्र कभी छोड़े नहीं थे। यह तो महावीर की छाप यूं पड़ी कि अब उन तेईस को वस्त्र पहनाना और महावीर को नग्न खड़ा करना उन तेईस की भदद करना होगी। इसलिए चौबीसों मूर्तिया नग्न हो गयीं।

वे तेईस तीर्थंकर सफेद वस्त्र ही पहनते थे। इसलिए जैनों के जो दो पंथ हैं, श्वेतांबर और दिगंम्बर, उनमें श्वेतांबर पंथ ही वस्तुतः पुराना पंथ है, क्योंकि वे तेईस तीर्थंकर सफेद कपड़े ही पहनते थे। और झगड़ा इसीलिए खड़ा हुआ--महावीर के शिष्यों में झगड़ा हो गया कि हम तेईस की माने या इस एक व्यक्ति की मानें? मगर यह एक व्यक्ति इतना बलशाली था! इसकी सहजता, इसकी निर्मलता, इसके फूलों जैसी ताजगी! इनकार करना भी मुश्किल था। तो अधिक लोग तो महावीर से राजी हो गये और उन्होंने कहा बेहतर है हम तेईस को भी महावीर के रंग में रंग दें। उन्होंने तेईस को भी महावीर के रंग में रंग दिया।

लेकिन कुछ पुराणपंथी थे, रूढिवादी थे, उन्होंने उन तेईस को बदलना उचित नहीं समझा, वे इतिहास को मानकर चलने वाले लोग होंगे, लकीर के फकीर होंगे, उन्होंने महावीर की प्रतिष्ठा तो की, माना, लेकिन उन तेईस को कैसे नग्न कर दें, तो उन्होने महावीर को ही वस्त्र पहनाए। लेकिन महावीर नग्न थे, इनको वस्त्र भी कैसे पहनाएं, तो श्वेतांबरों ने एक तरकीब ईजाद की... आदमी कैसे हैं! कैसी कैसी तरकीबें ईजाद करते हैं! ... कि महावीर वस्त्र तो पहनते थे लेकिन वे वस्त्र देवताओं द्वारा भेंट किये वस्त्र थे, किसीको दिखायी नहीं पड़ते थे, इसलिए लोगों को नंगे मालूम पड़ते थे। पहनते तो थे सफेद ही वस्त्र, लेकिन चूंकि वे दिव्य वस्त्र थे, सिर्फ देवताओं को दिखायी पड़ते थे। ... पता नहीं इन लोगों को कैसे दिखाई पड़े?

मगर सच बात यह है कि दो में से कुछ एक करना जरूरी था। या तो तेईस के साथ महावीर को वस्त्र पहनाओ! तो यह तरकीब निकाली उन्होंने। अब इन नग्न आदमी को एकदम झुठलाया नहीं जा सकता था। और यह जिंदा था और वे तेईस तो बहत प्राचीन हो गये थे। जैनियों के पहले तीर्थंकर आदिनाथ को तो पांच हजार साल हो चुके थे। बात बहुत पुरानी हो गयी थी। बहुत धूमिल हो गयी थी। उनके वस्त्र ले लो तो वे कुछ नहीं कर सकते, पहना दो तो कुछ नहीं कर सकते। लेकिन महावीर जिंदा थे। नग्न आदमी को वस्त्र एकदम से पहना कैसे सकते हो लोगों के सामने। तो कैसा आदमी बेईमान है, कैसा चालबाज है! उसने झूठे वस्त्र पहना दिये। देवताओं के द्वारा लाए गये वस्त्र पहना दिये। मगर वस्त्र पहना दिये।

एक तो रास्ता यह था गणित पूरा कर लेने का। हम गणित से जीते हैं। गणित यानी चालबाजी। सीधी सच्ची बात थी कि तेईस को कपड़े पहनाने थे, चौबीसवें को नहीं पहनाने थे। क्या हर्जा था? लेकिन उन्हें लगा, तर्क हो जाएगा, विरोधाभास हो जाएगा, असंगति हो जाएगी। छोटे लोग संगित के चक्र में पड़े रहते हैं। असंगति न हो जाए! कहीं कोई विरोधाभास न हो जाए! और सच तो यह है कि महावीर में और आदिनाथ में अगर भेद न हो, यह असंभव है। इतने अपूर्व लोग भिन्न तो होंगे ही। अद्वितीया तो होंगे ही। समान तो ही ही नहीं सकते।

यह महावीर की नग्नता तो सिर्फ निर्दोषता का प्रतीक है। अब कोई नग्न होने का अभ्यास करने की जरूरत नहीं है। हां, किसीको सहज नग्नता आ जाए, बात और। लेकिन चेष्टा से आरोपित करोगे, चूक हो जाएगी। सारे धर्म यही करते हैं। सारे धर्मों का यही उपद्रव है, यही जंजाल है। प्रतीक को जोर से पकड़ लेते हैं।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। सारी मूर्तियां हमारी कल्पित मूर्तियां हैं। सारी मूर्तियां सुंदर प्रतीक हैं। लेकिन उन प्रतीकों को सत्य मत मान लेना। परमात्मा एक अनुभूति है--अनिर्वचनीय, अव्याख्य। नाम कुछ देना होगा--इशारे के लिए। मलूकदास ने साहेब कहा। प्यारा नाम है। साहेब का मतलब होता है : मालिक। सूफी फकीरों ने परमात्मा के निन्यानबे नाम कहे। उन निन्यानबे नामों में एक नाम है : या-मालिक! सूफियों की छाप मध्ययुग के सतों पर बहुत गहरी पड़ी। कबीर, नानक, मलूक--इनको तुम हिंदू नहीं कह सकते, न मुसलमान कह सकते। सच तो यह है, किसी संत को तुम हिंदू और मुसलमान नहीं कह सकते। जो संत हिन्दू और मुसलमान हो, जैन-बौद्ध हो, ईसाई-यहूदी हो, वह कुछ और होगा, संत नहीं है।

मध्ययुग में भारत में एक अपूर्व मिश्रण हुआ। गंगा-जमुन मिलीं। हजारों साल की भारतीय परम्परा इस्लाम की परंम्परा के साथ गले मिली। लड़नेवाले लड़ते रहे, छुरेबाजी करते रहे, हत्याएं करते रहे, मिलनेवाले मिलते रहे। जो गले मिले, उन फकीरों में सूफियों की छाप आयी। उनके शब्दों में भी सूफियों का प्रभाव आया। साहेब--या-मालिक का ही रूपांतरण है। यह वजन मलूक का है :

साहेब मिल साहेब भये, कछू रही न तमाई।

कहै मलूक तिस घर गये, जहां पवन न जाई।।

मगर फिर याद दिला दूं : मालिक से मतलब मत समझ लेना तुम्हारी आम भाषा का। इतना ही अर्थ है कि हमारे भीतर जो अहंकार है, जो हमेशा मालकियत की घोषणा करता है, उसे समर्पित कर दो, इस परम अस्तित्व के प्रति अर्पित कर दो, चढ़ा दो। क्योंकि अगर कोई मालिक है तो यह सारा अस्तित्व मालिक है। उसीसे बहते हैं सागर, नदियां, उठते हैं पर्वत, चांद-तारे; वृक्ष हरे हैं, फूलों में गंध है, पक्षियों के कंठों में गीत हैं, आदमी की आंखों में ज्योत है, प्राणों में जीवन है--यह सारा अस्तित्व एक भगवत्ता से व्याप्त है। अगर कोई मालिक है तो वह परम भगवत्ता ही मालिक है। इसलिए साहेब प्यारा शब्द है!

संतों ने साहेब दो तरह से उपयोग किया। एक तो परमात्मा के लिए और एक सदगुरु के लिए। क्योंकि इस पृथ्वी पर उसका प्रतीक, अगर जीवंत प्रतीक कोई है, तो वह सदगुरु है। जिसने उसे जाना हो, जिसने उसे जीआ हो, जिसने उसे पीआ हो, जिसके रग रग में, रोएं रोएं में वह समा गया हो, जिसकी श्वास श्वास में उसकी गंध हो, जिसके उठने-बैठने में उसका रंग हो, उसका ढंग हो, जिसकी आंखों में झांको तो उसमें झांकना हो जाए, जिसका हाथ हाथ में ले लो तो उसके हाथ हाथ में पड़ जाए, उसको भी साहेब कहा। और परमात्मा को भी साहेब कहा। मगर दोनों के पीछे प्रयोजन एक ही है कि तुम अपनी मालकियत छोड़ो।

लेकिन लोग, जैसा मैंने कहा, प्रतीक को खूब पकड़ लेते हैं। परमात्मा मालिक है सो हम उसकी प्रार्थना करेंगे--अहंकार वगैरह नहीं छोड़ेंगे! उलटे उससे हम और अहंकार को भरने की प्रार्थना करेंगे। कि हे मालिक, हे परवरदिगार, हे साहेबों के साहेब, तू जो चाहे वह हो जाए, जरा मुझे नौकरी ही दिला दे! कि चुनाव ही जितवा दे! कि दुकान ही चलवा दे! कि धंधे में बरकत मिले। कि मिट्टी छुऊं, सोना हो जाए। कि जीवन में सफलता हाथ लगे। यश मिले, नाम कर जाऊं। इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में स्मरण किया जाऊं। ये सब अहंकार के ही आभूषण हैं।

तुम मंदिरों मे क्या मांगते हो? अपने को चढ़ाने जाते हो कि कुछ मांगने जाते हो? तुम्हारी प्रार्थनाएं तुम्हारे भीतर के भिखमंगेपन का सबूत हैं। और कौन है भिखमंगा तुम्हारे भीतर? तुम्हारा अहंकार ही भिखमंगा है। क्योंकि अहंकार कभी भरता ही नहीं। मांगो, मांगो, मांगो--कहता है, मांगते ही रहो। जितना मिल जाए उतना ही थोड़ा पड़ता है, कम पड़ता है। परमात्मा मालिक है, उसकी पूजा करो। पूजा करने से वह खुश होगा।

उसकी स्तुति करो। स्तुति यानी खुशामद। कहो कि हम तो पापी हैं, महापापी। अपना पाप बढ़ा-चढ़ाकर बताओ, ताकि अपनी दयनीयता प्रगट हो। और उसकी करुणा की खूब महिमा गाओ। उसके अहंकार पर खूब मक्खन लगाओ! कि हे पतित पावन, तू हमारा उद्धार कर! अरे, तूने तो पत्थरों पर पैर रख दिये और पत्थरों में प्राण आ गये! अहिल्या पत्थर की तरह पड़ी थी और तूने असे पुनरुज्जीवन दे दिया। अंधों को आंखें दे दीं, लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा दिये, तू जो न करे थोडा! तू तो सब चमत्कार कर सकता है! मुझ गरीब पर भी जरा ध्यान दे! जरा एक नजर इस तरफ भी हो जाए!

प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया। प्रार्थना जैसा प्यारा शब्द एकदम गंदा हो गया हमारे हाथों में पड़ कर। हमारे हाथ में जो चीज भी पड़ जाए, गंदी हो जाती है। हमारे हाथ गंदे हैं। हमारी अकल गंदी है। हमारे भीतर गंदगी ही गंदगी भरी है।

एक वृद्ध महिला लाल बत्ती की अह्वेलना कर अपनी गाड़ी चौराहे से पार कराने लगी। नियुक्त सिपाही ने कई बार सीटी बजायी, पर वह चौराहा पार करके ही रुकी। सिपाही ने उससे क्रोधित स्वर में पूछा, मैंने इतनी सीटियां बजायीं, पर आप रुकीं क्यों नहीं? बुढ़िया ने गर्माकर उत्तर दिया, बच्चा, अब क्या मेरी उम्र सीटियां सुनने की हैं? अब मैं बूढ़ी हो गयी, मेरी उम्र ढल गयी, सीटियां बजाना था तीस साल पहले, अब क्या खाक सीटियां बजा रहा है!

पुलिसवाला सीटी बजा रहा है गाड़ी रोकने को, मगर एक हमारी खोपड़ी, जिसमें हमारे अपने अर्थ हैं।

तुम परमात्मा के सामने जाकर जो प्रार्थनाएं कर रहे हो, उसमें तुम परमात्मा के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हो, सिर्फ अपनी अहंकार की भूख जाहिर कर रहे हो--कि तेरे प्रसाद से सब हो जाएगा। चमत्कार हो जाते हैं तेरे प्रसाद से। तू क्या नहीं कर सकता है!

यह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना तो धन्यवाद का नाम है। आभार का नाम है। प्रार्थना तो इस बात की उदघोषणा है कि तूने जीवन दिया, कि तूने जीवन को इतना रस दिया, बोध दिया, चैतन्य दिया, ध्यान की क्षमता दी, समाधि का कमल खिल सके इसकी संभावना दी, कैसे धन्यवाद करूं? कैसे आभार करूं? कोई राह नहीं सुझती तेरे ऋण से मुक्त हो जाने की। और सब ऋण चुक जाएं, तेरा ऋण कैसे चुकेगा? तो झुकता हूं, तो हजार बार झुकता हूं। तुम्हारी नमाज, तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी पूजा बस इस धन्यवाद से जरा भी भिन्न हुई कि समझना कि तुमने बात समझी नहीं। तुम कुछ गलत समझ गये।

साहेब प्रतीक है, और प्यारा प्रतीक है। मलूक के इस वचन को समझने की कोशिश करो

साहेब मिल साहेब भये

पहली तो बात मलूक यह कहते हैं कि जो उस साहेब से मिला, वह वही हो गया। उससे मिलने का सबूत यह है। उससे मिलने का और कोई सबूत नहीं होता। अगर उससे भी मिले और फिर भी दूरी रही तो क्या खाक मिले! अगर उससे भी मिले और वही न हो गये, तो क्या खाक मिले! जो उससे मिला, वह वही हो गया।

भगवान से मिले कि भगवान हुए। ब्रह्म से मिले कि ब्रह्म हुए। सत्य से मिले कि सत्य हुए। मिलने का और क्या अर्‌थ हो सकता है? उपनिषद कहते हैं : जो उसे जानता है, वह वही हो जाता है। हम वही हैं ही, सिर्फ पहचान नहीं है, प्रत्यभिज्ञा नहीं है। हम अससे अन्यथा हो ही नहीं सकते। एक क्षण को भी हम जी नहीं सकते अन्य होकर। जीवन उसी का दूसरा नाम है। वही तो धड़कता है ह्यदय में। वही तो श्वासों में आता है और जाता है। वही तो व्याप्त है बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, दसों दिशाओं में। एक इंच स्थान भी तो उससे खाली नहीं। सब तो उससे भरा है--लबालब भरा है। तुम चाहो भी तो उससे भिन्न नहीं हो सकते।

लेकिन अजीब है आदमी, उसने अपने को भिन्न समझ रखा है। और न केवल अपने को भिन्न समझ रखा है, बल्कि जिद करता है, विरोध करता है उन लोगों का जो घोषणा कर दें कि हम उसके साथ एक हो गये। मंसूर को सूली पर चढ़ा दिया। सिर्फ एक ही कसूर था बेचारे का कि उसने यह घोषणा कर दी : अनलहक। कह दिया कि मैं सत्य हूं, कि मैं परमात्मा हूं। बस, यह कसूर हो गया। यह महा अपराध हो गया।

जीसस का कसूर क्या था, यही कि जीसस ने कहा कि मैं और मेरा पिता दो नही हैं, एक हैं। पर्याप्त थी यह बात सूली देने के लिए।

मंसूर को समझे होते तो तुमने भी जाना होता कि तुम भी वही हो। जीसस को समझे होते तो तुमने जाना होता कि तुम भी वही हो। जीसस कोई अपने निजी व्यक्तित्व के लिए घोषणा नहीं कर रहे हैं। जीसस की घोषणा में समस्त जीवन की घोषणा सम्मिलित है। मंसूर का वक्तव्य मंसूर के संबंध में नहीं है, तुम्हारे संबंध में भी उतना ही है। जिनने सूली दी मंसूर को, उनके संबंध में भी वह वक्तव्य उतना ही सत्य है। मंसूर को पता है, उनको पता नहीं है।

लेकिन आदमी बड़ा अजीब है। वह यह मानने को राजी नहीं हो सकता कि मैं परमात्मा हूं। क्यों? वह यह भी मानने को राजी नहीं होता कि कोई दूसरा व्यक्ति परमात्मा है। क्यों? दूसरे को तो वह इसलिए परमात्मा नहीं मान सकता कि उसको लगता है मेरे अहंकार को चोट लग रही है। कि अभी मैं हूं और मेरे रहते कोई दूसरा परमात्मा! मैं कैसे मानूं कि कोई और परमात्मा है! यह कौन जुर्रत कर रहा है, कौन हिम्मत कर रहा है अपने को परमात्मा कहने की?

आदमी एक ही भाषा समझता है, अहंकार की। उसे निरहंकार की भाषा तो आती नहीं है। और ये उद्घोषणाएं आती हैं निरहंकार से। वह अपने ही ढंग से सोचना है। और किसी ढंग से सोच भी नहीं सकता।

इसलिए जीसस ने मरते वक्त सूली पर अंतिम प्रार्थना की परमात्मा से कि हे प्रभु, इन सारे लोगों को क्षमा कर देना जो मुझे सूली दे रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। इन्हें कुछ भी पता नहीं कि ये कौन हैं और ये किसे मार रहे हैं।

वे लोग जीसस को थोड़े ही सूली दे रहे थे, अपने ही भविष्य को सूली दे रहे थे। अपनी ही परम संभावना से इनकार कर रहे थे।

मंसूर हंसा था जब उसे मारा गया। और किसीने पूछा भीड़ में से कि मंसूर हंसते क्यों हो? तो मंसूर ने कहा, इसलिए हंसता हूं कि तुम जिसे सूली दे रहे हो, वह मैं नहीं हूं। यह देह, इसके संबंध में तो मैंने कभी कहा भी नहीं है अनलहक। और जिसके संबंध में मैंने कहा है अनलहक, वह हंस रहा है। तुम मुझे काटो तो जानूं!

मंसूर वही कह रहा है जो कृष्ण ने कहा : नैनं छिदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। न तो शस्त्र मुझे छेद सकते हैं, न आग मुझे जला सकती है।

वेद कहते हैं : अमृतस्य पुत्रः। आदमियो, तुम अमृत के बेटे हो। तुम उसके पुत्र हो। तुम उससे ही आए हो। जैसे सागर में सागर की लहरें हैं, ऐसे तुम हो। जरा भी भिन्न नहीं।

मगर आदमी ने अपने को भिन्न मान रखा है। तो कभी कोई घोषणा करता है अहं ब्रह्मास्मि की, तो हमारे अहंकार को चोट लगती है। हम ऐसी मूढ़ता में हैं कि हम तिलमिला उठते हैं। हम अपनी ही मूढ़ता से उसके वक्तव्य का भी अर्थ लेते हैं।

एक आदमी अपने कुत्ते के साथ घूमने निकला। सड़क पर उसे एक मसखरा मिल गया। उसने पूछा, अरे, इस गधे के साथ कहां जा रहे हो? आदमी गुस्सा होकर बोला, अंधे हो क्या? यह गधा नहीं, कुत्ता है। मसखरे ने कहा, तुमसे कौन बात करता है जी, मैं तो इस कुत्ते से पूछ रहा हूं।

हम जल्दी से निर्णय ले लेते हैं। हम अपने ढंग से ही समझ लेते हैं। कोई और ढंग भी हो सकता है, कुछ अर्थ और भी हो सकते हैं। लेकिन हम निष्णात हो गये हैं एक विशिष्ट व्याख्या के, एक विशिष्ट अर्थ के। और हम प्रत्येक चीज पर वही अर्थ थोपे चले जाते हैं।

एक शराबी रेलवे के पूछताछ कार्यालय में गया। खिड़की पर बैठे बाबू से उसने पूछा, बाबूजी, अभी प्लेटफार्म पर जो ठेलेवाला खड़ा था, वह कहां गया? मुझे नहीं पता, बाबू ने टका सा जवाब दे दिया। शराबी चला गया, थोड़ी देर बाद घूम-फिरकर आया और बोला, इधर से आपने मेरी पत्नी को जाते हुए तो नहीं देखा? नहीं, बाबू ने उत्तर दिया। दस-पंद्रह मिनट के भीतर ही वह फिर वापस लौट आया, बोला, बाबूजी, रेलवे स्टेशन पर नमकीन क्या भाव मिलेगा? इस बार बाबू झल्लाया, सारे स्टेशन का ठेका मैंने ही ले रखा है क्या? नमकीनवाले से पूछो जाकर। जब कुछ नहीं मालूम, तब क्या ख़ाक पूछताछ कार्यालय खोलकर बैठे हो! शराबी बड़बड़ाया और आगे चला गया।

पूछताछ का दफ्तर, तो शराबी को लगा कि हर चीज का पता होना चाहिए पूछताछ के दफ्तर में। उसकी पत्नी निकली, ठेलेवाला कहां गया, नमकीन क्या भाव है। शराबी की अपनी दुनिया है।

तुम भी अपने अहंकार की एक शराब में डूबे हुए हो। जब कोई घोषणा करता है : साहेब मिल साहेब भये, तुम तिलमिला उठते हो। तुम्हें सदमा लगता है। तुम समझते हो, शायद यह तो अहंकार की घोषणा हो गयी। तुम यह सोच ही नहीं सकते, तुम्हारी कल्पना के बाहर है यह बात, कल्पनातीत, कि यह विनम्रता की घोषणा हो सकती है। और सच यही है कि यह घोषणा सदा ही विनम्रता से आयी है। इसका अहंकार से कोई लेना-देना नहीं है। जब तक अहंकार है तब तक तो यह घोषणा करने की हिम्मत ही नहीं हो सकती। यह साहस तो निरहंकारिता का ही हो सकता है।

एक देश में किसी मामूली अपराध पर कोड़ों की सजा दे दी जाती थी। वहां एक महाशय को किसी लड़की को छेड़ने पर पंद्रह कोड़े की सजा मिली। जब पंद्रह कोड़े पूरे हो गये तो वे महाशय बिल्कुल अधमुए हो गये। अफसर उसके पास पहुंचा और कहने लगा, सुनो मिस्टर, अगर फिर किसी लड़की को तंग किया तो अस्सी कोड़े पड़ेंगे। और हां आज से सारी लड़कियों को अपनी बहन समझना। वे महाशय बोले, जी, बिल्कुल। मैं फिर आपको शिकायत का मौका नहीं दूंगा।

इतने में उनकी बीबी आयी और रोते हुए बोली, सरताज, क्या बहुत पीड़ा है? वे महाशय बोले, नहीं नहीं बहन जी, मैं बिल्कुल ठीक ठाक हूं।

एक अंधकार है जिसमें तुम जी रहे हो। उस अंधकार की एक भाषा है, देखने का एक ढंग है, सोचने की एक प्रक्रिया है, तर्क की एक शैली है। और जब प्रकाश से भरा हुआ व्यक्ति तुमसे कुछ बोलता है, तो तुम नहीं समझ पाते। तुमसे चूक हो जाती है। और तुममें इतनी भी विनम्रता नहीं है कि तुम कम से कम शांत होकर समझने की चेष्टा तो कर लो। तुम्हारे छुरे निकल आते हैं, तुम्हारी तलवारें खिंच जाती हैं, तुम मरने मारने को उतारू हो जाते हो। जैसे तलवारों से कोई सत्यों को काटा जा सकता है! कि गोलियों से कोई सत्यों के प्राण लिये जा सकते हैं! कि सूलियों पर कोई सत्य की हत्या हो सकती है!

साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।

बड़ा प्यारा वचन है मलूक का। जरा भी तम न रहा, जरा भी अंधकार न रहा--कछु रही न तमाई--जरा भी अज्ञान न रहा। और अहंकार अज्ञान है, अंधकार है, तमाई है। यह मानना, यह जानना कि मैं अस्तित्व से पृथक हूं, भिन्न हूं, इस जगत में सबसे बड़ी भूल है। फिर शेष सारी भूलें इस भूल से ही पैदा होती हैं। जिसने जाना सत्य को, जिसने भीतर ध्यान के दीये को जलाया, उसके भीतर यह अंधकार समाप्त हो जाता है। रह जाता है एक ज्योतिर्मय अनुभव। उस अनुभव में कुछ भेद नहीं रह जाता, अभेद, अद्वैत शेष रहता है।

साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।

कहै मलूक तिस घर गये, जहां पवन न जाई।।

पवन तो सब जगह पहुंच जाता है। लेकिन परमात्मा का घर इतना सूक्ष्म है कि वहां पवन की भी गति नहीं। वहां तो पवन भी काफी स्थूल है और प्रवेश नहीं कर पाता। वहां तो सिर्फ निरहंकारिता ही प्रवेश कर पाती है। वही इतनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि परमात्मा के घर में केवल उसका ही प्रवेश है, जो द्वार पर ही अपने को छोड़कर भीतर आ सके, जो सीढ़ियों पर ही अपने को डाल दे, तो फिर भीतर आने का मालिक हो जाता है, हकदार हो जाता है। मिटने को जो राजी है, वह पाने का अधिकारी हो जाता है।

धन्यभागी हैं वे जो मिटने को तत्पर हैं। बिना मिटे उसे कोई पाता नहीं। या तो मिटो और उसे पाओ या उसे पाओ और मिट जाओ--ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

आनंद संत! इस प्यारे वचन पर ध्यान करना। यहां साहेब से कोई व्यक्ति का प्रयोजन नहीं। न राम से अर्थ है, न कृष्ण से अर्थ है, न महावीर से अर्थ है, न बुद्ध से। यहां साहेब से अर्थ है : इस जगत के प्राणों के केंद्र पर जो संगीत प्रतिध्वनित हो रहा है। जिस संगीत ने सारे जगत को अपने में लयबद्ध किये हुए है। जिस संगीत ने सारे जगत को बांध रखा है एक स्वर में। जगत अराजकता नहीं है, यहां एक अपूर्व सुव्यवस्था है। इतना विराट जगत जिस मौन और जिस शांति से और जिस आनंद से गतिमान है, कहीं कोई उच्छृंखलता नहीं है, कहीं कोई व्याघात नहीं है, सब अविच्छिन्न धारा की तरह चल रहा है, जिस अज्ञात ऊर्जा ने इस सारे जगत को एक लयबद्धता दी है, उस अज्ञात ऊर्जा का नाम : साहेब।

नाम जो तुम्हारी मर्जी हो, देना। नाम कुछ भी दे सकते हो। साहेब भी प्यारा नाम है। खूब प्यारा नाम है। और साहेब की मूर्ति कैसे बनाओगे? इसलिए मलूक ने ठीक ही किया यह शब्द चुना। साहेब की क्या मूर्ति बनाओगे! राम की मूर्ति बनानी हो तो धनुर्धारी राम, कृष्ण की मूर्ति बनानी हो तो बांसुरी वाले कृष्ण और क्राइस्ट की मूर्ति बनानी हो तो सूली पर चढ़े क्राइस्ट--साहेब की क्या मूर्ति बनाओगे? कोई मूर्ति बनेगी नहीं। सिर्फ भाव रह जाएगा।

और अच्छा यही है कि भाव में डूबो। मूर्तियों में बहुत लोग जकड़ गये हैं, मंदिरों में बहुत लोग बंध गये हैं। अब मधुशालाएं चाहिए, मंदिर नहीं। मंदिरों से आदमी बुरी तरह थक गया। उसकी छाती पर पहाड़ की तरह होकर बैठ गये हैं। अब मनुष्य को बड़े बड़े शास्त्र नहीं चाहिए, छोटे छोटे संकेत चाहिए। शास्त्र तो जंगलों की तरह हो गये हैं। उनमें आदमी खोता ही चला जाता है। निकलता है खोजने, सूझने, मार्ग पाने, उलझाव को निपटाने--और उलझ जाता है। पुराने उलझाव तो अपनी जगह रहते ही रहते हैं, और नये नये उलझाव खड़े हो जाते हैं। पंडितों को तुम जितनी उलझन में पड़ा हुआ पाओगे, उतना अज्ञानियों को उलझन में नहीं पाओगे। पंडित की हालत अज्ञानियों से भी बदतर हो जाती है।

उपनिषदों मे एक अदभूत क्रांतिकारी वचन है। मैंने दुनिया के करीब-करीब सारे शास्त्र देखे हैं, लेकिन इस वचन के मुकाबले कोई वचन कहीं मुझे मिला नहीं। इस वचन की क्रांति तो ऐसी है कि आज भी उस पर राख

नहीं जमी है। लाख अपाय किये गये हैं उस पर राख जमाने के, लेकिन राख उस पर जमती नहीं। अंगारा दमकता है। आज भी उतना ही दमकता है।

उपनिषद में वचन है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं, अंधकार में भटकते हैं, लेकिन ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। जिसने भी कहा होगा, गजब की छाती का आदमी रहा होगा। हिम्मत का आदमी रहा होगा। ऐसी पते की बात कही कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं; सो कोई बड़ी बात नहीं, सो कोई नयी बात नहीं, सो कुछ विशिष्ट बात नहीं, मत उठाओ यह चर्चा, अज्ञानी तो भटकते ही हैं, ठीक है, स्वाभाविक है, होगा ही ऐसा; ज्ञानियों की तो पूछो! ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।

किन ज्ञानियों की बात कर रहा है उपनिषद का ऋषि? पंडितों की। महापंडितों की। वे अजीब अजीब बातों में उलझ जाते हैं। वे बाल की खाल निकालने में लग जाते हैं। संकेत तो एक तरफ पड़े रह जाते हैं, वे ऐसे तर्क जाल में खोते हैं, ऐसे विवाद में पड़ते हैं कि ध्यान की फुर्सत कहां? समाधि का समय कहां? और स्मरण रहे, समाधान अगर कहीं है तो समाधि में है। शास्त्रों के उत्तर से, शास्त्रीयता से समाधान मिलता होता तो अब तक आदमी की सारी समस्याएं समाप्त हो गयी होतीं। शास्त्र कुछ कम नहीं हैं। बहुत शास्त्र है। पर्याप्त शास्त्र हैं। लेकिन हर शास्त्र और समस्याएं बढ़ा गया है।

मै अपने संन्यासियों को कहना चाहता हूं : संकेत काफी हैं। ज्यादा उलझाव में मत पड़ जाना।

साहेब मिल साहेब भये, कछु री न तमाई। इतना करो, बस इतना कर लो, भीतर का अंधेरा तोड़ो। यह भीतर जो सोयापन हौ, इसे मिटाओ, यह नींद तोड़ो। खूब सो लिए, कब तक सोए रहोगे? मगर हम तो अपनी नींद के लिए भी नये नये तर्क खोजते हैं।

पहला तो हमारा तर्क यह है, कौन कहता है कि हम सो रहे हैं? बस, यह सबसे बड़ा तर्क है हमारा, कि कौन कहता है कि हम सो रहे हैं? कौन कहता है कि हमारे भीतर अंधकार है? और एक बार इस तर्क को तुमने समर्थन देना शुरू कर दिया कि फिर स्वभावतः अंधकार को तोड़ने की तो बात ही नहीं उठती, प्रश्न ही नहीं जगता। और आदमी कुशल है हर चीज के लिए तर्क खोज लेने के लिए।

एक शिकारी बाप ने एक दिन बेटे के सामने उड़ते पक्षी को निशाना लगाया। हमेशा की तरह निशाना चूक गया। बाप ने देखा बेटा बहुत ध्यान से उड़ते हुए पक्षी को देख रहा है। उसने बेटे से कहा, देख बेटा देख, चमत्कार देख, पक्षी मर कर भी उड़ रहा है!

आदमी तर्क खोज लेने में तो बहुत कुशल है।

जार्ज गुर्जिएफ, इस सदी का एक परम ज्ञानी व्यक्ति, उन थोड़े से लोगों में, जिनको हम कह सकते हैं : साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई--एक था। गुर्जिएफ ने कहा है, बहुत बार कहा है, इस बोधकथा को बहुत दोहराया है कि एक जादूगर के पास बहत सी भेड़े थीं। और उन भेड़ों को संभालने के लिए उसे बहुत नौकर रखने पड़ते थे। फिर नौकरों के ऊपर भी और निरीक्षक नियुक्त करने पड़ते थे। क्योंकि नौकर भेड़ों को चुरा ले जाते, खा जाते, बेच देते। और भेड़ें इतनी थीं कि या तो उनकी गिनती रोज रोज करते रहो, जो कि संभव नहीं था। भेड़ों के बच्चे होते, उनका पता ही नहीं चल पाता उसके मालिक को। बच्चे उड़ा ले जाते। रद्दी खद्दी भेड़ें खरीद कर उसकी अच्छी भेड़ों में मिला देते, अच्छी भेड़ें बेच देते। कभी कभी भेड़ें खो भी जातीं, नौकर लापरवाह थे--नौकरों को क्या पड़ी! जंगली जानवर उठा ले जाते।

आखिर जादूगर परेशान हो गया। एक दिन उसे ख्याल आया कि मैं तो जादूगर हूं, मैं क्यूं न अपने जादू का उपयोग करूं! उसने सारे नौकरों को विदा कर दिया। और उसने अपनी सारी भेड़ों को सम्मोहित करके

बेहोश किया, और भेड़ों को कहा कि तुम भेड़ नहीं हो, तुम मनुष्य हो, और तुम्हें डरने की कोई भी जरूरत नहीं है, भागने की कोई भी जरूरत नहीं है, अपने आप घर लौट आना। तुम भेड़ नहीं हो; यह तुम्हारी भ्रांति थी, यह भ्रांति छोड़ दो। और तुम्हें डरने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि भेड़े डरती रहती थी, कंपती रहती थीं, क्योंकि रोज भेड़े देखती थीं कि आज यह भेड़ कटी, कल वह भेड़ कटी--क्योंकि जादूगर को रोज भेड़ें भोजन के लिए चाजिए; उसके मित्र आते, मेहमान आते। तो उसने सारी भेड़ों को समझा दिया कि तुम भेड़ हो ही नहीं। तुम्हारे अलावा दूसरी भेड़ें भेड़ें हैं, तुम आदमी हो। तुम कभी नहीं काटे जाओगे।

और उस दिन से बड़ी निश्चिंतता हो गयी। भेड़ें अपने आप लौट आतीं। भेड़ें ही नहीं थीं तो भागना क्या? डर ही न रहा। और एक भेड़ कटती तो दूसरी भेड़ें मुस्कुरातीं, क्योंकि वे अपने दिल में सोचतीं कि हम तो आदमी हैं, हम तो कोई भेड़ हैं नहीं। कटने दो, भेड़ें कटती ही रहती हैं, क्या लेना देना! भेड़ों में जो आपसी संगठन था, वह भी टूट गया। भेड़ें जो इकट्ठी होकर चलती थीं, वह भी समाप्त हो गया। नौकरों की भी कोई जरूरत न रही, निरीक्षकों की भी कोई जरूरत न रही।

गुर्जिएफ कहता था, ऐसी ही हालत आदमी की है। आदमी अपने को ही सम्मोहित कर लेता है। सबसे बड़ा उसका सम्मोहन यह कि मैं जैसा हूं बिल्कुल ठीक हूं। करना क्या है? मैं कोई सोया हुआ आदमी थोड़े ही हूं। मैं तो जागा हुआ आदमी हूं ही। मैं तो ज्ञानी हूं ही। मुझे ज्ञान करके क्या करना है! मुझे ध्यान करके क्या करना है! अज्ञानी करें!

और छोटी छोटी तरकीबें निकाल ली हैं उसने अपने को सिद्ध करने के लिए। किसीने गीता कंठस्थ कर ली है, किसीने कुरान की आयतें याद कर ली हैं, कोई सुबह मंदिर में बैठकर घंटी बजा देता है, कोई थोडा सा दीया जलाकर आरती उतार लेता है, सोचता है हो गई पूजा, हो गई प्रार्थना, अब और तो कुछ करने को है नहीं, धर्म पूरा हो गया।

हर आदमी ने धर्म का एक बड़ा सस्ता रूप खोज निकाला है। जिसमें कोई क्रांति से नहीं गुजरना होता, जिसमें जीवन में कुछ भी नहीं बदलना होता, जीवन जैसा है वैसा का वैसा ही रहता है, वैसा का वैसा ही रखने के लिए तुम्हारा धर्म सहयोगी होता है।

अगर तुम्हें सच में ही जीवन में दुख हो, पीड़ा हो, परेशानी हो--जो कि है--तो वह इस बात का सबूत है कि अंधकार घना है। अंधकार के बिना काई विषाद नहीं। अंधकार के बिना कोई दुख नहीं। अंधकार के बिना कोई नर्क नहीं। आत्म अज्ञान से ही सारा नर्क पैदा होता है। और आत्म ज्ञान स्वर्ग है।

लेकिन जो भी बात तुम्हें यह याद दिलाएगा, तुम उससे नाराज होओगे। इसलिए सदगुरुओं को कभी भी क्षमा नहीं कर पाते हो तुम। हां, मर जाने के बाद पूजा करते हो। वह पूजा भी अपराध भाव के कारण। क्योंकि जब वे जिंदा थे तब तुम क्षमा नहीं कर पाए। तो जब मर गये तो तुम्हारे भीतर अपराध सताता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बेटे जब बाप मर जाते हैं तो उनकी तस्वीरें लटकाएंगे, फूल चढ़ाएंगे, अंत्येष्टि करेंगे, रोएंगे धोएंगे, बड़ा दुख मनाएंगे। और जब बाप जीवित थे तो उनकी तरफ ध्यान भी न दिया। कभी उनके पैर न दबाए। कभी उनकी सेवा न की। जब पिता की मृत्यु होती है तो तुमने जो दुर्व्यवहार किया है जीवित पिता के साथ वह सब तुम्हारे सामने खड़ा हो जाता है। अब इस दुर्व्यवहार के लिए क्या करो? अब तो क्षमा मांगी भी नहीं जा सकती। मांगो भी तो किससे मांगो! अब तो क्षमा जो कर सकता था, वह भी न रह। तो अब एक पश्चात्ताप पकड़ता है, एक प्रायश्चित पकड़ता है। उस प्रायश्चित में, उस अपराध भाव में तुम रोते हो।

पत्नी मर जाती है तो पति रोता है, छाती पीटता है। और जब पत्नी जिंदा थी तो न मालूम कितनी बार सोचा था इस पति ने कि यह मर ही जाए दुष्ट तो अच्छा! कि न मालूम किस अपशकुन में, किस दुर्दिन में इससे विवाह कर लिया। यह दुर्घटना कैसे मोल ले ली? मर गयी पत्नी तो तुम उसकी याददाश्त में मरे जा रहे हो। यह उसकी याददाश्त नहीं है और न यह उसका प्रेम है। प्रेम नहीं कर पाए, जब करना था तब समय गंवाया, अब पीड़ा सालती है। अब उस पीड़ा के घाव को छिपाने के लिए, अब उस अपराध भाव से मुक्त होने के लिए तुम लीपा पोती कर रहे हो। अब कब्र को तुम सुंदर बना रहे हो। अब तुम दुनिया को यह दिखाना चाहते हो, मैं कितना चाहता था। कितना नहीं चाहता था!

पति जिंदा रहते हैं तो पत्नियां सिवाय सताने के शायद ही कोई दूसरा काम करती हों। और मर जाते हैं, तो सती होने को तैयार हैं। बड़ा आश्चर्य है। जिंदा पति को जला देने को तत्पर हैं। चौबीस घंटे पीछे पड़ी हुई हैं। न उसको चैन से बैठने देंगी, न उठने देंगी। अखबार भी पढ़ रहा होगा तो अखबार छीन लेंगी कि जब देखो तब अखबार लिए बैठे हो! जैसे मैं मर गयी हूं। भोजन भी करने बैठेगा तो उसकी खोपड़ी खाएंगी। जमाने भर की शिकायतें!

मैं न मालूम कितने परिवारों में ठहरा हूं और जो मैंने देखा, उससे मुझे जाहिर हो गया कि क्यों लोग सादियों से संन्यासी होते रहे। क्यों माया मोह छोड़कर भागते रहे। माया मोह वगैरह कुछ भी नहीं, पत्नी। माया मोह तो सब शब्दिक बात है। पत्नियों ने ऐसा सताया कि एकदम वैराग्य भाव पैदा करवा दिया। और फिर ये ही महात्मा लिखते है : स्त्री नरक का द्वार है। ये किसी और स्त्री के बाबत नहीं लिख रहे हैं, ये एक स्त्री के बाबत लिख रहे है, जिसने इनको नरक का पाठ चखा दिया। मगर उसने पाठ ऐसा चखाया है... कहते हैं न कि दूध का जला छाछ भी फूंक फूंककर पीने लगता है... उसने पाठ इन्हें ऐसा सिखा दिया है कि अब ये स्त्री जाति मात्र के दुश्मन हो गये हैं। एक स्त्री ने इनको सारी स्त्री-जाति का दुश्मन कर दिया।

और यही पतिदेव मर जाएं तो वही पत्नी इनके साथ चिता पर चढ़ने को तैयार हो जाएगी। उसे पश्चात्ताप सताएगा। सती होने में कुछ प्रेम नहीं है, सिर्फ पश्चात्ताप है। पश्चात्ताप है कि जब प्रेम का क्षण था तब मैंने प्रेम न दिया, अब क्या करूं? आत्म-ग्लानि है। सती होना कोई धार्मिक कृत्य नहीं है, यह अधार्मिकता का लक्षण है। यह लक्षण है इस बात का कि जीवन में प्रेम की कमी रही, जीवन रूखा-सूखा रहा प्रेम से। और अब सालती है बात, कचोटती है बात, छाती में छुरी की तरह अटकी है, अब जीना मुश्किल हो गया है। अब तो मर जाना बेहतर है। अब तो कुर्बानी दे दूं अपनी ताकि किसी तरह समतुल हो जाए बात। कि अगर सताया था तो कोई बात नहीं, देखो, अब अपने को बलिदान भी कर दिया।

आदमी का मनोविज्ञान बहुत जटिल है। जैसा तुम उसे ऊपर से देखते हो वैसा ही नहीं है। उसके भीतर जाल पर जाल हैं। जीसस जिंदा थे तो सूली दी और आज आधी पृथ्वी ईसाई है। बुद्ध जिंदा थे तो पत्थर मारे, हत्या करने की हर तरह की चेष्टा की, पागल हाथी छोड़ा, चट्टानें सरकाईं, जहर खिलाया, और आज सारा एशिया पूजा करता है।

जितनी मूर्तियां बुद्ध की हैं उतनी दुनिया में किसी दूसरे व्यक्ति की नहीं। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि अरबी में, उर्दू में जो शब्द है मूर्ति के लिए--बुत, वह बुद्ध का ही रूप है। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध शब्द बुत बन गया। बुद्ध-परस्ती बुत-परस्ती कही जाने लगी। मूर्ति पूजा का अर्थ बुद्ध पूजा। सबसे पहले मूर्तियां बुद्ध की बनीं। और इतना सताया इस आदमी को!

महावीर को तुमने कम पीड़ा दी! कानों में खीले ठोंक दिये। पागल कुत्ते महावीर के पीछे छोड़े। महावीर को गांवों गांवों से भगाया, कहीं टिकने न दिया। और अब जगह जगह गांव-गांव में मंदिर हैं, पूजा चल रही है, स्मरण किया जा रहा है।

आश्चर्य की बात है! मामला क्या है? जीवित सदगुरु से तुम्हें क्या पीड़ा मिलती है? तुम्हें पीड़ा मिलती है। वह तुमसे सत्य सत्य कह देता है, जैसी है बात वैसी ही कह देता है। तुम सोए हो तो कहता है तुम सोए हो। तुम अंधे हो तो कहता है तुम अंधे हो। सूरदास भी नहीं कहता। सीधा कह देना चाहता है, जैसे हो वैसा ही कह देना चाहता है। दो को दो कहता है, तीन को तीन कहता है; दो और दो चार होते हैं, ऐसा ही गणित जैसा साफ उसका वक्तव्य होता है। कोई लाग लगाव नहीं, कोई बनाव श्रृंगार नहीं, कोई बचाव छिपाव नहीं। तुम्हें उसकी बातें चोट करती हैं, झकझोरती हैं। वह तुम्हें हिलाना चाहता है। वह तुम्हें जगाना चाहता है। मजबूरी है उसकी; हिलाए न, जगाए न तो तुम सोए ही रहोगे। तुम चिल्लाओगे, गालियां दोगे।

जर्मनी का प्रसिद्ध विचारक हुआः इमेनुअल कांट। इतना प्रसिद्ध विचारक, इतना बड़ा दार्शनिक! जर्मनी ने दूसरा इतना बड़ा दार्शनिक पैदा नहीं किया। और जर्मनी ने बड़े दार्शनिक पैदा किये। हीगल और शिलर और फ्यूरबाख, और बड़ी परंपरा है जर्मन दार्शनिकों की। लेकिन कांट सर्वोच्च है। लेकिन एक उसकी झंझट थी। वह रोज सुबह उठने में उसको मुश्किल होती थी। नौकर रख छोड़ा था उसने उठाने के लिए। और नौकर भी सिर्फ एक ही टिका उसके पास। क्योंकि जब कोई उसे उठाता था तो वह गालियां दे, मारे। स्वभावतः सोने में उसको ऐसा रस था कि उसे कोई उठाए तो एकदम चिल्लाए, नाराज हो। शाम को समझाकर सोए कि तुम फिकर मत करना। चाहे मैं गाली दूं, चाहे मारूं, चाहे चिल्लाऊं, तुम मुझे उठाना ही। मगर आखिर नौकर भी नौकर है, आदमी है। जब कोई उसे मारने लगे, गालियां देने लगे, चिल्लाने लगे, उसके कपड़े फाड़ डाले और वापस जल्दी से अपना कंबल ओढ़कर फिर सो जाए, तो आखिर नौकर भी सोचे यह किस तरह की नौकरी है!

मगर एक नौकर टिका उसके पास, क्योंकि जब कांट उसको मारे तो वह भी उसकी पिटाई करे। तगड़ा आदमी था, अच्छी उठा-पटक कर दे वह। कांट को खींचकर बिस्तर के बाहर धर पटके। कंबल-वंबल फेंक दे। बिस्तरा उलट दे।

पहले तो कांट भी बहुत हैरान हुआ, उसने कहा कि भाई, तुम हमारे नौकर हो कि हम तुम्हारे नौकर हैं! उसने कहा, नौकर कोई हो लेकिन आपने कहा कि उठाना। और जब आप मुझे मारोगे तो मैं भी मारूंगा। और जब आप मुझे गालियां दोगे तो मैं भी छोड़नेवाला नहीं हूं। अरे, नौकरी एक तरफ; और जब जिंदगी पर आ बन पड़े तो मैं भी अपनी आत्मरक्षा करूंगा। और आत्मरक्षा का श्रेष्ठतम उपाय है--आक्रमण। तो मैं वह धुलाई करूंगा कि तुम भी याद रखोगे!

मगर वह नौकर टिका। कांट उस पर निर्भर हो गया; लेकिन यह एक दिन की बात नहीं थी, यह रोज का मामला था। इससे भी कुछ सीख नहीं आयी। इससे भी काम जारी रहा, वही। रोज सुबह यही उपद्रव, रोज सुबह यही किलकिल।

आदमी भी करीब करीब ऐसा ही सोया है, इससे भी गहरा सोया है। सब सोच विचार एक तरफ, नींद भर तुम्हारी कोई तोड़े तो तुम एकदम नाराज हो जाते हो। तुम चाहते हो कि कोई लोरी गाए और तुम्हारी नींद को गहराए। तुम चाहते हो कि कोई अच्छे ढंग से सोने की विधि समझाए।

तुम्हारे पंडित-पुरोहित यही करते हैं। वे तुम्हारे अंधकार को बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। तुम उनसे प्रसन्न हो। सदगुरुओं से तुम हैरान, परेशान। क्योंकि वे तुम्हें जगाते हैं। और तुम्हारे परम स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहते

हैं। वह स्मरण करने में भी तुम्हें अड़चन है--साहेब मिल साहेब भये; वे कहते हैं मिल जाओ साहेब से, हो जाओ साहेब। हो तो तुम साहब, जरा जग जाओ तो अभी हो जाओ।

कोई पूछ सकता है कि आखिर आदमी अपने परमात्मा होने की घोषणा से भी इनकार क्यों करता है? उसका भी कारण है। उसका कारण बहुत साफ है। अगर तुम अपने को परमात्मा होना स्वीकार करो तो तुम्हें अपना जीवन तत्क्षण बदलना होगा। सड़क पर खड़े बीड़ी पी रहे हो और अगर याद आ गया, साहेब मिल साहेब हो गए, अब सोहन कैसे बीड़ी पी रहे हैं, जरा जंचेगी नहीं बात! जुआ खेल रहे हो, शराब पी रहे हो--और साहेब जुआ खेल रहे हैं, शराब पी रहे हैं, जरा बात जंचेगी नहीं! साहेब चुनाव लड़ रहे है! कि साहेब हाथ जोड़े खड़े हैं, एक एक मतदाता के सामने नाक रगड़ रहे हैं कि वोट दे देना! तुमको खुद ही लगेगा कि यह मेरा क्या परमात्मा का रूप है! यह मैं क्या कर रहा हूं! जेब काट रहे हैं! सिनेमाघर के सामने क्यू लगा है मीलों लंबा, उसमें खड़े हैं! सौ सौ जूते खाएं तमाशा घुसके देखें! पिट रहे हैं, कुट रहे हैं, मगर तमाशा देख रहे हैं। तो तुम कैसे मानो कि तुम परमात्मा हो! तुम कहते हो कि नहीं नहीं, इस झंझट में हमें पड़ना नहीं। यह तो बहुत उपद्रव की बात है। इसको मान लेने का मतलब हुआ कि फिर अपनी पूरी जिंदगी जिस ढंग से जी रहे हैं, वह न जी सकेंगे। मुश्किल हो जाएगी।

तुम अपनी जिंदगी को नही बदलना चाहते। तो ठीक, यह कहो कि हम अपनी जिंदगी को नहीं बदलना चाहते। मगर वह भी तुम नहीं कह सकते। तो तुम यह कहते हो कि नहीं, आदमी कैसे परमात्मा हो सकता है! परमात्मा परमात्मा है, वह मालिक है, आदमी आदमी है; वह स्रष्टा है, हम सृष्टि हैं, हम परमात्मा कैसे हो सकते हैं! हम तो ऐसे ही हैं, ऐसे ही रहेंगे; ऐसा उसने हमें बनाया, हमारी नियति, हमारा भाग्य; लिख दिया विधाता ने जो, कि तुम जुआरी होओ, कि तुम शराबी होओ!

मेरे एक मित्र हैं। सब तरह से भले आदमी हैं, बस शराब पीने की एक आदत है। और अक्सर यह होता है कि शराबी भले आदमी होते हैं। कई तरह से भले होते हैं। बड़े मिलनसार, बड़े प्यारे आदमी हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग शराब नहीं पीते और सिगरेट नहीं पीते और पान नहीं खाते और तम्बाकू नहीं खाते, ये लोग मिलनसार नहीं होते। ये हैकड़ होते हैं, अकड़ू होते हैं। हर बात में झंझट खड़ी कर दें। इनमें दया भाव भी नहीं होता।

वह भले आदमी हैं। एकदम मिलनसार, सब तरह से अच्छे आदमी, मगर उनकी पत्नी को धार्मिक होने की धुन सवार है! अक्सर स्त्रियों को धार्मिक होने की धुन सवार रहती है। सो वह उनकी जान खाती रहती है। वह उनको ले जाती रही साधु संतों के पास। और वे बेचारे जहां ले जाती जाना पड़ता। क्योंकि वे जो एक कसूर करते हैं शराब पीने का, उसकी वजह से डरते हैं पत्नी से। और तो कोई डरने का कारण भी नहीं है, मगर वह जो एक भूल है, उसकी वजह से पत्नी उन्हें बहत डरवाए रखती है। तो जहां ले जाए वहां जाना पड़ता है। तो साधु-संत जो भी कहें उसको सुनना पड़ता था, सिर झुकाकर, कि जी हां-जी हां करते रहते। दिल तो होता कि गर्दन दबा दें--ऐसा मुझको उन्होंने बाद में बताया--कि दिल तो होता कि महाराज को मिटा ही दें बिल्कुल, कि एकदम जूते पर जूते लगाए जा रहा है! और हम कुछ कह भी नहीं सकते क्योंकि पत्नी बैठी हुई है। और पत्नी पकड़कर लाई है कि चलो सुनो, महराज जो कहते हैं समझो।

इसी भूल में उनकी पत्नी उन्हें मेरे पास ले आयी। उसने सोचा कि मैं समझाऊंगा। वे आए वैसे ही डरे डरे, वैसे ही झुके झुके, आंख नीची करके बैठ गये। मैंने कहा, आंख क्यों नीची किये हो? कोई फिकर नहीं, शराब ही पीते हो न! कुछ बड़ा पाप नहीं कर रहे हो। इतने डरने की कोई जरूरत नहीं। और तो कोई पाप नहीं कर रहे। यूं

भी शराब कोई मांसाहार नहीं है। शाकाहारी ही हो न तुम? है तो शाकाहार ही। थोड़ा उन्होंने पत्नी की तरफ देखा कि तू कहां ले आई! पत्नी ने भी उनकी तरफ देखा कि अब क्या करना! मैंने कहा, शाकाहार है। शुद्ध अंगूर की पीते हो न? उन्होंने कहा, बिल्कुल। ऊंची से ऊंची कीमती चीज पीता हूं, कोई ठर्रा पीने की मुझे आदत भी नहीं। मैंने कहा मजे से पीओ, ऐसी क्या घबड़ाने की बात है! दिल खोलकर पीओ! और यह डरते क्या हो? पत्नी ने कहा, आप कह क्या रहे हैं? मैं सुन क्या रही हूं? इनको तो मैं ले जाती हूं, लोग समझा-समझाकर हार गये और तब भी ये नहीं रुके और आप रहे हैं कि दिल खोलकर पीओ! अब तो और मुसीबत हो जाएगी।

मैंने कहा कि एक काम कर। कितने दिन से तू इन्हें रोक रही है? उसने कहा, तीस साल हो गये। जब से शादी हुई। तीस साल हो गये इनको रोकते हुए, नहीं रुकते। तो मैंने कहा, एक काम कर, सात दिन के लिए तू इनको रोकना बंद कर दे। सात दिन एक शब्द मत बोलना शराब के खिलाफ। और सात दिन बाद तू इनको ले आ। और सात दिन के लिए मैंने उनसे कहा कि तुम दिख खोलकर पी लो सात दिन, फिर सोचेंगे।

वे तो बड़े प्रसन्न हुए। जाते वक्त दिल खोलकर पैर छुए--तीन तीन बार छुए। पत्नी बोली, हां, क्यों नहीं छुओगे! मैंने कहा, देखो, सात दिन के लिए बिल्कुल तुम कहना ही मत कुछ।

वह तो तीसरे दिन ही आ गयी कि मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती। मैं नहीं रुक सकती। मैंने कहा, तू अब थोड़ा सोच! जैसी उनको शराब पीने की आदत हैं, ऐसा तुझे रोकने की आदत है, फर्क क्या है? वह तो शराब पीने की आदत से मजबूर हैं, वह तो अब उनके शरीर में घुस गयी, तीस साल पुरानी हो गयी, उनके लहू में मिल गयी, अब तो मच्छर भी उनका खून पीते होंगे तो बेहोश हो जाते होंगे, अब तो भूलकर इनका खून वगैरह किसीको मत दिलवाना कभी किसीको जरूरत पड़ जाए, नहीं तो उसको नशा चढ़ जाएगा; अब तो खून वगैरह कहां होगा, अब तो शराब ही शराब बह रही होगी; तीस साल से डटकर पी रहे हैं, अब तो इनका मांस-मज्जा बन गयी शराब--और तू इनसे रोकने को कहती है। और तुझे तो कुछ खास काम नहीं करना है, सिर्फ कहना नहीं है।

अगर तू अपनी आदत नहीं छोड़ सकती--सिर्फ कहने की बात है, तुझे तो कोई नशा नहीं है! उसने कहा कि नहीं, मैं नही बर्दाश्त कर सकती, मैं बिना कहे रह ही नहीं सकती। और ये तीन दिन में जैसा कष्ट मैंने पाया है, तीस साल में नहीं पाया। क्योंकि अब वे दिल खोलकर पी रहे हैं--और पीते ही नहीं, रात को पीकर मुझे आपका उपदेश देते हैं। आपकी किताबें पढ़ने लगे हैं। और एकदम ज्ञान चर्चा छेड़ते हैं तो मुझे और आग लगती है! कि बैठे तो तुम पीकर हो और ज्ञान चर्चा! और जब वे पी लेते हैं तो फिर वे किसीकी सुनते नहीं। अब कल ही राज दो बजे रात उठकर एकदम प्रवचन देने लगे। और फिर नहीं रुकते। फिर तो रोका भी नहीं जा सकता उनको। मेरी बर्दाश्त के बाहर है!

मैंने कहा कि अगर तू रुक जाए, तो मैं उन्हें भी रोकूं। अगर तुझसे इतना न छूटता हो, तो उनके पीछे भी क्यों पड़ी है, उनसे भी कैसे छूटेगा! तुझे भी लत पड़ गयी है। यह भी तेरी शराब है। तुझे मजा आ रहा है रोकने में। तुझे मजा आ रहा है अहंकार को भरने का। तू मुझ पर छोड़ दे, मैं फिकर कर लूंगा। और तुझे ही अगर फिक्र करनी है, तीस साल से तू कर ही रही है, कुछ हो नहीं पाया। मैं ज्यादा दिन नहीं मांगता, थोड़े ही दिन मांगता हूं, तीस दिन मुझे दे दे। सात दिन तू चुप रह, इसके बाद मैं बात कर लूंगा।

वह तो नहीं रह सकी सात दिन चुप! लेकिन सात दिन बाद पति आए--पत्नी तो आयी ही नहीं, क्योंकि वह चुप नहीं रह सकी--उन्होंने कहा, लेकिन वह नहीं रह सकी चुप, फिर भी एक बात मुझे समझ में आ गयी कि मैं उसके अहंकार को भर रहा हूं शराब पी पीकर। और उसका अहंकार मेरे अहंकार को चोट दे रहा है, कि वह रोकना चाहती है इसलिए मैं नहीं रुक सकता। और मैं पीता हूं, इसमें उसे मजा आ रहा है। अब मैं क्या

करूं? मैंने कहा कि तुम संन्यासी हो जाओ। उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप! शराब मेरी नहीं छूटेगी। मैंने कहा, मैं शराब छोड़ने की कहता ही नहीं, तुम संन्यासी हो जाओ। ये छोटी-मोटी बातें पीछे देख लेंगे। ये तो बहत छोटी-मोटी बातें हैं, इनका कोई खास मतलब नहीं है।

वह संन्यासी क्या हुए, उनकी शराब छूट गयी! वे मुझसे आकर कहने लगे, बड़ी मुश्किल हो गयी; शराब लेकर सामने बैठता हूं और फिर सोचता हूं कि मैं संन्यासी, शराब पीऊं? भाड़ में जाए पत्नी! यही मुझे पिलाती रही तीस साल से। यह रोकती है, इसकी जिद है रोकना, मेरी जिद है--कहीं भीतर मेरे अहंकार को चोट पड़ती है। मैं इसकी जिद के पीछे क्या अपनी जिंदगी खराब करुंगा!

अब तो शराबघर भी नहीं जा सकता। क्योंकि शराबघर गया था, एक आदमी मेरे पैरों पर गिर पड़ा और बोला, महात्मा जी, आप यहां कैसे? तो मैंने कहा, क्यों भाई? उसने कहा, यह शराबघर है। मैंने कहा, अरे मैं भूल से आ गया। मैं तत्क्षण लौट पड़ा।

तुम्हें अगर यह स्मरण भी बनना शुरू हो जाए कि तुम परमात्मा हो, तो तुम पाओगे तुम्हारी जिंदगी में क्रांति होनी शुरू हो गयी। क्रमशः, आहिस्ता आहिस्ता तुम कुछ चीजों को गिरते दिखोगे, बिना छोड़े छूटते देखोगे। क्योंकि स्वयं की भगवत्ता का बोध इतना बड़ा बोध है! बाढ़ की तरह आता है, सब बहा ले जाता है कूड़ा-करकट, गंदगी, जन्मों जन्मो की गंदगी।

मलूक ठीक कहते हैं--

साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।

कहै मलूक तिस घर गये, जहं पवन न जाई।।

अब उस घर में हम पहुंच गये हैं, जहां हवा का भी प्रवेश नहीं हो सकता, वहां हमारा प्रवेश हो गया है। वह घर तुम्हारे ही भीतर है। वह मंदिर तुम्हीं हो। तुम्हीं हो काबा, तुम्हीं हो काशी, कहीं और जाना मत, कहीं और खोजना मत, सिर्फ एक स्मरण को गहरा करते जाओ कि साहब तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। उठो, बैठो, चलो, भूलो मत कि साहब तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। इस स्मरण को जितना सघन कर सको, करो और तुम पाओगे कि तुम्हारी जिंदगी में क्रांति होनी शुरू हो गयी। यह स्मरण जैसे जैसे सघन होगा वैसे वैसे कुछ चीजें गिरती जाएंगी गिरती जाएंगी। एक दिन तुम पाओगे, सब कचरा बह गया है। कछु रही न तमाई। कोई अंधकार न बचा, कोई अहंकार न बचा। आलोक ही आलोक।

आलोक हमारा स्वभाव है। पाना नहीं है, उपलब्धि नहीं है आलोक, हमारी निजता है।

जरा सा दर्शन तुम्हें इसका हो जाए तो तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे स्वभाव को लगा है। स्वभाव ने लिखा है--

भगवान,

कैसे सकून पाऊं तुम्हें देखने के बाद

अब क्या ग.जल सुनाऊं तुम्हें देखने के बाद

आवाज दे रही है मेरी जिन्दगी मुझे

जाऊं या मैं न जाऊं तुम्हें देखने के बाद

कैसे सकून पाऊं...

काबे का इहतराम भी मेरी नजर में है

सर किस जगह झुकाऊं तुम्हें देखने के बाद

कैसे सकून पाऊं...

तेरी निगाहे-मस्त ने मखमूर कर दिया

क्या मैकदे को जाऊं तुम्हें देखने के बाद

कैसे सकून पाऊं...

नजरों में ताबे-दीद भी बाकी रही नहीं

किससे नजर मिलाऊं तुम्हें देखने के बाद

कैसे सकून पाऊं तुम्हें दिखने के बाद

अब क्या गजल सुनाऊं तुम्हें देखने के बाद

जरा भीतर झांको, गजलें ही गजलें गूंज उठती हैं। गीत ही गीत फूट पड़ते है। फूल ही फूल खिल जाते हैं। जरा भीतर देखो, दीये ही दीये जल जाते हैं। दीपावली हो जाती है। जरा भीतर देखो, रंगों की फुहारें फुट पड़ती हैं। फाग मच जाती है। जरा भीतर मुड़ कर देखो, बांसुरी बज उठती है, कोयल कूकने लगती है, पपीहा पी-पी पुकारने लगता है। जरा भीतर मुड़ कर देखो।

मेरे पास होने का एक ही प्रयोजन हो सकता है कि तुम भीतर मुड़ कर देखने की कला सीख जाओ। संन्यास भीतर मुड़ कर देखने की कला है।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

ये फूल लपटें ला सकते हैं

१२ जुलाई १9८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः भगवान, आपकी मधुशाला में ढाली जानेवाली शराब पी-पीकर मखमूर हो गया हूं। भगवान, प्यार करने वालों पर दुनिया तो जलती है मगर अपनी मधुशाला के दूसरे पियक्कड़ भी प्रेम के इतने विरोध में हैं--खासकर पचास प्रतिशत भारतीय, जो कि आज दस-बारह वर्षों से आपके साथ हैं। प्रभु, हमारे विदेशी मित्र तो प्यार करनेवालों को देखकर खुश होते हैं, मगर भारतीय सिर्फ जलते ही नहीं बल्कि अपराधजनक दृष्टि से देखते हैं और घंटों व्यंग्यपूर्ण बातचीत करते रहते हैं। यह जमात प्रेम का बस एक ही मतलब जानती है--"काम"। ऐसा क्यों, प्रभु? क्या प्रेम कर कोई और आयाम नहीं है, खासकर नर-नारी के संबंध में?

स्वभाव! भारतीय चित्त सदियों से कलुषित हैं। प्रेम के प्रति निंदा की एक गहन अवधारणा हजारों वर्षों से कूट-कूटकर भारतीय मन में भरी गयी है। वह भारतीय खून का हिस्सा हो गयी है। उसे ही हम संस्कृति कहते हैं, धर्म कहते हैं और बड़े-बड़े सुंदर शब्दों में छिपाते हैं। लेकिन सारे आवरणों के भीतर प्रेम का निषेध है। और प्रेम का निषेध मूलतः जीवन के ही निषेध का एक अंग है।

प्रेम का निषेध ऐसा है जैसे कोई वृक्ष के विरोध में हो और जड़ों को काटे। जड़ें कट जाएंगी, वृक्ष अपने से मर जाएगा। प्रेम विषाक्त हो जाए तो तुम जीवन के प्रति अपने आप उदासीन हो जाओगे। जीवन में सिवाय प्रेम के और कोई रसधार नहीं है। जीवन जीवन है क्योंकि प्रेम प्रवाहित है। प्रेम सूखा, जीवन का वसंत गया; पतझड़ आयी। ठूंठ रह जाता है फिर जीवन। लेकिन हमने ठूंठों की पूजा की सदियों से। हमने उन्हें संत कहा, महात्मा कहा।

जो भारतीय मित्र यहां मेरे पास हैं, वे मेरे पास जरूर हैं लेकिन मेरी बातें कितनी समझ पाते हैं, यह जरा कहना कठिन है। उनमें से पचास प्रतिशत भी समझ लेते हैं तो चमत्कार है।

तुम कहते हो कि पचास प्रतिशत भारतीय मित्र जो आपके पास दस-बारह वर्षों से हैं, वे भी नहीं समझ पा रहे हैं, वे भी प्रेम का एक ही अर्थ लेते हैं--यौन।

जब प्रेम का विरोध किया जाएगा तो प्रेम संकुचित होकर यौन का पर्यायवाची हो जाता है। जब प्रेम को अंगीकार किया जाएगा तो प्रेम फैलता है और प्रार्थना का आकाश बन जाता है।

निषेध में चीजें सिकुड़ती हैं, विधेय में फैलती हैं। आलिंगन करो प्रेम का तो तुम में नये-नये पत्ते, नये-नये फूल खिलते हैं, नये फल लगते हैं, जड़ें काटो उसकी तो ठूंठ ही रह जाता है। कंकाल मात्र। वही हुआ। भारतीय मानस में प्रेम का अर्थ यौन रह गया। स्त्री का अर्थ देह रह गया। जैसे स्त्री में कोई आत्मा ही नहीं है। यूं तो बातें करते हैं कि कण-कण में परमात्मा विराजमान है, यूं तो बड़ी अद्वैत की चर्चा चलती है, मगर सारी चर्चा झूठी मालूम पड़ती है। क्योंकि स्त्री तक में परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता। उसी स्त्री में जिसकी कोख में जन्म लिया, जिस गर्भ में नौ महीने बड़े हुए, जिसका खून तुम्हारी रगों में, जिसकी हड्डी-मांस मज्जा से तुम बने हो। पचास प्रतिशत तुम्हारे जीवन का दान स्त्री में, जिसकी हड्डी-मांस-मज्जा से तुम बने हो। पचास प्रतिशत तुम्हारे जीवन

का दान स्त्री ने दिया है। उसको ही नर्क कहते हुए शर्म भी न आयी तुम्हारे तथाकथित ऋषियों को, मुनियों को! और यह उन्होंने पांच हजार साल पहले कहा था, मगर वही दशा आज भी है।

स्त्री सिकुड़कर शरीर रह गयी। और शरीर रह जाए स्त्री सिकुड़कर तो नरक का द्वार है। तुम्हारे शास्त्रस्त्री की गणना पशुओं में, गंवारों में, शूद्रों में करते हुए संकोच नहीं खाते। जरा भी ऐसा नहीं लगता उन्हें कि कुछ अशोभन हो रहा है। एक तरफ कहेंगे कि"सियाराममय सब जग जानी", कि सारे जगत में राम और सीता दिखायी पड़ रहे हैं, सारा जगत राम और सीताओं में ही डूबा हुआ है। और दूसरी तरफ उसी जबान से--लड़खड़ाती भी नहीं जबान; झिझकती भी नहीं; थोड़ी ठहरती भी नहीं--इन्हीं सीताओं को : "ढोल गंवार सूद्र पसू नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।" इन्हीं सीताओं को : जैसा ढोल को पीटो तो बजता है, बिना पीटे नहीं बजता, ऐसे इनको पीटो, यही इनकी पात्रता नहीं।

तुम्हारे ऋषि-मुनि दो मुंहें मालूम पड़ते हैं। सांपों की ही दो जबानें नहीं होती, ऋषि-मुनियों की भी दो जबानें होती हैं। और सांपों के पास जहर नहीं होता, तुम्हारे ऋषि-मुनियों के पास उससे भी ज्यादा जहर हैं। वही ऊर्जा जो प्रेम बनती, प्रेम नहीं बन पायी तो जहर बन गयी। अमृत बन सकती थी-- खिलती, फैलती, विकसित होती। नहीं फैली, नहीं खिली, सिकुड़ गयी, सड़ गयी तो जहर बन गयी।

अमृत ही रुक जाए, अवरुद्ध हो जाए तो जहर हो जाता है। पानी की खार ठहर जाए तो सड़ जाती है। और फिर तुम गाली देते हो। ठहरते तुम, पत्थर के अवरोध तुम खड़े करते हो, बांध तुम बनाते हो, और फिर धार सड़ जाती है तो गालियां देते हो, कि इससे दुर्गंध उठती है। तुम्हीं जिम्मेवार हो। और यह बात इतने अचेतन में डूब गयी है कि आज तुम्हें इसका होश भी नहीं है। ऊपर से मेरी बातें सुन लेते हो, तर्कयुक्त लगती है बात तो शायद राजी भी हो जाते हो, मगर तुम्हारा अचेतन मन तो पुरानी धारणाओं में ही लिप्त है। वह तो अब भी कहीं गहरे में शास्त्र ही गुनगुना रहा है। मेरे पास दस-बारह साल आकर भी कुछ नहीं होता।

मैं जानता हूं उन पचास प्रतिशत मित्रों को जो यहां हैं। उन्हें यहां नहीं होना चाहिए। यहां होने का उनका कोई कारण नहीं है। लेकिन मैं जिस तरह के काम में लगा हूं, यह काम ऐसा ही है जैसे कोई कुआं खोदता है। जब तुम कुआं खोदते हो तो पहले तो कूड़ा-करकट हाथ लगता है। स्वभावतः। ऊपर तो जमाने भर का कूड़ा-करकट जमीन पर इकट्ठा होता है। जब खुदाई करोगे तो कूड़ा-करकट पहले हाथ लगेगा। फिर और खोदोगे तो पत्थर-कंकड़-सूखी मिट्टी हाथ लगेगी। फिर और खोदोगे तो गीली मिट्टी हाथ लगेगी। फिर और खोदते ही चले जाओगे तो जलधार हाथ लगेगी। फिर और खोदोगे तो स्वच्छ धार के झरने मिलेंगे।

तो शुरू-शुरू में जब मैंने कुआं खोदना शुरू किया तो बहुत-सा कूड़ा-करकट भी आ गया। उसे हटाने की चेष्टा मैं लगा हूं। बड़ी मात्रा में तो हट गया है; मगर फिर भी कुछ लोग अटके रह गये हैं। वे त्रिशंकु की भांति हो गये हैं। वे मेरे साथ नहीं हैं। वे भी जानते हैं, मैं भी जानता हूं। वे मेरेसाथ हो सकते नहीं हैं, क्योंकि वे अपनी धारणाएं छोड़ने को राजी नहीं हैं। मेरी बातों को सीधा इंकार नहीं कर सकते हैं : क्योंकि इंकार करें तो छोड़ना पड़ेगा। मुझसे आसक्ति भी बन गयी है, मुझसे लगाव भी बन गया है, मगर लगाव ऊपरी है, आत्मिक नहीं है। कहीं और जाने को भी कोई जगह न बची। सो अटक रहे हैं। जा भी नहीं सकते। जाएं भी तो किसी और की बात रुचती भी नहीं है; रुचेगी भी नहीं, क्योंकि बुद्धि से मेरी बातें ठीक मालूम होने लगी हैं। और पूरी तरह हो भी नहीं सकते। तो छिपे-छिपे, गुपचुप, अंधेरे में से उनके चित्त की धारणाएं झांक-झांक जाती हैं। न-मालूम किस-किस रूप में प्रगट होती रहती हैं।

मैं एक-एक व्यक्ति को जानता हूं कि उन्हें यहां नहीं होना चाहिए। लेकिन दस-बारह वर्ष से मेरे साथ हैं, तो मैं भी उनको कहता नहीं कि अपनी राह पकड़ो। सोचता हूं या तो बदल ही जाएंगे, या फिर धीरे-धीरे हट जाएंगे। कोई-न कोई रास्ता बन ही जाएगा। मैं भी कठोर नहीं हो सकता। आशा रखता हूं कि क्रांति उनके जीवन में शायद हो जाए। मगर "शायद" बड़ा है, छोटा नहीं। आशावादी हूं, इसलिए आशा रखता हूं। वैसे संभावना बहुत कम है।

उनका कसूर भी नहीं है। सिर्फ वे स्पष्ट नहीं हैं कि अपने जीवन को क्या दिशा देनी है। अगर पुरानी धारणाओं को ही मानकर चलना है तो मेरे साथ चलना व्यर्थ समय गंवाना है। अगर मेरे साथ चलना है तो पुरानी धारणाओं कोढोना नाहक बोझढोना है। लेकिन यह भी हो सकता है उन्हें भी साफ न हो।

आदमी इतना अचेतन है जिसका हिसाब नहीं।

कल ही अखबारों में मैंने पढ़ा, स्वामीनारायण संप्रदाय के प्रधान श्री प्रमुख स्वामी जी लंदन में हैं। वे इंग्लैंड के केंटरबरी के आर्चबिशप से मिलने जानेवाले हैं। इंग्लैंड का सबसे बड़ा जो धर्मगुरु। सब तय हो गया, शायद आज कल में कभी मिलने की तिथि है, लेकिन अभी आखिर-आखिर में उन्होंने अपनी शर्तें भेजी। श्री प्रमुख स्वामी स्त्री का चेहरा नहीं देखते। तो उन्होंने अभी-अभी उन्हें खबर भेजी है कि जब मैं मिलने आऊं तो कोई स्त्री उपस्थित नहीं होनी चाहिए। सारे इंग्लैंड में उपद्रव मच गया। यह कोई हिंदुस्तान तो नहीं है कि स्त्रियां चुपचाप सह लेंगी। कि उन्हीं महात्माओं का व्याख्यान सुनती रहेंगी जो उनको "ढोल गंवार सूद्र पसू नारी" कह रहे हैं। उन्हीं महात्माओं का प्रवचन सुनती रहेंगी जो उनको नरक का द्वार बता रहे हैं। उन्हीं महात्माओं के पैर दबाती रहेंगी, यह कोई हिंदुस्तान तो नहीं। सारे इंग्लैंड में स्त्रियों ने बड़े जोर से विरोध किया है। क्योंकि वहां स्त्रियां पत्रकार आनेवाली थी, स्त्रियां फोटोग्राफर आनेवाली थीं, ... और तो और केंटरबरी के आर्चबिशप की जो सेक्रेटरी है, वह भी स्त्री। वह तो मौजूद रहेगी ही।

केंटरबरी का आर्चबिशप भला आदमी, बड़ी दुविधा में पड़ गया कि हां भी भर चुका हूं मिलने के लिए, अब इंकार भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। और यह शर्त बेहूदी है। इसका विरोध किया जा रहा है। कि यह बीसवीं सदी है, यह किस सदी की बात कर रहे हो! किस्त्री को नहीं देखेंगे!

लेकिन भारत में तो कभी कोई विरोध नहीं हुआ-- यहां भी वे स्त्री को नहीं देखते। यहां कुछ स्त्रियां ही ज्यादा भक्त होती हैं। स्त्रियां बड़ी प्रभावित होती हैं इस बात से कि जरूर यह व्यक्ति महापुरुष है। जब हममें कोई रस नहीं लेता, इतना भी रस नहीं लेता कि हमको देखता नहीं, तो जरूर पहुंचा हुआ सिद्ध है। कोई स्त्री अपने पति को थोड़े ही सम्मान देती है--भारतीय स्त्री कभी अपने पति को सम्मान नहीं दे सकती है। लाख कहे कि तुम स्वामी हो, पतिदेव हो, तुम मेरे परमात्मा हो, यह सब बकवास है। भारतीय स्त्री अपने पति को सम्मान दे ही नहीं सकती। क्योंकि भीतर से तो वह जानती है कि महापापी है। यही तो मुझे पाप में घसीट रहा है। यही दुष्ट तो मुझे न-मालूम कहां के नर्क में घसीट रहा है। इसके कारण ही तो मैं सब तरह के पापों में पड़ी हूं--और तो मुझे कोई पाप में घसीटने वाला है नहीं। तो गहन अचेतन में तो पति के प्रति अपमान होगा ही।

और वह अपमान तरहत्तरह से निकलता है। हर तरह से निकलता है। कितनी कलह पत्नियां खड़ी रखती हैं पति के लिए! उसके मूल में तुम्हारे महात्मा हैं। और उन महात्माओं को सम्मान देती हैं, जो उनके अपमान के आधार हैं, जिन्होंने उनके जीवन को कीड़े-मकोड़ों से बदतर बना दिया है। और उनका यह समझ में भी नहीं आता, यह सीधा-सा तर्क भी समझ में नहीं आता कि जो आदमी स्त्रियों को देखने से डरता है, इस आदमी के

चित्त में कामवासना अत्यंत कुरूप, अत्यंत विकराल रूप में खड़ी होगी। क्योंकि स्त्री को देखने में क्या डर हो सकता है! स्त्री कोदेखने में डर नहीं हो सकता, डर होगा तो कहीं भीतर होगा, अपने भीतर होगा।

लोभी धन को देखने से डरेगा। स्भावतः क्योंकि धन को देखकर वह अपने पर वश नहीं रख सकता। कामी स्त्री को देखकर डरेगा। क्योंकि देखकर स्त्री को अपने पर वश नहीं रख सकता। कामी स्त्री को देखकर डरेगा। क्योंकि देखकर स्त्री को अपने वश नहीं रख सकता। किसी तरह स्त्री को देखे ही नहीं, तो चल जाती है बात। अब धन दिखायी ही न पड़े कहीं, तो लोभी करे भी क्या! कोई कंकड़-पत्थर से तिजोरी भरे! धन दिखायी ही न पड़े कहीं, तो लोभ अप्रगट रह जाएगा। और अप्रगट लोभ से यह भ्रांति पैदा हो सकती है कि लोभ मिट गया। स्त्री दिखायी ही न पड़े, तो अप्रगट काम से यह भ्रांति पैदा हे सकती है कि काम मिट गया। मगर काम यूं मिटता नहीं। पड़ा रहता है, सूखी धार की तरह।

यूं समझो, वर्षा के बाद तुम देखते हो, मेंढक कहीं दिखायी नहीं पड़ते। कहां चले जाते हैं? इतने मेंढक मरे हुए भी नहीं दिखायी पड़ते। वर्षा में तो कितनी मेंढकों की जमात दिखायी पड़ती है, फिर वर्षा के बाद क्या होता है? मेंढक जमीन में दब कर पड़ जाते हैं। सांस नहीं लेते। करीब-करीब मुर्दा हो जाते हैं। लेकिन करीब-करीब मुर्दा! सांस बंद, भोजन बंद, सब बंद हो जाता है। मेंढक को एक कला आती है कि वह आठ महीने मुर्दे की तरह भूमि के गर्भ में दबा हुआ पड़ा रहता है। और जब वर्षा की बूंदाबांदी होती है, आकाश में बादल गरजते हैं, बिजलियां कड़कती हैं, उसके भीतर भी कोई चीज कड़क उठती है, जग उठती है, मेंढक फिर जीवित हो उठता है। मरा था नहीं, जैसे गहरी प्रसुप्ति में सो गया था। इतनी गहरी प्रसुप्ति में जहां किश्वास का चलना भी बंद हो जाता है।

कोई मेंढक इतनी आसानी से नहीं मर जाता। इसीलिए वर्षा के बाद तुम्हें एकदम मेंढक ही मेंढक मरते हुए नहीं दिखायी पड़ते। सब तरफ नहीं तो मेंढक ही मेंढक मरे हुए पड़े मिलें। सब मेंढक जमीन में दबकर पड़ जाते हैं। और अगर तुम जमीन को खोदो तो जगह-जगह तुम्हें मेंढक दबे हुए मिल जाएंगे। खासकर तालाब और पोखरों के पास की जमीन अगर तुम खोदो, तुम दंग रह जाओगे। सूखे मेंढक पड़े रहते हैं। लेकिन पानी छिड़को और जीवित हुए।

ऐसी ही मनुष्य की वासनाएं हैं। सूख के पड़ जाती हैं। जरा पानी छिड़को, फिर जग जाती हैं।

मैं तो कहूंगा कि इंग्लैंड की स्त्रियों को स्वामी महाराज को अच्छा पाठ पढ़ा देना चाहिए। क्योंकि भारत की स्त्रियां तो अभी पाठ पढ़ा सकेंगी, यह जरा मुश्किल है। हां, मेरी संन्यासिनियां पाठ पढ़ा सकती हैं, अच्छे पाठ पढ़ा सकती हैं। लेकिन इंग्लैंड से भागने नहीं देना चाहिए-- अब फंस ही गये हैं, अपने-आप इंग्लैंड आ गये हैं, तो अब जगह-जगह उनके घिराव करने चाहिए। इंग्लैंड की प्रधान मंत्री स्त्री है, इंग्लैंड की साम्राज्ञी स्त्री है! स्त्रियों को पूरी ताकत लगा देनी चाहिए, यह अपमान बरदाश्त करने योग्य नहीं है। जहां भी वे जाएं, हर जगह उन पर घिराव होने चाहिए। यह केवल स्वामी जी की ही मूढ़ता का प्रदर्शन नहीं हैं, यह पूरी भारती मूढ़ता का प्रदर्शन है। यह भारत का अपमान है। इस तरह का अभद्र व्यवहार करना स्त्रियों के साथ!

हवाई जहाज पर जाते हैं, तो उनके चारों तरफ एक पर्दा लगा देते हैं, वे पर्दे के भीतर बैठे रहते हैं। क्योंकि परिचारिकाएं हैं, तो स्त्रियां। वे पर्दे में छिपे बैठे रहते हैं। वे पर्दे में ही छिपे हुए... । आदमियों को बुर्के ओढ़े देखे हैं? ऐसे इनको बुर्का बना लेना चाहिए। बेहतर तो यह हो सबसे कि आंखों पर एक पट्टी क्यों नहीं बांध लेते? और एक आदमी का हाथ पकड़कर चलते रहो! न स्त्री दिखायी पड़ेगी, न पुरुष दिखायी पड़ेगा। क्योंकि पुरुष भी दिखाई पड़े तोस्त्री की याद तो दिलाएगा ही। कि आखिर पुरुश आया कहां से? आखिर इस पुरुष की

स्त्री होगी; मां होगी, बहन होगी, पत्नी होगी, लड़की होगी। पुरुष को देखकर स्त्री की याद तो आ ही सकती है। आखिर पुरुष और स्त्रियां कोई इतने दूर-दूर के जानवर भी तो नहीं हैं। पास ही पास के जानवर हैं। एक ही गर्भ से आए हुए हैं, इतना कुछ बहुत भेद भी नहीं है।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कोई भी पुरुष स्त्री होना चाहे तो हो सकता है। कोई भी स्त्री पुरुष होना चाहे तो हो सकती है। और कई दफे नैसर्गिक रूप से घटना घट जाती है कि कुछ पुरुष स्त्री हो जाते हैं, कुछ स्त्रियां पुरुष हो जाती है। फासला बहुत नहीं है, मात्रा का है, थोड़ी-सी मात्रा का है--थोड़े हारमोन का फर्क है। जल्दी ही यह व्यवस्था हो जाएगी कि जिंदगी में दो-चार दफे अपने को बदल लो। एक ही जिंदगी में क्यूं न दो-चार जिंदगियों का मजा लिया जाए! कभीस्त्री हो गये, फिर कभी पुरुष हो गये; कभी पुरुष हो गये, कभी स्त्री हो गये! सब पहलओं से जिंदगी क्यों न देखी जाए! इसमें मैं कुछ एतराज नहीं देखता।

अगर एक इंजेक्शन लगाने से ही हारमोन के पुरुष स्त्री होती हो, स्त्री पुरुष होता हो, तो यह बदलाहट करने जैसी है। साल-दो साल पति रहे, साल-दो साल पत्नी रहे। पत्नी को भी मौका दो पति होने का। यूं जिंदगी का अनुभव ज्यादा होगा, गहरा होगा, ज्यादा समृद्ध होगा।

कोई फर्क ज्यादा तो नहीं। पुरुष का चेहरा भी देखकर स्त्री के चेहरे की याद आ सकती है। और जवान चेहरे, जिन पर अभी दाढ़ी-मूंछ भी न ऊगी हो, उनको देखकर तोस्त्री के चेहरे की याद आ सकती है। आंख पर पट्टी ही बांध लेनी चाहिए--आंख फोड़ ही लेनी चाहिए, झंझट ही मिटा दो, पट्टी-वट्टी भी क्यों बांधनी! सूरदास ही रहो! फिर जहां जाना हो जाओ। इंग्लैंड जाओ, अमरीका जाओ, जहां जाना हो जाओ। नग्न स्त्रियां नहाती रहीं तो भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती। इंद्र अप्सराएं भेजे जो भी तुम्हारा कुछ बिगड़ नहीं सकता। तुम्हें कुछ दिखायी ही नहीं पड़ेगा तो क्या पता चलेगा कि अप्सराएं नाच रही हैं आसपास, कि हुड़दंग मचाने वाले लोग हुड़दंग मचा रहे हैं, कौन नहीं है?

बीसवीं सदी और अब भी इस तरह की धारणाएं!

स्वभाव! तो यहां मेरे पास तुम्हें जो पचास प्रतिशत भारतीयों में अड़चन दिखायी पड़ती है, कुछ आश्चर्य नहीं है। यही स्वामी जी महाराज पैसे लोगों ने इनकी बुद्धि को निर्मित किया है--हजारों साल से निर्मित किया है। गहरे अचेतन में सांप-बिच्छुओं की तरह दबे हुए रोग पड़े हैं। मेरी बातें ऊपर से समझ लेते हैं मगर भीतर गहरे में वही बातें सरकती रहती हैं। इसलिए इनके व्यक्तित्व में एक दोहरापन पैदा हो जाएगा। मेरी बात सुनेंगे तो यूं सिर हिलाएंगे कि जैसे इनकी समझ में आ रहा है। और भीतर ठीक इसके विपरीत इनकी समझ है। इसलिए वह समझ भी कभी-कभी रास्ते खोजेगी और प्रगट होगी। तो व्यंग्य बनेगी, जलन बनेगी, दूसरों को अपराधपूर्ण दृष्टि से देखने का भाव पैदा होगा।

यहां जो भारतीय संन्यासी हैं, मेरे पास आश्रम में जो रह रहे हैं, उनमें पचास प्रतिशत निश्चित ही कचरा हैं! न किसी काम के हैं, न किसी उपयोग के हैं, सिर्फ एक उपद्रव हैं। लेकिन फिर भी वे अपने को श्रेष्ठ मानते हैं।

यहां विदेशी संन्यासी हैं, वे सारा श्रम उठा रहे हज। इस आश्रम की सारी रौनक, सारी कुशलता उनके कारण है। भारतीय न तो काम करेंगे, न श्रम करेंगे, लेकिन फिर भी एक अकड़ भीतरी उनकी कि वे भारतीय हैं; कुछ विशिष्टता है उनकी, कुछ पवित्रता हैं उनकी, कुछ धार्मिकता है उनकी, वे श्रेष्ठ हैं। बस सिर्फ भारतीय होने के कारण श्रेष्ठ हैं। श्रेष्ठता किसी हिस्से में भी सिद्ध नहीं करते हज। सिर्फ एक भीतरी अहंकार है। अब उस अहंकार को कैसे पोषण मिले? उसको पोषण मिलने के लिए ये सरल रास्ते हो जाते हैं। कि निंदा करो औरों की। कारण खोज लो ऐसे। कि अरे, ये सब भ्रष्ट लोग! कि ये सब कामवासना में पड़े हुए लोग! सचाईबिल्कुल उलटी है।

सचाई यह है कि यहां अब तक एक भारतीय स्त्री ने मेरे पास शिकायत नहीं कि है कि किसी विदेशी ने उसके कपड़े खींच दिये हों, कि चिउंटी ले दी हो। लेकिन कितनी विदेशी स्त्रियां मुझे रोज पत्र लिखती हैं कि हम क्या करें? भारतीय आते हज तो वे जैसे ध्यान करने नहीं आते, न आपको सुनने आते हैं; कोई चिउंटी काट रहा है, कोई कपड़े खींच देता है, कोई धक्का ही मार देता है। यहां इतने भारतीयों ने विदेशी संन्यासिनियों पर बलात्कार किये, नगर में, लेकिन एक भी ऐसी घटना नहीं घटी कि किसी विदेशी संन्यासी ने किसी भारतीय महिला के साथ ऐसी घटना नहीं घटी कि किसी विदेशी संन्यासी ने किसी भारतीय महिला के साथ बलात्कार करने की चेष्टा की हो; छेड़खान भी की हो।

फिर भी भारतीय समझेंगे कि वे महात्मा हैं। भारत की पुण्यभूमि में पैदा हुए हैं, और क्या चाहिए महात्मा होने के लिए! काफी है इतना। यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! पता नहीं किस तरह के देवता हैं जो यहां पैदा होने को तरसते हैं! और किसलिए तरसते हैं? सड़ना है, क्या करना है? लेकिन भारतीयों को यह भ्रांति है।

यहां हर महीने का यह अनुभव है। जब हिंदी का शिविर उनके लिए है, तब वे आने शुरू हो जाते हैं। बहुत हैरानी की बात है। हिंदी का शिविर उनके लिए है, तब वे आते नहीं। उन्हें क्या लेना-देना है हिंदी से या शिविर से! अंग्रेजी के शिविर में आते हैं यहां। अंग्रेजी समझ में नहीं आए चाहे। लेकिन अंग्रेजी के शिविर से उनको प्रयोजन है। क्योंकि उस वक्त पाश्चात्य संन्यासिनियों की भीड़ होगी यहां, तो धक्कम-धुक्की का मौका मिल जाएगा। चोरी का मौका मिल जाएगा। सिर्फ जब भारतीय यहां बाहर से आते हैं तो चोरी होती है। नहीं तो चोरी नहीं होती।

अभी पुलिस ने एक अड्डा पकड़ा है भारतीयों का जहां करीब तीन लाख रुपयों की विदेशियों की चीजें पकड़ी गयीं। वे सब संन्यासियों की चीजें हैं। क्योंकि और तो पूना में कौन विदेशी हैं? लेकिन अब वे तो सालों पहले आए, गये लोग--खबरें छोड़ गये हैं किसी का कैमरा चोरी गया है, किसी का टेपरिकार्डर चोरी गया है, किसी की घड़ी चोरी गयी है, वे सब पकड़ी गयी हैं, मगर अब जिनकी चीजें हैं वे यहां मौजूद नहीं हैं। किनकी हैं, यह आश्रम को पता नहीं है, सिर्फ इतना पता है कि इस तरह की चीजें चोरी गयी हैं। पुलिस भी मानती है कि हैं तो वे सब संन्यासियों कि ही चीजें, मगर पुलिस की भी मजबूरी है, वह करे क्या? वह हमको आश्रम को दे नहीं सकती। और किनकी हैं, इनके लिए आश्रम के पास कोई प्रमाण नहीं हैं।

और भारतीय बस एक अहंकार है, एक दंभ है। और इस दंभ को और तो कोई मौका मिलता नहीं, किसी और दिशा में तो यह अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकता नहीं। जिस काम में भी भारतीयों को आश्रम में लगाया जाता है, उसी काम में वे तृतीय श्रेणी के साबित होते हैं। और इसका कारण यह नहीं है कि उनके पास प्रतिभा की कमी है।

इसका कारण यह है कि कामचोर हैं। इसका कारण यह है कि करना नहीं चाहते। वे तो आते ही आश्रम में इसलिए हैं, उनके आने का कारण ही यही है कि काम वगैरह नहीं करना पड़ेगा। आश्रम का भारत में यही अर्थ रहा है। उनको यह पता नहीं कि यह आश्रम उस अर्थ में आश्रम नहीं है। वे तो कहते हैं : हम तो भक्ति-भाव करेंगे। तो तुम्हारे भोजन की चिंता कौन करे? तुम्हारे कपड़ों की चिंता कौन करे? तुम तो तुम्हारे भोजन की चिंता कौन करे? तुम्हारे कपड़ों कि चिंता कौन करे? तुम तो भक्ति-भाव करोगे, बाकी भोजन वगैरह भी करोगे

कि नहीं? कपड़े भी चाहिए कि नहीं तुम्हें? वह चिंता कौन करे? वह चिंता दूसरे लोग करें। भारतीय तो सेवा लेने को हमेशा तत्पर हैं। और संन्यासी हो गये फिर तो सेवा ही चाहिए।

यहां मेरे पास लोग आते हज, पत्र लिखते हज कि हम संन्यास लेने को राजी हैं, मगर संन्यास पीछे लेंगे अगर हमें यह आश्वासन हो कि हमें आश्रम में प्रवेश मिलेगा। और मैं उनसे पुछवाता हूं कि आश्रम में करोगे क्या? वे कहते हैं, आश्रम में कुछ करना ही होता तो आश्रम में क्यों आते? यहां तो भक्ति-भाव करेंगे; प्रभु-भजन करेंगे। मुझे कोई एतराज नहीं, प्रभु-भजन करो, मगर भोजन वगैरह मत मांगना। जितना दिल हो उतना भजन करो। तब वे कहते हैं, भूखे भजन न होहिं गोपाला। तो भोजन की चिंता विदेशी करें, कपड़ों की चिंता विदेशी करें, वे तुम्हारे लिए श्रम करें और तुम भजन-भात करो! और तुम महात्मागीरी करो! और तुम उनसे पैर दबवाओ। और उनको निंदा की दृष्टि से देखो। और देखो कि ये म्लेच्छ। और इनको निंदा की दृष्टि से देखने का एक ही तुम्हारे पास उपाय है, वह यह है कि तुम इनकी प्रेम की जा जीवनदृष्टि है, उसको तुम सरलता से निंदा कर सकते हो अपने मन में।

स्वभाव, इसलिए तुम्हें यह अनुभव हुआ कि वे पचास प्रतिशत भारतीय मित्र जो यहां आश्रम में हैं, न केवल जलते हैं प्रेम करनेवालों से बल्कि अपराधजनक दृष्टि से भी देखते हैं--वे तो उन्हें पापी मानेंगे ही। और घंटों व्यंग्यपूर्ण बातचीत करते रहते हैं। वही तो उनका भक्ति-भाव है, और काम क्या है? फुर्सत ही फुर्सत है उनको। काम उन्हें कुछ करना नहीं है। उनसे काम करने को कुछ भी कहो तो वे बहाने खोजने को तैयार हैं। इतने बहाने खोजते हैं कि बहुत हैरानी होती है।

यहां पंद्रह सौ संन्यासी आश्रम में काम करते हैं, जिनमें मुश्किल से पचास भारतीय हैं। बाकी साढ़े चौदह सौ कोई बहानेबाजी नहीं करते, लेकिन ये पचास सिवाय बहानेबाजी के कुछ और इनका काम नहीं है। आज इनकी तबीयत ठीक नहीं है, कल कोई मिलनेवाला आ गया, परसों इन्हेंकिसीके दर्शन करने जाना है, फिर इनकी बहन की शादी आ गयी, फिर बहन के लिए वर खोजना है, फिर विवाह में जाना है, फिर बारात में जाना है, फिर कोई मर गया है कहीं, फिर कोई बीमार है उसको देखने जाना है--इनको कोई न कोई बहाना। इसके लिए खर्च भी इनको आश्रम से चाहिए! क्योंकि इनके पास तो कुछ है नहीं।

विदेशी संन्यासी अपना खर्च उठाते हैं, अपने रहने का खर्च उठाते हैं, आश्रम के लिए सब तरह से आधार बने हैं--और फिर भी वे निंदा के पात्र हैं। और कारण? कारण उनका प्रेमपूर्ण जीवन। और इनके भीतर जलन पैदा होती है। क्योंकि इनके भीतर भी प्रेम की आकांक्षा तो दबी पड़ी है। मगर साहस नहीं है, हिम्मत नहीं है।

मैं तो चाहूंगा कि ये मित्र धीरे-धीरे विदा हों यहां से। इनके प्रश्न भी आते हैं मेरे पास तो उत्तर देने योग्य नहीं होते। न-मालूम कहां-कहां के कचरा प्रश्न पूछते हैं, जिनका कोई प्रयोजन नहीं है, जिनका कोई मूल्य नहीं है।

स्त्री और पुरुष के संबंध में भारतीय मन में एक ही धारणा रही है कि एक ही संबंध हो सकता है, वह है कामवासना का। स्त्री और पुरुष के बीच मैत्री भी हो सकती है, मित्रता भी हो सकती है, यह भारतीय परंपरा का अंग नहीं रही। भारतीय परंपरा ने कभी साहस नहीं किया कि स्त्री और पुरुष के बीच मैत्री की धारणा को जन्म दे सके।

यौन तोस्त्री-पुरुष के बीच एक संबंध है। यही सब कुछ नहीं है। मैत्री भी हो सकती है। और मैत्री होनी चाहिए। एक सुंदर, सुसंस्कृत व्यक्तित्व में इतनी क्षमता तो होनी चाहिए कि वह किसी स्त्री के साथ भी मैत्री बना सके, किसी पुरुष के साथ मैत्री बना सके। मैत्री का अर्थ है कि कोई शारीरिक लेन-देन का सवाल नहीं है, एक आत्मिक नाता है।

लेकिन पश्चिम में यह घटना घटती है। एक पुरुष और एक स्त्री के बीच इस तरह की दोस्ती हो सकती है जैसे दो पुरुषों के बीच होती है, या दो स्त्रियों के बीच होती है। मैत्री का आधार बौद्धिक हो सकता है। दोनों के बीच एक बौद्धिक तालमेल हो सकता है। दोनों के बीच रुचियों का एक सम्मिलन हो सकता है। दोनों में संगीत के प्रति लगाव हो सकता है। दोनों में शास्त्रीय संगीत में अभिरुचि हो सकती हैं। यह जरूरी नहीं है कि जिस स्त्री के शरीर से तुम्हारा संबंध है, उससे तुम्हारा बौद्धिक मेल भी खाए। यह जरूरी नहीं है कि जिस स्त्री के शरीर में तुम्हें रुचि है, उसमें और तुम्हारे बीच संगीत के संबंध में भी समानता हो। हो सकता है उसे संगीत में बिल्कुल रस न हो। हो सकता है तुम्हें संगीत में बिल्कुल रस न हो, उसे रस हो। हो सकता है उसे नृत्य में अभिरुचि हो और तुम्हें दर्शनशास्त्र में। तो ठीक है कि वह अपनी मैत्री बनाएगी उन लोगों के साथ जिनको नृत्य में रुचि है, और तुम उनके साथ मैत्री बनाओगे जिन्हें दर्शन में रुचि है।

पश्चिम में शरीर का संबंध ही एकमात्र संबंध नहीं है। यह श्रेष्ठकर बात है, ध्यान रखना। शरीर का संबंध ही एकमात्र संबंध अगर है, तो इसका अर्थ हुआ कि फिर आदमी के भीतर मन नहीं, आत्मा नहीं, परमात्मा नहीं, कुछ भी नहीं सिर्फ शरीर ही शरीर है। अगर आदमी के भीतर शरीर के ऊपर मन है और मन के ऊपर आत्मा है और आत्मा के ऊपर परमात्मा हैं, शरीर के तल पर किसी और से संबंध हो सकते हैं। क्योंकि यह हो सकता है एक स्त्री के चेहरे में तुम्हें रस न हो, उसका चेहरा तुम्हें न भाए, उसकी देह तुम्हें न भाए, लेकिन उसकी मन की गरिमा तुम्हें मोहित करे। और यह भी हो सकता है एक स्त्री की देह तुम्हें आकृष्ट करे, चुंबक की तरह खींचे, मगर उसके मन में तुम्हें कोई रुचि न हो, कोई रस न हो। फिर क्या करोगे? भारत में तो एक ही उपाय है कि एक चीज से राजी हो जाओ, दूसरे की चिंता छोड़ दो। इससे तो नुकसान होनेवाला है। इससे तुम्हारी एक दशा अवरुद्ध रह जाएगी।

अब तुम्हारी पत्नी को अगर नृत्य में रुचि है और तुम्हें रुचि नहीं है, तो तुम्हारी पत्नी क्या करे? किसी नर्तक से दोस्ती बनाए या न बनाए? लेकिन तुम किसी नर्तक से उसकी दोस्ती पसंद न करोगे। क्योंकि ये नाचने-गानेवालों का क्या भरोसा? ये कोई भरोसे के आदमी हैं, कोई ढंग के आदमी हैं! ढंग के आदमी होते तो नाचने-गाने में जिंदगी व्यतीत करते! अरे, कुछ काम की बात करते, कुछ धंधा करते, कोई दुकान करते, कोई व्यवसाय करते, कुछ कमा कर दिखाते! यह क्या पैरों में घुंघरू बांध कर नाच रहे हैं! और इनका क्या भरोसा? ये नाचने-गानेवालों के संबंध में तुम्हारी धारणा यह होती है--ये तो नंगे-लुच्चे-लफंगे हैं, इनका कोई मूल्य थोड़े ही है, इनके साथ कोई दोस्ती थोड़े ही बनानी पड़ती है! अगर तुम्हारी पत्नी को नाच भी सीखना हो तो तुम ढूंढोगे कोई बिल्कुल मुर्दा, मरा हुआ, बूढ़ा, कि जिससे अब कोई खतरा ही न हो। फिर भी तुम अपने बेटे को या बेटी को मौजूद रखोगे कि तू मौजूद रहना, देखते रहना, कि नाचनेवाला ही है, इसका क्या भरोसा? फिर भी नजर रखोगे तुम।

तुम तो चाहोगे कि तुम्हारी पत्नी की सारी अभिरुचि बस तुममें सीमित हो जाए। और फिर तुम्हारी पत्नी भी स्वभावतः यही चाहेगी कि उसकी अभिरुचि भी तुममें सीमित अगर तुम चाहते हो कि हो, तो तुम्हारी अभिरुचि भी बस उसमें ही सीमित हो जाए। तो वह भी नहीं चाहेगी कि तुम मित्रों के पास ज्यादा बैठो, उठो। कोई पत्नियां तुम्हारे मित्रों के पसंद नहीं करती। क्योंकि तुम अपने मित्रों के साथ ऐसे रसलीन होकर बातचीत करते हो कि पत्नियां जल भुन जाती हैं; कि बस मित्र क्या आए कि बहार आ जाती है तुम्हारे जीवन में एकदम! और मित्र क्या गये, मैं बैठी हूं, जैसे हूं ही नहीं। तुम्हें जैसे मतलब ही नहीं है। जमाने हो गये जबसे तुमने चेहरा नहीं देखा मेरा।

और इस बात में सचाई भी हो सकती है। तुमसे अगर कोई एकदम पूछकि आज पत्नी तुम्हारी किस रंग की साड़ी पहने हुए है, तुम शायद ही बता सको। कौन देखता है पत्नी किस रंग की साड़ी पहने हुए है! भाड़ में जाए, जो रंग की साड़ी पहननी हो पहने, सिर भर न खाए! तुमने कितने वर्षों से पत्नी का चेहरा गौर से नहीं देखा!

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी खो गयी। पुलिस में रिपोर्ट करने गया। इंस्पेक्टर ने पूछा, कब खोयी तुम्हारी पत्नी? उसने कहा, सात दिन हो गये। तुम सात दिन क्या करते रहे, बड़े मियां? सात दिन बाद तुम्हें होश आया? शराब ही गये थे? नहीं, नसरुद्दीन ने कहा, मुझे भरोसा ही न आए! यह मेरा सौभाग्य कहां! फिर जब भरोसा आ गया कि नहीं, वह भाग ही गयी है, जब बिल्कुल पक्का हो गया कि भाग ही गयी है, अब बहुत दूर निकल चमकी होगी, अब तुम खोजना भी चाहो तो न सकोगे, सो मैं रिपोर्ट कराने आया हूं।

तो उसने कहा, ठीक है। रिपोर्ट लिखनी शुरू की। उसने कहा कि लंबाई? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अब ऐसे कठिन सवाल न पूछो। अब अपनी पत्नी को क्या कोई नापता है? अब लंबाई? अरे, यही रही होगी मझोल कद की! न बहुत लंबी, न बहुत ठिगनी। कोई खास बात जिससे उसको पहचाना जा सके? नसरुद्दीन सिर खुजलाने लगा, उसने कहा, खास बात? आवाज बुलन्द है। दहाड़ दे, एकदम छाती कंप जाती है। इंस्पेक्टर ने कहा, कुछ और बताओ, आवाज का क्या, बोले न बोले। दहाड़े न दहाड़े! कुछ ऐसा चिह्न बताओ। नसरुद्दीन ने बहुत सोचा, कहा कि नहीं कुछ ख्याल में नहीं आता। मोटी है कि दुबली? उसने कहा, बस यही समझो बीच में। ऐसे टालमटोल करता रहा। और कहा कि और भी एक दुख की बात है कि मेरे कुत्ते को भी साथ ले गयी। तो उसने कहा, ठीक, कुत्ते की रिपोर्ट लिखवा दो। तो वह बस फौरन लिखवाने लगा--अलसेसियन कुत्ता, इतने फीट लंबा, काला रंग, एक कान सफेद, एक-एक ब्यौरा देने लगा। इंस्पेक्टर ने कहा, तुम कुत्ते का ब्यौरा तो यूं दे रहे हो, और पत्नी के संबंध में कहते थे बस समझ लो, मान लो।

कुत्ते में लोगों को ज्यादा उत्सुकता है अपने।

पतिदेव को, पूछो किसी पत्नी से, कब से नहीं देखा? कौन देखता है! फुरसत किसको है! लड़ाई-झगड़े से समय मिले तब!

इस देश में तो बस एक नाता है। और तुम्हारे लुच्चे-लफंगे भी एक ही दृष्टि से स्त्री को देखते हैं और वह है : यौन-साधन। और तुम्हारे ऋषि-मुनि भी एक ही दृष्टि से स्त्री को देखते हैं और वह है : यौन-साधन। दोनों का इस संबंध में जरा भी मतभेद नहीं। मेरे लिए तो दोनों में कुछ भेद नहीं, इसलिए, क्योंकि दोनों की दृष्टि समान है। समदृष्टि हैं इस संबंध में दोनों। लुच्चे-लफंगों की भी दृष्टि यही है कि स्त्री का उपयोग कर लेना है, शोषण कर लेना है, शरीर है और कुछ भी नहीं। और तुम्हारे ऋषि-मुनियों की भी दृष्टि यही है कि भागो, स्त्री से भागो, क्योंकि स्त्री कामवासना है, शरीर है, आकर्षित कर लेगी, तुम कहीं अपना वश न खो बैठो, इसलिए अवसर से दूर रहो, बचे-बचे रहे, बचे-बचे रहो। जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो उस स्थान पर दस मिनिट तक मत बैठना क्यों?

मैं एक ब्रह्मचारी जी के साथ यात्रा कर रहा था। ट्रेन में हम सवार हुए, हम प्रविष्ट हुए, हमसे पहले कुछ यात्री नीचे उतरे, जिस जगह हम बैठे वहां दो महिलाएं बैठी थीं, मैं तो बैठ गया, वह खड़े रहे। मैंने पूछा, आप बैठेंगे नहीं? उन्होंने कहा, दस मिनिट बाद। मैंने कहा, मतलब? उन्होंने कहा, जिस स्थान पर स्त्री बैठी रही हो, दस मिनिट तक नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि उस स्थान पर स्त्री की ऊर्जा के अणु छूट जाते हैं।

इन मूढ़ों ने इस देश की मनोदशा को बनाया है। उस स्थान पर नहीं बैठेंगे जहां स्त्री बैठी रही है।

मगर दोनों की नजर एक कि स्त्री केवल कामवासना का एक साधन है।

इसलिए इस-देश में, स्वभाव, मैत्री तो असंभव है। मैत्री थोड़ी आध्यात्मिक बात है। थोड़े ऊंचे तल की बात है। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते कि एक स्त्री और पुरुष में मैत्री है। कि एक स्त्री और पुरुष घंटों बैठकर दर्शनशास्त्र पर या काव्यशास्त्र पर विचार-विमर्श करते हैं। तुम कहोगे, अरे सब बकवास है, यह दिखावा होगा, दरवाजे बंद करके कुछ और ही लीला चलती होगी! दिखाने के लिए दर्शनशास्त्र काव्य-शास्त्र! यह धोखा किसी और को देना। दरवाजा बंद कि सब काव्यशास्त्र गया एक तरफ, फिर एक शास्त्र बचता है। शरीरशास्त्र। फिर एक-दूसरे के शरीरशास्त्र का अध्ययन करते होंगे।

यहां कोई भरोसा ही नहीं कर सकता कि एक मैत्री हो सकती है जिसका तल शरीर न हो। इस देश की संस्कृति अभी भी बहुत भौतिक है। तुम लाख कहो आध्यात्मिक है, मैं नहीं मानूंगा। मुझे कहीं अध्यात्म दिखायी नहीं पड़ता। बातचीत। अध्यात्म की जरूर है।

अब ये श्री प्रमुखजी स्वामी महराज, इनको तुम आध्यात्मिक कहोगे? एक तरफ तो कहते हैं कि सबके भीतर परमात्मा का वास है, सब में ब्रह्म ही समाया हुआ है--सिर्फ स्त्रियों को छोड़कर। ब्रह्म भी स्त्रियों से डरा हुआ है! हद हो गयी! ब्रह्म की क्या दशा होती होगी जब स्त्रियों का सामना हो जाता होगा? जब कयामत की रात आएगी, और सभी का सामना करना पड़गा ईश्वर के--उसमें स्त्रियां भी होंगी--उस वक्त उसकी क्या हालत होगी? और अगर ब्रह्म सभी में समाया हुआ है, वृक्षों में भी ब्रह्म, पत्थरों में भी ब्रह्म... ।

एक सूफी फकीर मेरे पास लाया गया। उसके शिष्यों ने कहा कि ये बहुत अदभुत सिद्धपुरुष हैं, इनको हर चीज में ब्रह्म दिखायी पड़ता है। उनको वृक्ष के पास ले जाओ, वे वृक्ष के पास खड़े हो जो हैं एकदम हाथ फैलाकर और कहते हैं--अहह! क्या प्यारा परमात्मा है! चांदत्तारे देखकर खड़े हो जाते हैं हाथ फैलाकर। और उनके भक्त तो एकदम गदगद हो जाते हैं। मगर स्त्री से डरते वे। मैंने कहा कि तुम्हें पत्थर में भी दिखायी पड़ जाता है परमात्मा, स्त्री भर में तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता? माजरा क्या है? ऐसा कैसा परमात्मा है। पत्थर में दिख जाता है, तुम्हारी आंख इतनी गहरी, स्त्री में नहीं देख जाते! तुम्हारी ही जैसी हड्डी-मांस-मज्जा है, उसमें नहीं देख पाते? पुरुषों में दिख जाता है, स्त्री में नहीं दिखता? स्त्री से यूं क्यू घबड़ाते हो? इतना क्या भय है?

यह जबर्दस्ती है। यह अपने को सिर्फ छिपा रखना है। यह दमन है।

एक पागल रोगी बार-बार तालियां बजाता रहता था। एक मानसिक चिकित्सक ने उसे इस प्रकार की हरकत करने का कारण पूछा। पागल बोला, तालियां बजाने से शेर पास नहीं आते। इस पर चिकित्सक बोला, लेकिन यहां तो कोई शेर है भी नहीं पागल ने कहा, देख लिया आपने मेरी तालियों का असर! अरे, आ कैसे सकते हैं शेर यहां, जब तक मैं हूं, कभी शेर नहीं आ सकते! तालियों में वह असर है।

ये भगोड़े सोचते हैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गये! ये सोचते हज भगोड़ेपन का असर है! ये सोचते हैं पलायन का असर हैं! स्त्रियों को न देखने से ये ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गये! ये अपने को धोखा दे रहे हैं और दुनिया को धोखा दे रहे हैं। लेकिन इस धोखाधड़ी की बात हमारे खून में समाविष्ट हो गयी है। इस देश को इस भौतिकता से मुक्त करना है; इस पाखंड से मुक्त करना है। और इस पाखंड से मुक्त करने के लिए जरूरी है कि स्त्री-पुरुष के बीच ज्यादा नैसर्गिक संबंध स्थापित हों, ज्यादा प्रीतिकर संबंध स्थापित हों, ज्यादा मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हों। सिर्फ एक ही दिशा न रह जाए संबंधों की, एक ही आयाम न रह जाए संबंधों का। अनेक आयामों में संबंध स्थापित हों।

तुम्हें अपनी पत्नी से इसलिए एतराज नहीं होना चाहिए कि संगीत में किसी और के साथ उसकी मैत्री है। अब तुम कोई संगीतज्ञ नहीं हो। और उसकी संगीत में रुचि है। और तुम संगीत की हत्या करने के हकदार भी नहीं हो। तुम किसी की आत्मा को मारने के हकदार नहीं हो।

पूना में मुझे अति प्रेम करनेवाली एक महिला है। आ नहीं सकती यहां सुनने। क्योंकि पतिदेव का कहना यह है कि जब मैं मौजूद हूं, तू मुझसे पूछ क्या पूछना है। अब उनकी पत्नी मुझे कहती थी कि जब मैं बंबई था तब वह किसी तरह उपाय निकाल लेती, बंबई में उसकी लड़कियां हैं, तो बंबई जाने का बहाना खोज लेती थी। अब यहां जबसे आ गया पूना तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी, क्योंकि यहां आश्रम आने का उपाय निकालना बहुत मुश्किल मामला है। बंबई में तो लड़कियों से मिलने के बहाने जाती और तुझे मिल आती थी। उसने मुझे कहा कि इस भड़भूंजे से और मैं क्या प्रश्न पूछूं! इसको खाक कुछ आता है! मगर यह पतिदेव हैं, कहते हैं, मुझसे पूछो। तुझे ब्रह्मचर्चा करनी है, मैं तो मौजूद हूं। अरे, मैं मर गया क्या! कहीं सत्संग करने कि कोई जरूरत नहीं। जब मैं तुझे जवाब न दे सकूं, तब तू कहीं जाना। तो मैंने कहा कि कुछ सत्संग किया कर। उसने कहा, क्या खाक सत्संग करना उनसे! सत्संग नहीं होता, मारपीट हो जाए। आपकी किताबें उठाकर फेंक देते हैं खिड़की के बाहर। आपकी तसवीर निकाल कर फेंक दिये, कि मेरे रहते इस घर में किसी और की तसवीर नहीं रह सकती। मैं हूं तेरा पति कि वे। अब सवाल यह है कि तसवीर दो कैसे रह सकती एक घर में! पति कौन है तेरा? पति तो आप ही हैं। तो फिर ये तसवीर अलग करो।

मैंने उससे पूछा कि फिर वे किताबें तू उठा लाती है? बोली मुझे लानी नहीं पड़तीं, वे खुद ही डर के मारे उठा लाते हज बाद में। और मैं उनको एकांत में तसवीर से और किताब से क्षमा भी मांगते देखा है, क्योंकि डरते भी वे हैं, कि पता नहीं कोई पाप हो जाए, कोई अपराध हो जाए। तो मेरे सामने तो बड़ी अकड़ बताते हैं। अब इनसे मैं क्या पूछूं, खाक! ये किताब को सिर से लगाते हज, आपकी तसवीर से माफी मांगते हैं, मेरे सामने अकड़ बताते हैं। और इनके सामने सत्संग करने की बात ही उठती है तो आग लग जाती है मुझे कि इनसे क्या सत्संग करना! इन्हें पता क्या है!! मैंने कहा, तू कभी उनसे पूछ तो, आखिर बेचारे कहते हैं, शायद पता हो। तो उसने कहा, कुछ भी पता नहीं है; मैंने कहा, अच्छा ध्यान करना बताओ, तो बस वे आंख बंद कर के बैठ गये, कहा : इस तरह आंख बंद करके बैठ जाओ। मैंने कहा, फिर क्या करना? बोले फिर कुछ करने की जरूरत नहीं है। और ध्यान उन्होंने कभी नहीं किया, इनके बाप-दादों ने नहीं किया ध्यान, इनको मैंने कभी ध्यान करते देखा नहीं, बस रुपये गिनने में इनकी जिंदगी बीतती है, वही इनका ध्यान है। धन इनका ध्यान है। ठेकेदारी का धंधा करते हज। और शराब इनकी प्रार्थना है।

वे देश के बाहर जाते हैं, काम से, तो बेचारों को पत्नी ले जाना पड़ता है, क्योंकि पत्नीकहीं यहां सत्संग करने न चली आए। तो मैंने कहा, चल तुझे यह तो फायदा हुआ। देख सत्संग का कुछ न कुछ फायदा तो हुआ, कि अब तू विदेश-यात्राएं करने लगी। उसने कहा, लेकिन मुझे विदेश-यात्राएं करनी नहीं। इनके साथ जी भर गया है। ये जबर्दस्ती मुझे साथ ले जाते हैं सिर्फ इस डर से कि कहीं मैं यहां सत्संग करने न चली जाऊं। इनको इस बात की एक कठिनाई बनी रहती है कि मेरे से ऊपर किसी व्यक्ति को कभी स्वीकार नहीं करना।

अब यह हमारे जीवन की बड़ी दयनीय अवस्था है। हमें जीवन के सब आयाम स्वीकार करने चाहिए। संगीत सीखने जाना हो तो संगीतज्ञ के पास जाना होगा। सत्संग करना हो तो किसी संत के पास करना होगा। गणित सीखना हो, किसी गणितज्ञ से सीखना होगा। परमात्मा की गंध पानी हो तो उसके पास बैठना होगा जिसे परमात्मा मिला हो। और इसका यह अर्थ नहीं है कि पति का कुछ विरोध है, या पत्नी का कुछ विरोध है।

पति-पत्नी का एक नाता है। वह एक आयाम है। सभी आयाम उसमें तृप्त नहीं हो सकते। यह असंभव है कि तुम एक ही व्यक्ति में सभी कुछ पा लो। शायद कभी मिल जाए किसी को तो सौभाग्य की बात है, नहीं तो यह असंभव है। कैसे यह संभव हो सकता है!

इसलिए मैत्री की जगह तो बनानी ही चाहिए। और हमें मित्रता को स्वीकार करने का साहस जुटाना चाहिए। लेकिन हम भयभीत लोग हैं, डरे हुए लोग हैं, कामी लोग हैं।

स्वभाव! इस तरह के मित्रों के कारण चिंता मत लेना। वे धीरे-धीरे अपने-आप चले जाएंगे। जाना ही पड़ेगा उन्हें। या तो बदलना पड़ेगा या जाना पड़ेगा। मेरे साथ ज्यादा देर कैसे रुक सकते हैं! मैं देखता भी हूं तो हैरान होता हूं कि वे क्यों रुके हैं? कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता उनके रुकने का। वे आनंदित भी नहीं हैं--आनंदित हो नहीं सकते, क्योंकि मुझमें पूरे डूबते नहीं हैं। और जा भी नहीं सकते। बस, कारण मुझे यूं लगता है कि जाएं कहां? और, कहीं भी जाएंगे, तो काम करना पड़ेगा, श्रम करना पड़ेगा, मेहनत करनी पड़ेगी। एक आलस्य है। चलो, अब यहीं टिके रहो! मगर मैं धीरे-धीरे इस तरह के लागों को दूर हटाए जा रहा हूं। मेरे साथ होना है तो मेरे साथ होना ही होगा पेरी तरह। अधूरे-अधूरे मेरे साथ होने का कोई उपाय नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, आजकल देश भर में बलात्कार, हिंसा आदि अपराध घटनाएं बहुत हो रही हैं और विचारशील लोग इन घटनाओं की भर्त्सना कर रहे हैं, रोकथाम के उपाय सुझा रहे हैं और दंड-व्यवस्था को और सुदृढ़ करने के उपाय हो रहे हैं। फिर भी, इस सबके बावजूद बलात्कार और हिंसाएं जोरों पर हैं।

निवेदन है कि इस स्थिति पर आप कुछ कहें।

चैतन्य कीर्ति! यह सदियों से इकट्ठी मवाद निकल रही है। निकलती तो पहले भी थी, तुम्हें पता नहीं चलती थी। क्योंकि पता चलने के माध्यम नहीं थे। अखबार नहीं थे, रेडियो नहीं थे, टेलीविजन नहीं था। ये घटनाएं कुछ नयी नहीं हो रही है। ये घटनाएं अति प्राचीन हैं। ये इस देश में सदा से होती रही हैं। बलात्कार की घटनाओं से तुम्हारे पुराण भरे हुए पड़े हैं। अपने पुराण उठा कर देखो। तो तुम पाओगे कि यह तो अपनी प्राचीन संस्कृति है। यह तो अपनी वसीयत है। यह कोई नयी बात नहीं है। और आदमी ही नहीं बलात्कार करते रहे, तुम्हारे देवता भी बलात्कार करते रहे। औरों की स्त्रियों के साथ करते रहे, तुम्हारे ऋषि-मुनियों की स्त्रियों को भी नहीं छोड़ा। अब इन बातों को कहो तो चोट लगती है, तो जी तिलमिलाता है। सत्य ऐसा लगता है जैसे आंखों में किसी ने मिर्च डाल दी, कि घाव पर किसी ने नमक छिड़क दिया। मगर मजबूरी है, सत्य का हम न समझेंगे तो बदलाहट हो नहीं सकती। अभी यह भ्रांति फैलायी जाती है कि जैसे आज ये घटनाएं घट रही हैं। तो तुम्हारे पुराण कब लिखे गए? और पुराणों में कथाएं क्या हैं? तुम्हारे देवता भी भ्रष्ट और बलात्कारी हैं। सबकी नजर एक-दूसरे की स्त्रियों पर लगी है। तुम्हारे ऋषि-मुनियों की भी गति वही है। उसमें भी कुछ भेद नहीं है।

जिनको तुम धर्मराज कहते हो, युधिष्ठिर, वे अपनी स्त्री को दांव पर लगा सकते हैं जुए में। और क्या अपमान होगा स्त्री का! स्त्री काई संपदा है! कोई वस्तु है! कोई फर्नीचर है, कि तुम उसे जूए में दांव पर लगा दो! और फिर अब दांव लगा दिया और हार गये, तो फिर देखना पड़ा बैठ कर कि दुर्योधन उसे नंगा कर रहा है। जब हार गये तो तुम्हारी तो रही नहीं। अब मालिक वह है। तब एतराज भी क्या करोगे? और महाज्ञानी भीष्म बैठे हुए हैं और कुछ बोलते नहीं और धर्मराज युधिष्ठिर ने दांव पर लगा दिया है और दुर्योधन द्रौपदी को नंगा कर रहा है!

यह कुछ नयी घटना तो नहीं।

रावण को धोखा दिया गया सीता के स्वयंवर के समय। झूठी अफवाह फैलायी गयी कि लंका में आग लग गयी है, ताकि रावण उठकर चला जाए। क्योंकि डर यह था, अगर रावण मौजूद रहा तो इतना बलशाली पुरुष था और शिव का भक्त था कि वह शिव के धनुष को तोड़ देगा और सीता का स्वयंवर करके ले जाएगा। तो यह ऋषि-मुनियों ने साजिश की कि झूठी अफवाह उड़ा दी। रावण चला गया लंका, तब तक यहां धनुष तोड़ दिया गया, सीता का स्वयंवर राम के साथ कर दिया गया। यह जो बेईमानी की गयी, इस बेईमानी का बदला लेने के लिए रावण ने फिर सीता का चुराया। फिर यह सारी उपद्रव की कथा शुरू हुई। लेकिन शुरुआत तुम्हारे भले लोगों ने की, अच्छे लोगों ने की। रावण तो केवल प्रतिकार कर रहा था।

और उस समय यह बिल्कुल स्वाभाविक था और आज भी स्वाभाविक है कि अगर किसी का किसी से प्रेम हो जाए तो वह निवेदन करे। रावण की बहन ने लक्ष्मण से निवेदन किया कि मुझसे विवाह कर लो और लक्ष्मण ने उसकी नाग काट ली। और इन बहादुरों को शर्में भी न आयी एक स्त्री की नाक काटते हुए! इन्होंने अपनी ही नाक काट ली। और राम भी देखते रहे। जैसे उनका आशीर्वाद उपलब्ध था इस बात के लिए। कोई एतराज नहीं है। और रावण की बहन ने कुछ बुरा निवेदन तो किया नहीं था। और अगर नहीं तुम्हें विवाह करना था तो इनकार करने का तुम्हें हक था। लेकिन नाक काटने का क्या सवाल था!

ये चलती रहीं बातें। ये होती रहीं बातें।

द्रौपदी को लेकर अर्जुन जब घर आया, तो कहानी तो यह कहती है कि उसने कहा कि देखो मां, मैं क्या लाया हूं? लेकिन सत्य ऐसे मालूम होता है कि पांचों भाइयों में ईर्ष्या थी, क्योंकि द्रौपदी अति सुंदर थी और पांचों भाइयों में ईर्ष्या थी, अर्जुन के साथ वे बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे इसका होना, इसलिएः पांचों बांट लो। स्त्री भी बांटी जा सकती है!

चलो यही सही कि भूल से कह दिया था कूंती ने, कि अच्छी चीज ले आए हो तो पांचों भाई बांट लो। तो भूल सुधारी जा सकती थी। जब पता चला कि यह स्त्री है, विवाह करके ले आया है यह, तो क्या भूल बदली नहीं जा सकती थी? कि शब्द जो निकल गया उसको सत्य होना ही जरूरी है? फिर यह तो शब्द यूं भीतर से कह दिया था कुंती ने, अनजाने कह दिया था। जरा-सी बात थी, क्षमा मांग लेनी थी कि भूल हो गयी, मुझे क्या पता? तूने कहा क्या चीज लाया हूं देखो तो! तो मैंने समझा कुछ खाने की चीज लाया होगा, कोई खिलौना लाया होगा, तो चलो पांचों बांट लो। मुझे क्या पता?

नहीं लेकिन स्त्री पांचों ने बांट ली। यह बलात्कार नहीं है? स्त्री भी बांटी जा सकती है! उसके पांच पति हो गये!

एक ब्राह्मण ने आकर राम को कहा कि मेरा बेटा मर गया जवान और यह इसलिए हुआ है कि एक शूद्र ने वेद मंत्र सुन लिये हैं। अब शूद्र का वेद मंत्रों का सुनना और किसी ब्राह्मण के बेटे के मर जाने में क्या संबंध हो सकता है! सभी ब्राह्मणों के बेटे मर गये होते तो हम थोड़ा सोचते भी। और शूद्र ने अगर वेद-वचन सुना था तो शूद्रों के बेटे मरने चाहिए थे, ब्राह्मण का तो कोई कसूर न था--कि यह तो बड़ी अजीब बात हुई कि जुर्म कोई और करे, सजा कोई और पाए! इसमें ब्राह्मण का क्या कसूर था? और इस ब्राह्मण का विशेष रूप से क्या कसूर था?

मगर हम मूढ़तापूर्ण बातों को मानने के आदी हैं।

विहार में अकाल पड़ा और महात्मा गांधी ने कहा कि यह शूद्रों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उसका फल है। तो सिर्फ बिहार में ही फल मिला! भारत भर में अत्याचार होता है, और कहीं अकाल न पड़ा, सिर्फ बिहार में अकाल पड़ा! जैसे बिहार में ही अत्याचार हो रहा हो! मगर यह बस पुरानी तर्क-पद्धति... ।

और राम ने भी मान ली यह बात कि यह बात ठीक है। शंबूक नाम के शूद्र को बुला कर उसके कानों में, चूंकि उसने वेद मंत्र सुनने का अपराध किया था--महा अपराध! अब यह भी कोई बात है? वेद मंत्र में तो सभी के लिए संदेश है। शूद्र आदमी नहीं है? सीसा पिघलवा कर उस शूद्र के कानों में भरवा दिया। हो गया होगा बहरा सदा के लिए। और हो सकता है मर भी गया हो। क्योंकि किसी के कान में सीसा पिघलवा कर भरवाओगे, क्या जिंदा रह सकेगा? और जिंदा भी रहा होगा तो बज्र बधिर होकर जिंदा रहा होगा। और इसको तुम अत्याचार नहीं कहते! इसका तुम हिंसा नहीं कहते!

महाभारत में करोड़ों लोग मरे। हिंदुओं के हिसाब से तो एक और कुछ करोड़ लोग महाभारत में मरे। इतने लोग मरे, किस बात के लिए? राज्य के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए।

तो पहली तो बात, तुम यह समझ लो कि यह अत्याचार पुराना है, यह हिंसा पुरानी है, यह बलात्कार पुराना है। कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं। उनमें तो सभी उनकी स्त्रियां नहीं थीं। सभी विवाहित नहीं थी उनसे। दूसरों की विवाहित स्त्रियां थीं बहुत, जिनको वे उड़ा लाए थे। यह बलात्कार नहीं था? यह व्यभिचार नहीं था? स्त्रियां बाजारों में बिकती थीं--राम के समय में बिकती थीं, इसको तुम राम-राज्य कहते हो।

मुझसे लोग पूछते हैं कि रामराज्य कब आएगा? मैं कहता हूं : कभी आना नहीं चाहिए। तुम्हारा दिल नहीं भरा अब तक रामराज्य से? ! राम के समय में आदमी और औरतें बाजारों में बिकते थे जानवरों की तरह। गुलाम बिकते थे, खरीदे-बेचे जाते थे, रुपयों में, और तुम सोचते हो कि यह सब सतयुग था; जो हो रहा था शुभ हो रहा था।

लेकिन सचाई सिर्फ इतनी है कि तुमने शूद्रों के साथ सदा अनाचार किया। लेकिन उसकी बात कभी उठी नहीं, आज पहली दफा उठी है। आज अखबार सारी खबरें फैला देते हैं। रेडिओ से सारी तरफ गूंज जाती है। इसलिए, चैतन्य कीर्ति, तुम्हें लगता है : बलात्कार, हिंसा और अपराध-घटनाएं बहुत हो रही हैं। ये सदा होती रही हैं।

अगर ये रुकी थी कुछ तो सिर्फ अंग्रेजों की सत्ता के समय में रुकी थीं। मुसलमानों के समय में भी डट कर होती रहीं। मुसलमान करने वाले थे तब।

भारत ने अपने पूरे इतिहास में अगर कभी भी कोई थोड़े-से सुंदर क्षण देखे हैं तो वे अंग्रेजों के समय में गुलामी के दिन थे। यह हैरानी की बात है। मैं कोई गुलामी का समर्थन नहीं कर रहा हूं, लेकिन अंग्रेजों के समय ही भारत ने थोड़े-से दिन थोड़ी सभ्यता के देखे हैं। अब फिर तुम आजाद हो गये हो। और आजादी का तुम एक ही मतलब समझते हो कि फिर अपनी पुरानी संस्कृति को वापस लाना है, फिर आर्य संस्कृति का झंडा फहराना है। फिर वही मूर्खताएं, फिर वही जड़ताएं तुमने शुरू कर दी हैं। आखिर स्वतंत्रता का मतलब ही यह होता कि अब तुम स्वच्छंद हो!

ऐसा लगता है कि चर्चिल शायद ठीक ही कहता था कि भारत आजाद होने के योग्य नहीं है। तुम्हारे तौरत्तरीके देख कर यह शक होता है कि चर्चिल की गलत बात ही शायद सही रही होगी। तुम अपने असली रंग-रूप में आने शुरू हो गये।

सतियां फिर होने लगी हैं। अंग्रेजों ने किसी तरह बंद किया था सतियों का होना, अब फिर शुरू हो गयी हैं। अब तुमने फिर "ढांढन सती की झांकी" सजानी शुरू कर दी है। अब जगह-जगह सतियों के चौरे फिर पूजे जाने लगे हैं। अब जगह-जगह सतियां होने की चेष्टाएं शुरू हो गयी हैं। बच्चों की बलि फिर दी जाने लगी है। ये तुम्हारे पुराने ढंग हैं। ये तुम्हारे पुराने तौरत्तरीके हैं। अब तुम फिर से अपना रहे हो। तुम अपनी मरी संस्कृति को फिर से जिंदा कर रहे हो। फिर प्राण फूंक रहे हो। रामराज्य जाने की कोशिश कर रहे हो-- सतयुग फिर से लाने की कोशिश कर रहे हो।

तुम पूछते हो, "आजकल देश भर में बलात्कार, हिंसा आदि अपराध-घटनाएं बहुत हो रही हैं।"क्योंकि तुम स्वतंत्र हो गये हो। और तुम अब वही करना चाहते हो जो तुम्हारे अंतर्तम में पड़ा हुआ है, सदा से पड़ा हुआ है। शूद्र फिर से जलाए जा रहे हैं। जिंदा जलाए जा रहे हैं। तुम बातें अहिंसा की करते हो, मकर तुम्हारे भीतर बड़ी हिंसा भरी हुई है।

अभी खान अब्दुल गफ्फार खां, सरहदी गांधी ने, जो कि गांधी के बाद दूसरे नंबर के गांधी समझे जाते रहे हैं; जो कि अहिंसा के महापुजारी हैं, ... चौरानबे वर्ष की उम्र हो गयी, मगर अक्ल बचकानी मालूम होती है। ... विनोबा के आश्रम पवनार में, विनोबा के समक्ष पत्रकरों की परिषद में यह वक्तव्य दिया... विनोबा ने भी इनकार नहीं किया, विरोध नहीं किया, चुप रहे। और मौन सम्मति का लक्षण है। और तब नहीं कहा तो ठीक था, बाद में कुछ कहते; बाद में भी कुछ नहीं कहा। इतने दिन बीत गये अब तो। कोई सप्ताह से ऊपर हो गया। कुछ नहीं बोले हैं उस संबंध में। चुप्पी दबाए बैठे हैं। साफ है कि राजी हैं; जो कुछ सरहदी गांधी ने कहा है, ठीक ही कहा है, उनकी प्रतीति भी यही मालूम होती है। ... पत्रकारों ने कुछ प्रश्न पूछे।

एक प्रश्न पूछा कि आप सीमांत प्रदेश के नेता हैं, तो नेतृत्व करना चाहिए, पख्तूनों का, ताकि पख्तून स्वतंत्र हो सकें। सरहदी गांधी ने अपनी गांधीवादी विनम्रता के साथ कहा कि मैं नेता, नहीं-नहीं, मैं तो खुदाई खिदमतगार हूं। मैं तो एक जनता को स्वयंसेवक हूं। मैं तो एक बंदा हूं परमात्मा का। मैं कोई नेता नहीं।

और उसी के बाद दूसरा प्रश्न किसी ने पूछा कि जेड़.ए.भुट्टो का फांसी की सजा दी गयी, इस संबंध में आपका क्या कहना है? तो उन्होंने कहा कि महापापी था। उसे फासी की सजा नहीं, उसे तो जिंदा, बीच बाजार में, भीड़ के बीच आग में जलाया जाना चाहिए था।

ये खुदाई खिदमतगार! ये परमात्मा के बंदे! ये अहिंसा के भक्त! ये सरहदी गांधी! भुट्टो को जिंदा जलाया जाना चाहिए था, तब इनके चित्त को तृप्ति मिलती। इनको तृप्ति नहीं मिली, फांसी काफी नहीं। बातें क्षमा की! बातें अहिंसा की! बातें प्रेम की! और भीतर सब जहर भरा हुआ है। और हम इस पाखंड में इतने ज्यादा डूब गये हैं कि हम बातों ही बातों में पड़े रहते हैं और यह भूल ही जाते हैं हमारी असलियत क्या है।

यही हालत महात्मा गांधी की थी, कुछ भेद न था, सारी अहिंसा राजनीति थी। न तुम्हारे राम अहिंसक थे, न तुम्हारे कृष्ण अहिंसक थे, न परशुराम अहिंसक थे। तुम्हारे अवतारों में कौन अहिंसक था? और गांधी तो राम के भक्त थे। और राम की तो प्रतिमा ही अधूरी रहेगी विना धनुष-बाण के। और धनुष-बाण कोई अहिंसा के प्रतीक हैं? मरते वक्त भी गांधी के मुंह से निकला : हे राम!

जब देश आजाद नहीं हुआ था तो किसी ने गांधी से पूछा कि अगर देश आजाद हो जाए तो सेनाओं का क्या करिएगा? तो उन्होंने कहा, सेनाओं को विसर्जित कर देंगे। अहिंसक देश को सेनाओं की क्या जरूरत है? फिर देश आजाद हो गया। फिर किसी ने याद दिलाई कि अब उस वक्तव्य का क्या करना है तब चुप्पी साध गये। अब सेनाएं विसर्जित नहीं करनी हैं? तो कहने लगे, मेरी कौन सुनता है! अरे तो तुम्हारी अंग्रेजों के समय में कौन

सुनता था? जिस तरह शोरगुल मचाते थे, फिर मचाओ शोरगुल। अब तो तुम्हारे ही शागिर्द बैठे हैं वहां, अब तो तुम्हारे ही आदमी सत्ता में बैठे हैं, अगर वे भी नहीं सुनते तो डूब मरो चुल्लू भर जानी में, फिर किस लिए जिंदा हो? फिर यह जिंदगी भर बकवास अहिंसा की क्यों लगा रखी थी?

और जब कश्मीर पर पाकिस्तान का हमला हुआ और हिंदुस्तान और पाकिस्तान का झगड़ा शुरू हुआ और दिल्ली से पहली दफा हवाई जहाज उड़े पाकिस्तान पर हमला करने के लिए, तो गांधी ने आशीर्वाद दिया। भूल गये सब बातें! बातों की ही बातें हैं। ये बम ले जाते हुए हवाई जहाज, इनको महात्मा गांधी आशीर्वाद दे रहे हैं! और अहिंसा के पुजारी! और अगर कहो तो आग लगती है लोगों को। वे कहते हैं कि आप हमारे महात्माओं को नहीं मानते। आप हमारे ऋषि-मुनियों के खिलाफ बोलते हैं। मैं करूं क्या, तुम्हारे त्रषि-मुनि ऐसे हैं! इसमें मेरा कसूर क्या? मैं तो बात को सीधी-सीधी कह देना चाहता हूं, जैसी है वैसी कह देना चाहता हूं, अखरे तो अखरे। लेकिन मैं चाहता हूं कोई तो बात को साफ-साफ कहे। क्योंकि बात हो जाए, निदान हो जाए रोग का तो चिकित्सा भी हो सकती है।

अब तुम कह रहे हो, चैतन्य कीर्ति, कि विचारशील लोग इन घटनाओं की भर्त्सना कर रहे हैं। कौन हैं ये विचारशील लोग? ये ही विचारशील लोग तो कारण हैं इन घटनाओं के। ये ही पंडित, ये ही पुरोहित, ये ही विचारशील लोग, इन्हीं के कारण तो ये उपद्रव सब हो रहे हैं, ये ही इनकी जड़ में हैं और ये ही भर्त्सना करते हैं। ये ही झगड़े करवाते हैं और ये ही भर्त्सना करते हैं। वही मौलवी, वही पंडित लड़वा देते हैं, हत्याएं हो जाती हैं। फिर वही मौलवी और पंडित सर्व-धर्म-समन्वय की प्रार्थनाएं करते हैं।

इस धोखाधड़ी को पहचानो।

और ये विचारशील लोग इस देश में सदा रहे हैं। इन्होंने किया क्या इतने दिन तक? पांच हजार साल पुरानी संस्कृति को इन विचारशील लोगों ने किस भांति का ढांचा दिया है? इतना सड़ा-गला, इतना गंदा, इतना बेहूदा, इतना अमानवीय, इतना कुत्सित कि इनसे अब क्या और आशा करते हो! तुम्हें कुछ सोचने के नये ढंग ईजाद करने होंगे। तुम्हें हवा में कुछ क्रांति लानी होगी। ये विचारशील लोग विचारशील नहीं हैं। ये लकीर के फकीर हैं, वही दोहराए चले जाते हैं।

महात्मा गांधी ने हरिजनों को नया नाम दे दिया : हरिजन। शूद्र न रहे, बस नाम बदल दिया; अछूत न रहे, नाम बदल दिया। बात तो वही की वही रही, नाम बदलने से क्या होगा? अच्छा प्यारा नाम दे दिया, हरिजन, इससे क्या होता है? कितना ही प्यारा नाम दे दो, व्यवहार तो वही का वही रहा। उसमें तो कोई जरा भी फर्क न पड़ा। आजादी न आई थी तब तक वह कहते थे कि भारत का पहला राष्ट्रपति एक हरिजन महिला को बनाऊंगा। फिर आजादी आयी, फिर बात खत्म हो गयी। फिर बात ही नहीं उठी हरिजन महिला की! फिर ब्राह्मणों का अड्डा फिर जम गया। फिर पंडित जवाहरलाल नेहरू। और फिर तरहत्तरह के पंडित सारे देश में मुख्य मंत्री बनकर बैठ गये। फिर वही अड्डा। फिर वही ब्राह्मण। फिर कोई शूद्र अछूत लड़की को राष्ट्रपति बनाने की बात कहां खो गयी, पता नहीं चला।

अब तुम कह रहे हो कि वे भर्त्सना कर रहे हैं। भर्त्सना करने से कुछ भी नहीं होगा। निंदा करने से क्या कुछ होता है! जड़ें काटनी होंगी। नीम में कड़वे फल लगते हैं, तुम भर्त्सना लाख करो, इससे क्या होगा? कड़वे फल लगते रहेंगे। इधर भर्त्सना करना, उधर पानी भी सींचते रहना। पानी भी सींचते हो, भर्त्सना भी करते हो। उन्हीं शास्त्रों की पूजा जारी है जिनमें इस देश की सारी जड़ता छिपी हुई है। उन्हीं पुराणों की कथाएं पढ़ी जा रही हैं, वे ही ब्राह्मण अड्डा जमाए बैठे हुए हैं, वे ही लोग अब भी मालिक बने बैठे हुए हैं; वे पुजारी, वे पंडित,

उनका ही जाल, उनका ही षडयंत्र सबको कसे हुए है। और भर्त्सना भी चल रही है। कुछ भी न होगा इस भर्त्सना से। हमें जड़ें बदलनी होंगी, हमें नीम के पौधे काटने होंगे, हमें आम बोने होंगे। हमें और ढंग से सोचना पड़ेगा।

तुम कहते हो, रोकथाम के उपाय सुझा रहे हैं। रोकथाम के उपाय तो सदियों से तुम कर रहे हो। जड़ क्यों नहीं काटते, रोकथाम क्यों करते हो? आखिर मूल में क्यों नहीं जाते? क्यों इतनी हिंसा है भारत में? आखिर शूद्रों की बस्तियां क्यों जलायी जाती हैं? क्या कारण है? जब तक शूद्र रहेंगे तब तक बस्तियां जलायी जाएंगी।

मनुस्मृति स्पष्ट कहती है कि अगर कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति किसी ब्राह्मण, किसी क्षत्रिय, किसी वैश्य को अगर किसी शूद्र की कन्या जम जाए तो वह विवाह कर सकता है। लेकिन कोई शूद्र किसी का उच्च वर्ण की कन्या से विवाह नहीं कर सकता। अधिकतर झगड़े इसीलिए खड़े होते हैं। जब भी कभी कोई शूद्र का प्रेम किसी उच्चवर्गीय महिला से हो जाता है, बस, दंगा-फसाद होता है।

तुम मनु की स्मृति को जब तक सिर पर रखे हुए हो तब तक ये दंगे-फसाद जारी रहेंगे। मनुस्मृति कहती है कि शूद्र की हत्या करने में कोई पाप नहीं है। अगर पापी है शूद्र तो उसको मारने में पुण्य है। पापी ब्राह्मण को भी मारने में पाप है।

आदमी आदमी में ऐसा भेद करनेवाले शास्त्रों को तुमने अभी इंकार किया? या अभी भी तुम उसे स्वीकार कर रहे हो? उनकी स्वीकृति जब तक जारी रहेगी, जब तक उनकी अपनी समग्रता से अतीत से अपने को विच्छिन्न नहीं करते हो, अपने को तोड़ नहीं लेते हो, एकबारगी अतीत को साफ कह नहीं देते हो कि हम समाप्त हुए तुमसे, कि हमारे संबंध विच्छिन्न हुए, कि जो गया वह गया, अब हमारा उससे कुछ नाता नहीं है, तब तक यह उपद्रव जारी रहेगा। झगड़े क्या होते हैं? छोटे झगड़े हैं, दुनिया हंसती है। कोई शूद्र ने कोई उच्चवर्गीय कुएं से पानी भर लिया, बस, झगड़ा हो गया। कोई शूद्र मंदिर में चला गया झगड़ा हो गया।

रोकथाम के उपाय तुम क्या कर रहे हो? रोकथाम के उपाय ये हैं कि दंड-व्यवस्था में उन्हीं के हाथ मजबूत होते हैं जिनके हाथ में सत्ता है। आखिर पुलिस वाला, इंस्पेक्टर, हवलदार किसका गुलाम है? कोई शूद्र का तो है नहीं? शूद्र का बस क्या, बिसात क्या? है तो वह ब्राह्मण का, वैश्य का, क्षत्रिय का। वह खुद भी इन तीन वर्णों में से किसी में है। और इनके पास धन है। और इनसे उसे रिश्वत मिलती है। उसकी तनख्वाह इतनी नहीं कि वह खुद जिंदा रह सके अपनी तनख्वाह पर। वह रिश्वत पर जिंदा रहता है। रिश्वत के बिना इस देश में कोई जिंदा रह सकता नहीं।

तुम चाहते हो कि व्यवस्था हो जाए, ठीक, दंड की कठोर व्यवस्था हो जाए। कैसे होगी दंड की कठोर व्यवस्था? हो ही नहीं सकती। तुम देख रहे हो, मोरारजी का शासन आया, तो जिन पर सुस्पष्ट मुकदमे थे--जैसे "बड़ौदा डायनामाइट कांड" था, जो कि जाहिर, वस्तुतः घटना घटी थी, जो कि झूठ नहीं था, जो कि जबर्दस्ती आरोपित नहीं किया गया था वे सब बरी हो गये। जिसके हाथ में सत्ता है, ... वे सब बरी हो गये। बरी ही नहीं हो गये, उस अपराध में जकड़े गये लोग जो कि शायद जीवन भर सजा भोगते या काला पानी भोगते, वे मंत्री बन गये, कैबिनेट स्तर के मंत्री बन गये।

और उनको पता नहीं था की यह सत्ता दोत्तीन साल में ही वह जाएगी... हालांकि मैंने कहा था कि दोत्तीन साल के भीतर ये नालियों में बहते दिखायी पड़ेंगे, इससे ज्यादा ये टिक सकते नहीं। वे सब नालियों में बह भी गये। पहली ही बाढ़ उन्हें ले गयी। चूंकि उन्होंने सोचा था कि अब हमें कोई सत्ता से अलग तो कर सकता नहीं, इसलिए "बड़ौदा कांड" के ही अभियुक्तों ने किताबें लिख दीं। जिनमें उन्होंने स्वीकार किया कि यह कांड हो रहा था और हमने ये तैयारियां की थी। तो इंदिरा ने कोई जबर्दस्ती उन पर थोपा नहीं था, उन्होंने अपराध

किया था, करने की पूरी आयोजना थी। ये खुद उन्होंने अपनी किताबों में स्वीकार कर लिया; इस आशा में कि अब हमें कोई सत्ता से तो अलग करने वाला है नहीं, इसलिए डर क्या है, अब तो लिख दो किताबें! शहीद होने का भी मजा ले लो। क्रांतिकारी होने का भी मजा ले लो। सत्ता में होने का भी मजा मिल गया और अपराध से तो मुक्त हो ही गये हैं।

और तीन साल की सत्ता में मोरारजी और चरणसिंह ने किया क्या? झूठे मुकदमे खड़े किये। और सारी कानून की व्यवस्था उनके साथ हो गयी! यह मैं इसलिए कहता हूं कि यह मेरा अपना अनुभव है। मैं अपने काम से से बाहर नहीं निकलता, मुझ पर इतने मुकदमे चलते हैं जिसका हिसाब नहीं! कोई सौ से ऊपर मुकदमे। तुम कल्पना भी नहीं कर सकोगे कि ये अपराध मैं कैसे करता होऊंगा! आए दिन कोई "सम्मन" आ जाता है। मैं तो कभी लेता भी नहीं। मैंने तो दस्तखत ही करना बंद कर दिया है। न करूंगा दस्तखत, न कोई सवाल उठता है। लेकिन आए दिन... ।

अभी परसों बिहार से... छपरा, बिहार! मैं कभी गया नहीं। ... वहां मुकदमा है अदालत में! कि मैंने किसी की हार्दिक भावनाओं को चोट पहुंचा दी। अब इस मुल्क में सत्तर करोड़ लोग हैं, किस-किसका हृदय देखकर बोलते रहो! अब छपरा में ये सज्जन के हृदय को चोट पहुंच जाएगी, यह काश मुझे पता होता! तो तीर बिल्कुल आरपार कर देता। चोट का मौका ही नहीं रहता। यह बिंधा रह गया तीर तो कष्ट दे रहा है, बीच में अटका रह गया। नहीं तो निशाने मैं ऐसे-वैसे नहीं लगाता। मगर उनको चोट पहुंच गयी है; मुकदमा... !

इंदिरा पर, संजय पर कितने मुकदमे खड़े किये! और सारी अदालत साथ। सारा कानून साथ। और सब ऐसा लगे कि जैसे ठीक। और फिर इंदिरा सत्ता में आयी कि फिर वही अदालतें कहने लगीं कि इनमें, मुकदमों में कोई बल नहीं है, इनमें कोई जान नहीं है; वे ही मुकदमे टायं-टायं फिस्स होने लगे।

यह बड़ी हैरानी की बात है, किसकी दंड-व्यवस्था तुम मजबूत करोगे? कैसे करोगे? यहां जिसके हाथ में लाठी है सकी भैंस है। गांव में किसकी ताकत है? जिसके पास धन है, जमीन है, दौलत है। गांव का पटवारी, हवलदार, बिचारा उसकी हैसियत क्या है! वह तो इनकी मानकर चलेगा। वह जो ये कहेंगे वह करेगा। वह जो ये कहेंगे वह करेगा। वह तो इनका सेवक हैं। वह तो जी-हजूरी करता रहा है, अब भी जी-हजूरी करेगा। वह तो उसकी परंपरा हो गयी है, आदत हो गयी है। दंड-व्यवस्था मजबूत करने से कुछ भी न होगा। हां, तुम पुलिसवालों के हाथ में ज्यादा ताकत दे दो तो इतना ही होगा कि जो अत्याचार, जो हिंसा और लोग करते हैं, वह पुलिसवाले करेंगे वह पुलिसवाले कर रहे हैं। उनके हाथ में ताकत मिलती है तो उन्हें मौका मिल जाता है। तो उनकी दबी हुई वासनाएं खुलकर खेलने लगती हैं। किसी भी स्त्री को पकड़ लो, अदालत में उसके साथ व्यभिचार करो। हवालात में ले जाओ, उसके साथ व्यभिचार करो। हवालात में तो कोई कुछ कर सकता कि क्या हुआ।

मगर ये पुलिस के कांस्टेबल और ये हवलदार और ये तहसीलदार, मैं इनको दोषी नहीं ठहराता। मैं तो दोषी ठहराता हूं इस देश की पूरी परंपरा को, जिसने इस देश के भीतर ही आदमी के मन में इतनी दमित वासना भर दी है कि उसे मौका मिल जाए तो वह छोड़ेगा नहीं। महात्मा जिम्मेवार हैं इस सारे बलात्कार के पीछे। तुम्हारे ऋषि-मुनियों से, अपने महात्माओं से मुक्त नहीं होते तब तक कोई आशा नहीं है। न दंड रोक सकेगा, न रोकथाम की कोई और व्यवस्था काम आ सकती है।

चैतन्य कीर्ति, इस देश को जड़-मूल से क्रांति की आवश्यकता है, कुछ ऊपरी लीपापोती से होनेवाली नहीं। मैं उसी कोशिश में लगा हूं। वैसी ही जड़-मूल से तुम्हारी दृष्टि बदलनी चाहिए। इसीलिए तो मैं हजारों की

तादाद में आपने दुश्मन खड़े किये ले रहा हूं। स्वभावतः। क्योंकि उन सब की मान्यताओं पर चोट पहुंचेगी। अन्यथा मुझसे उन्हें क्या भय है? मुझसे उन्हें क्या पीड़ा है? मैं चुपचाप अपना काम यहां करता रहता हूं, न कहीं जाता, न कहीं आता, लेकिन उनको घबड़ाहट हैं। उन्हीं एक बात साफ समझ में आने लगी है कि जो बीज मैं बो रहा हूं, अगर वह फसल आयी, अगर वे फूल खिले, तो इस देश का पूरा वातावरण बदल सकता है। ये फूल लपटें ला सकते हैं, इनसे क्रांति पैदा हो सकती है।

एक महाक्रांति के अतिरिक्त इस देश के सामने अब कोई और उपाय नहीं है।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

प्रेम बड़ा दांव है

१३ जुलाई १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः भगवान, मैं कौन हूं, क्या हूं, कुछ पता नहीं। आपसे अपना पता पूछने आया हूं।

नारायण शंकर! यह पता तुम्हें कोई और नहीं दे सकता। न मैं, न कोई और। यह तो तुम्हें खुद ही अपने भीतर खोदना होगा। बाहर पूछते फिरोगे, भटकाव ही हाथ लगेगा। बहुत मिल जाएंगे पता देनेवाले। जगह-जगह बैठे हैं पता देनेवाले। बिना खोजे मिल जाते हैं। तलाश में ही बैठे हैं कि कोई मिल जाए पूछनेवाला। सलाह देने को लोग इतने उत्सुक हैं, ज्ञान थोपने को एक-दूसरे के ऊपर इतने आतुर हैं कि जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि अहंकार को इससे ज्यादा मजा और किसी बात में नहीं आता।

जब भी तुम दूसरे को ज्ञान की बातें देने लगते हो, तो दो बातें सिद्ध हो जाती हैं--दूसरा अज्ञानी है और तुम ज्ञानी हो; दूसरा नहीं जानता और तुम जानते हो। और यह मजा कौन नहीं लेना चाहता। इसलिए मुश्किल है तुम्हें वह आदमी मिलना जो तुम्हें सलाह न दे, ज्ञान न दे। हालांकि कोई किसी से ज्ञान लेता नहीं। और ज्ञान कुछ ऐसी बात है भी नहीं कि काई और दे दे। अच्छा ही है कि लोग लेते नहीं। जो दूसरे से ले लिया, कचरा है। और जो देने को उत्सुक हैं, आतुर हैं, उनके पास कचरा ही होगा। क्योंकि जिन्होंने जाना है, उन्हें पता चल ही जाएगा कि यह बात जनायी नहीं जा सकती। जानी तो जा सकती है, लेकिन जनायी नहीं जा सकती है।

मैं तुम्हें तुम्हारा पता नहीं दे सकता। मुझे मेरा पता है। और कैसे मुझे मेरा पता लगा, उसकी विधि जरूर तुमसे कह सकता हूं। कैसे मैंने खोदा अपना कुआं, कैसे पाया आना जलस्रोत, उसकी विधि तुमसे कह सकता हूं। उस विधि को भी जड़ता से मत पकड़ लेना नहीं तो चूक होगी। यह मामला नाजुक हैं। नाजुक इसलिए है कि दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते। दो व्यक्तियों के भीतर का नक्शा भी एक जैसा नहीं होता। तो इशारे समझो। लेकिन इशारों को तुम नक्शे मत मान लेना।

इस दुनिया में कोई नक्शा नहीं है आत्मज्ञान का। हां, बहुत लोगों ने--बुद्धों ने--इंगित किये हैं। इंगित का अर्थ ही यह होता है कि समझो, फिर समझपूर्वक अपने अनुकूल ढालो। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म की तलाश करनी होती है। और जो लोग मानकर बैठ जाते हैं--हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई--चूक जाते हैं। वे सोचते हैं कि मिल गयी बाइबिल, मिल गया कुरान, मिल गये वेद, अब और क्या करना है? इनको कंठस्थ करें। ग्रामोफोन रिकार्ड हो जाओगे, खुद का पता न मिलेगा।

खुद का पता पाने की विधि जरूर समझायी जा सकती है मगर वह भी बहुत बोधपूर्वक लेनी होती है। आदमी का मन यह होता है कि हमें पचा-पचाया मिल जाए, कुछ करना न पड़े, हाथ न हिलाना पड़े, हिलना-डुलना न पड़े, श्रम न करना पड़े, उठना-बैठना न पड़े, यूं कोई दे दे, हम जैसे थे वैसे के वैसे रहे आएं और हमें मिल जाए।

तुम कहते हो, मैं कौन हूं, मैं क्या हूं, कुछ पता नहीं। तुम हो, इतना तो पता है न? बस, इतना काफी है। एक किरण को कोई पकड़ ले सूरज की तो सूरज तक पहुंच सकता है। एक धागा पकड़ में आ जाए, काफी है।

उतना-सा सूत्र पहुंचा देगा तुम्हें मूल उदगम तक। पानी की एक बूंद समझ में आ जाए तो सारे सागरों का राज समझ में आ गया।

इतना तुम्हें पता है न कि मैं हूं। बहुत पता है। काफी पता है। इसी आधार पर तो मंदिर बन जाएगा। बस, इसी आधार डुबकी मारो।

मनुष्य के संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है : और सारे पशु पूरे के पूरे पैदा होते हैं, आदमी बीज की भांति पैदा होता है, पूरा का पूरा पैदा नहीं होता। यह आदमी की गरिमा भी है और उसके जीवन की महा चिंता भी। क्योंकि अगर श्रम न किया तो बीज बीज ही रह जाएगा और सड़ जाएगा। जीवन यूं ही हाथ से वह जाएगा।

आदमी को श्रम करना होगा। तो उसका बीज अंकुरित होगा। तो उसका बीज वृक्ष बनेगा। तो वृक्ष में फूल आएंगे, फल लगेंगे। तो जीवन में गंध, सुरभि फैलेगी। तो जीवन में रस होगा; अर्थ होगा, महिमा होगी, परमात्मा होगा; ज्ञान होगा।

कुत्ता कुत्ते की तरह पैदा होता है और कुत्ते की तरह ही मरेगा। ऊंट ऊंट की तरह पैदा होगा, ऊंट की तरह मरेगा। कुत्ता कुत्ता होने से नीचे नहीं गिर सकता। और न कुत्ता कुत्ता होने से ऊपर उठ सकता है। आदमी का खतरा यही--और सौभाग्य भी यही, ध्यान रखना, दोनों बातें साथ-साथ हैं। खतरा यह है कि आदमी आदमी से भी नीचे गिर सकता है। गिरता है। आदमी ऐसे कृत्य कर सकता है कि पशुओं को भी शर्म आ जाए। चंगेजखान, और तैमूरलंग और नादिरशाह और एडोल्फ हिटलर और जोसेफ स्टेलिन, इनकी हत्याओं का, इनकी नृशंस कठोरताओं का, इनकी क्रूरताओं का कौन पशु मुकाबला कर सकेगा? सारे पशु फीके पड़ जाएंगे। इनको पशु कहना ठीक नहीं है, पशुओं का अपमान होता है।

हम इस तरह के लोगों को कहते हैं : पाशविक। उचित नहीं है कहना। अगर पशु से तुम्हारा अर्थ जानवर है तो तुम जानवरों का अपमान कर रहे हो। क्योंकि किसी से तुम्हारा अर्थ जानवर है तो तुम जानवरों का अपमान कर रहे हो। क्योंकि किसी जानवर ने जोसेफ स्टेलिन की तरह लाखों लोगों की हत्या नहीं की। हां, पशु से अगर तुम्हारा आध्यात्मिक अर्थ हो तो ठीक। लेकिन पशु से कितने लोगों को आध्यात्मिक अर्थ होता है? कितने लोगों को पशु का आध्यात्मिक अर्थ पता भी है? शाब्दिक अर्थ पता है। आध्यात्मिक अर्थ तो बहुत बहुमूल्य है। पर उसका कोई संबंध जानवरों से नहीं है।

पशु शब्द बना है पाश से। पाश का अर्थ होता है : बंधन। जो बंधा है, वह पशु है। जो पाश में पड़ा है, वह पशु है। वासनाओं से जो जकड़ा हुआ है, वह पशु है। लेकिन कोई पशु आदमी जैसा वासनाओं में जकड़ा हुआ नहीं है।

तो आदमी तो पशुओं से बहुत नीचे गिर जाता है। पशुओं में तो एक तरह का निर्दोष भाव दिखायी पड़ेगा। उनकी आंखों में झांको तो एक तरह की सात्विकता, एक तरह का संतत्व। माना कि पशु भूखे होंगे हो हत्या करेंगे, लेकिन हत्या के लिए कोई पशु हत्या नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़कर। आदमी आखेट के लिए जाता है, शिकार के लिए जाता है। मारता है खेल में। जैसे किसी का जीवन तुम्हारे लिए खेज है, किसी की हत्या तुम्हारे लिए खेल है। कोई पशु आखेट नहीं करता। कोई पशु युद्ध नहीं करता ऐसे जैसे आदमी करता है, जिसमें करोड़ों लोग मरते हैं। हिरोशिमा और नागासाकी किसी पशु के कृत्य नहीं हैं, आदमी के कृत्य हैं। एक क्षण में लाखों लोग राख हो गये।

आदमी गिरे तो बहुत बुरी तरह गिरता है। गिरे तो नर्क को छू लेता है। मगर उठे तो चांदत्तारों के पार निकल जाता है। उठे तो बुद्ध, उठे तो महावीर, उठे तो कृष्ण, उठे तो क्राइस्ट, उठे जो जरथुस्त्र। उठे तो सारे सूरज फीके हैं। उठे तो सारे फूल बासे। उठे तो उसके सौंदर्य की कोई तुलना नहीं। उसकी गरिमा का कोई मुकाबला नहीं है, अद्वितीय है फिर। उठे तो देवताओं को पीछे छोड़ देता है। इसलिए हमारे पास बड़ी मीठी कथाएं हैं।

जब बुद्ध को परम ज्ञान हुआ तो आकाश से देवता उतरे उनके चरणों में सिर झुकाने। इंद्र ने आकर बुद्ध के चरणों में सिर रखा और कहा कि हमें उपदेश दें, क्योंकि सदियों-सदियों में कभी कोई बुद्ध होता है। हम माना कि देवता हैं मगर हम भी वासनाओं में पड़े हैं। माना कि हम आदमियों से बेहतर दुनिया में हैं, ज्यादा सुखी हैं, ज्यादा संपन्न हैं, मगर चुक जाएगा हमारा पुण्य, जल्दी ही हमारा स्वर्ग समाप्त हो जाएगा, फिर हमें वापिस धरती पर लौट आना होगा। और आपने अब ऐसी संपदा पा ली जो कभी नहीं चुकेगी। तो कुछ दान हमें, कुछ इशारा हमें, कुछ बोध हमें भी, हम भी जागना चाहते हैं। नर्क में भी लोग सोए हैं, स्वर्ग में भी लोग सोए हैं। नर्क में समझो कि कांटों पर सोए हैं, स्वर्ग में समझो कि फूलों पर सोए हैं, मगर सोए दोनों तरफ हैं। जागे कोई भी नहीं हैं।

महावीर को जब ज्ञान हुआ, जब ज्योति जली, तो देवताओं ने फूल बरसाए। ये कथाएं प्यारी हैं। इन कथाओं के इतिहास मत समझना, जैसे ही तुमने इन्हें इतिहास समझा कि चूक हो जाती है, ये कथाएं पुराण हैं। पुराण का अर्थ होता है : इतिहास से बहुत बहुमूल्य है। इतिहास तो साधारण घटनाओं का जोड़ है। पुराण साधारण घटनाओं संबंधित नहीं है। पुराण तो उन अभूतपूर्व अनुभूतियों से संबंधित है जिनका कहने का कोई उपाय नहीं, इसलिए कथाओं के माध्यम से कहना होता है। पुराण में बोध कथाएं हैं, इतिवृत्त नहीं, इतिहास नहीं; शाश्वतता का, परम सत्य का चित्रण है। लेकिन जब हम परम सत्य का चित्र बनाने चलते हैं तो रंग तो हमें पृथ्वी के ही उपयोग में लाने पड़ते हैं, शब्द तो हमें आदमी के ही उपयोग में लाने पड़ते हैं।

तो कथाएं कहती है कि महावीर के भीतर ज्योतिशिखा जली, देवताओं ने फूल बरसाए। झर-झर फूल गिरे। अहोभाग्य अस्तित्व का कि फिर एक व्यक्ति के जीवन में ज्योति जगी।

आदमी उठे तो देवता भी उससे ईष्या खाते हैं। और आदमी गिरे तो पशु भी शर्मिन्दा हो जाएं। आदमी एक सीढ़ी है, एक सोपान है। नीचे उतरो तो भी वही सोपान काम आता है, ऊपर चढ़ो तो भी वही सोपान काम आता है। वही सीढ़ियां दोनों तरफ काम आ जाती हैं। जिन सीढ़ियों से तुम अपने मकान के नीचे उतरते हो, उन्हीं सीढ़ियों से मकान ऊपर चढ़ते हो--सीढ़ियां अलग नहीं होतीं।

तुम पूछते हो, मैं कौन हूं, क्या हूं, कुछ पता नहीं है। कैसे तुमने अपना पता खोया? कैसे तुम नीचे उतर आए अपने मंदिर से? बस उन्हीं सीढ़ियों से ऊपर चढ़ना होगा। विचारों में खोया है आदमी, इसलिए अपना पता नहीं चलता। निर्विचार हो जाए तो पता चल जाए। वासनाओं में खोया है तो अपना पता नहीं चलता। वासनाओं का धुआं घिरा है तो ज्योति दिखायी नहीं पड़ती। वासनाओं का धुआं शांत हो जाए तो ज्योति प्रगट हो जाए। जैसे बादलों में सूरज ढक जाता है, ऐसे ही तुम ढक गये हो अपने ही खड़े किये बादलों में। और तुम उनको रोज खड़ा करते चले जाते हो। तुम्हें उनके निर्माता हो। और फिर पूछते फिरते हो कि मैं कौन हूं!

अब तुम कहते हो, आपसे अपना पता पूछने आया हूं। मैं तुम्हें कुछ भी कह दूं, उससे तुम्हारा पता तुम्हें नहीं मिलेगा। मैं लाख कहूं कि तुम आत्मा हो, कि तुम परमात्मा हो, कि तुम वही हो जिसको उपनिषदों ने घोषणा की है : अहं ब्रह्मास्मि, तुम ब्रह्म स्वरूप हो, तत्वमसि, कि तुम वही हो जो सारे जगत का केंद्र है और

आधार है, कि मंसूर ने जो चिल्ला कर कहा :अनलहक, कि मैं सत्य हूं, तुम भी वही हो। ये तुमने सुनी हैं बातें, जरूर सुनी होंगी, पढ़ी हैं, जरूर पढ़ी होंगी, कुछ एकदम नये-नये, ताजेत्ताजे मेरे पा न आ गये होओगे। सोचा होगा, विचारा होगा, पढ़ा होगा, मनन किया होगा, पूछा होगा न-मालूम कितने लोगों से, न-मालूम कितने द्वारों पर दस्तक दी होगी, तब तुम आए हो। मैं भी तुम्हें कुछ कह दूं, सुंदर से सुंदर वचन कह दूं क्या होगा? वचन किस काम आएगा?

नहीं, तुम्हें अपने भीतर खोदना होगा। तुम्हें अपने भीतर से विचार का धुआं, वासना की भीड़, स्मृतियों का ऊहापोह, कल्पनाओं का जाल काटना होगा। तुम्हें ऐसे क्षण खोजने होंगे अपने भीतर जब मन बिल्कुल ही चुप होता है, जब मन होता ही नहीं, उस अ-मनी दशा में तत्क्षण आत्म-साक्षात्कार हो जाता है।

और व्यर्थ की बातों में मत उलझ जाना। नहीं तो कुछ लोग जिंदगी भर आसन ही लगाते रहते हैं। कोई सिर के बल ही खड़े रहते हैं। सिर के बल भी खड़े हो जाओगे, कि चाहे पैर के बल खड़े रहो, चाहे इस करवट लेटो कि उस करवट लेटो, तुम तुम ही हो, कुछ फर्क न पड़ेगा।

एक कौवा पश्चिम की तरफ उड़ा जा रहा था। एक कोयल ने पूछा, चाचा, बड़ी तेजी में हो, कहां भागे जाते हो? उस कौवे ने कहा कि ये पूरब के लोग कुछ सुरत्ताल जानते नहीं, तो मैं गीत गाता हूं, जहां गाता हूं वही से भगाया जाता हूं, इन्हें शास्त्रीय संगीत का बोध नहीं है, चाचा, तुम कहीं भी जाओ, तुम जहां भी कांव-कांव करोगे वहां से भगाए जाओगे, वही अड़चन खड़ी होगी। अपना कंठ बदलो, पूरब से पश्चिम जाने से क्या होगा? अपना कंठ बदलो। अपने को बदलो! बदलाहट भीतर होनी चाहिए।

लेकिन लोग बाहर बदलाहटें करने में लगे रहते हज। हिंदू मुसलमान हो जाता है, मुसलमान ईसाई हो जाता है। सोचते हैं कि बस, ऐसा तिलक न लगाया, वैसा तिलक लगाया, चोटी धारण कर ली... क्या-क्या खेल लोग नहीं कर लेते हैं! पांच ककार पूरे कर दिये हैं, तो सिक्ख हो गये। इतनी सरल होती अगर बात कि केश बढ़ा लिए, एक क; कि कड़ा पहन लिया, दूसरा क; कि केश में कंघी लगा ली, तीसरा क; कृपाण धारण कर ली, चौथा क; कच्छा पहन लिया, पांचवां क; पांच क हो गये, बस सिक्ख हो गये।

सिक्ख शब्द बना है शिष्य से। शिष्य का पंजाबी रूपांतरण है। इतना आसान है शिष्य होना! शिष्य होने कि लिए समर्पण चाहिए, अहंकार का विसर्जन चाहिए। लेकिन लो सस्ती तरकीबें निकाल लेते हैं।

मैंने सुना है कि सरदार बलदेव सिंह जब पंडित जवाहरलाल नेहरू के कैबिनेट में मंत्री थे, तो बड़ी बास आती थी। तो जवाहरलाल ने उनसे कहा कि बलदेव सिंह, इतनी बास किस बात की आती है? उन्होंने कहा कि पता नहीं किस बात की आती है। शायद कच्छे से आती होगी, क्योंकि यह कच्छा मैं साल-दो साल में एकाध दफे बदलता हूं। तो उन्होंने कहा कि साल-दो साल में एकाध दफा बदलते हो! तो बास तो आएगी ही। तो आज शाम को किसी समारोह में जाना है, वहां बड़े अतिथि, राजदूत और विदेशी मेहमान आनेवाले हैं, कृपा करके कच्छा बदलकर आना! नहीं तो यह बास आएगी, क्या लोग सोचेंगे! कहा, अब आप कहते हैं, जरूर बदल कर आ जाऊंगा।

आए तो बास दुगुनी थी। तो जवाहरलाल भी बहुत घबड़ाए, उन्होंने कहा कि तुम पहले ही भले थे; यह मामला क्या है? कैसा तुमने कच्छा बदला? कच्छा यानी जांघिया। यह बास दुगुनी है, बदला कि नहीं बदला? अरे, उन्होंने कहा कि बदला। आप भरोसा न करेंगे, इसीलिए मैं पहला कच्छा भी खीसे में रखकर लाया हूं। निकालकर वह कच्छा बता दिया, कि यह देखो! फिर भी जवाहरलाल ने कहा, कि यह बास बहुत भयंकर है। इससे तो आ ही रही है तुम्हारे खीसे से, मगर दुगुनी मालूम हो रही है हमेशा से। तो उन्होंने कहा कि दुगुनी तो

होगी ही। क्योंकि दो कच्छे! और मेरा जो ड्राइवर है, विचित्तर सिंह, उससे कच्छा ले लिया-- अब दोत्तीन साल से उसने भी नहीं बदला होगा--अब दो-दो कच्छे हैं तो बास तो दुगुनी हो ही जाएगी। आपने ही कहा था बदल लेना, तो बदल लिया, विचित्तर सिंह का ले लिया।

सारे धर्म क्षुद्रताओं में उलझ जाते हैं। एक धर्म नहीं, सारे धर्म क्षुद्रताओं में उलझ जाते हैं। जो बातें कभी सहज जीवन के लिए उपयोगी रही होंगी, वे इतनी जड़ता से पकड़ ली जाती हैं कि फिर उनको पूरा कर लिया तो सब पूरा हो गया।

अभी कुछ दिन पहले एक निहंग सिख यहां अंदर सभी में आना चाहते थे। अब निहंग तो अपनी कृपाण छोड़ता ही नहीं। तो वे कृपाण छोड़कर नहीं आना चाहते थे। उनको कहा कि आपको कृपाण बाहर छोड़नी पड़े, संत ने उसको कहा कि नहीं तो फिर आप भी बाहर। उन्होंने कहा कि यह हो कैसे सकता है कि निहंग सिख और कृपाण छोड़ दे! तो फिर पांच ककार कैसे रहे, चार ही रह गये। वह कृपाण तो साथ होनी ही चाहिए।

अब यहां सभा में सुनना है कि कोई कृपाण चलानी है!

मगर इस तरह पकड़ लेते हैं लोग--व्यर्थ की चीजों को, औपचारिक चीजों को। और फिर इन औपचारिक चीजों का जाल बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है... । बौद्ध ग्रंथों में बौद्ध भिक्षु के लिए तैंतीस हजार नियमों का उल्लेख है। उनको याद रखना भी मुश्किल है, पूरा करना तो दूर। ... और कोई होगा पागल जो उन्हें पूरा करे। तैंतीस हजार नियम पूरे करोगे, कर ही जाओगे पूरे करते-करते। और असली बात कब होगी? ध्यान कब होगा? अंतर्प्रवेश कब होगा?

तो मैं तुमसे एक ही बात कहूंगा, नारायण शंकर, एक ही सूत्र को स्मरण रखो : ध्यान। ध्यान विधि है स्वयं के आविष्कार की, स्वयं के अनावरण की। बहुत। सी धूलधवांस में दब गये हो, ध्यान उस धूल-धवांस को पोंछ देता है। जैसे दर्पण पर धूल जम जाए और दर्पण धूल में ही खो जाए। लेकिन लोगों की मूढ़ताएं अदभुत हैं।

एक नयी-नयी महिला ने एक नौकरानी को घर में रखा सफाई के लिए। तीन दिन बाद उसने नौकरानी को कहा कि देख, पियानो पर इतनी धूल जमी हुई है कि मैंने तेरा नाम लिखा है पियानो पर धूल में तो नाम लिख गया। आज तीन दिन से नाम लिखा हुआ पड़ा है, फिर भी तूने ध्यान नहीं दिया। उसने कहा, ध्यान दिया, बाईजी, नहीं दिया ध्यान ऐसा नहीं है, ध्यान दिया, आपने नाम गलत लिखा है। ये मेरे नाम के हिज्जे ठीक नहीं हैं।

धूल को तो देखना ही नहीं है। मालकिन तो और हैरान हुई, उसने कहा कि तू ध्यान किस बात पर लगा रही है? हिज्जे पर? अरे, मैं तुझसे कह रही हूं की धूल इतनी जमी है कि इस पर नाम लिखा जा सकता है। तू सफाई के लिए है यहां। उसने कहा, यह धूल इतनी है कि यह मुझ से पहले की जमी होगी। तीन दिन में इतनी नहीं जम सकती। और तीन दिन से आपने लिखा हुआ है, अभी भी नाम मिटा नहीं है, जाहिर है कि तीन दिन में ज्यादा धूल नहीं जमी हैं। धूल पुरानी है, अब किसी और नौकरानी ने जो आपके यहां काम करती थी उसने जमाई होगी, इसमें मेरा क्या कसूर है?

आदमी अपनी भूल देखना ही नहीं चाहता। और बिना भूल देखे न-मालूम क्या-क्या उपाय करने लगता है। कोई शीर्षासन करेगा, कोई उपवास करेगा, कोई व्रत करेगा, कोई तीर्थयात्रा करेगा, कोई गंगास्नान करेगा, कोई काबा जाएगा, कोई कुरान पढ़ेगा, कोई गीता कंठस्थ करेगा। और इस सबसे कुछ भी होनेवाला नहीं है।

पर्वत न हुआ, निर्झर न हुआ,
सरिता न हुआ, सागर न हुआ;

किस्मत कैसी लेकर आया,
जंगल न हुआ पांतर न हुआ,
जब-जब नीले नभ के नीचे
उजले ये सारस के जोड़े,
जल बीच खड़े खुजलाते हैं
पांखें अपनी गर्दन मोड़े,
तबत्तब आकुल हो उठता मन,
किस अर्थ मिला ऐसा जीवन
जलचर न हुआ, जलखर न हुआ
पुरइन न हुआ, पोखर न हुआ
जबत्तब साखू-वन में उठते
करमा की धुन के हिलकोरे,
मादल की थापों के सम पर
भांवर देते आंचल कोरे,
तबत्तब रो उठता है यह मन
कितना अभिशप्त मिला जीवन।
पायल न हुआ, झांझर न हुआ,
गुदना न हुआ, काजर न हुआ
जब-जब झोंपड़ियों की बस्ती
बनती है सावन की रानी,
गदराये तन नर्तन करते
बादल होता पानी-पानी,
तबत्तब पागल हो उठता मन,
क्या होगा जीकर यह जीवन।
झूला न हुआ, झूमर न हुआ,
कजरी न हुआ, चांचर न हुआ
जब-जब आ कर दस्तक देता
अनपहचाना मादक गुंजन,
प्राणों की बंद किवाड़ों की
बजने लगती सांकल झनझन,
तबत्तब पूछा करता है मन,
क्यों है इतना अनमिल जीवन
बाहर जो था, भीतर न हुआ
भीतर जा था बाहर न हुआ

आदमी यूं ही जीवन गंवाता है और सोचता यह है कि कैसा दुर्भाग्य है, कैसा अभागा हूं, किन अभिशप्त घड़ियों में पैदा हुआ; कैसे थे ग्रह-नक्षत्र मेरे खराब? न ग्रह-नक्षत्र खराब थे, न घडियां बुरी थीं, तुम उतनी ही क्षमता लेकर पैदा होते हो जिता कोई भी बुद्ध कभी पैदा हुआ है, लेकिन क्षमता की तलाश नहीं करते और दौड़त फिरते हो बाहर, पूछते हो औरों से अपना पता। अपना पता पूछना हो तो आंख बंद करो। अपना पता पूछना हो तो विचार बंद करो। अपना पता पूछना हो तो मारो गहरे से गहरे डुबकी अपने में। उतरो भीतर! वहीं से रसधार मिलेगी

ध्यान का इतना ही अर्थ है। निर्विचार हो जाने की कला। और जिसके हाथ में निर्विचार होने की कला गयी, सोने की कुंजी आ गयी, जो सब ताले खोल दे।

मैं तुम्हें ध्यान दे सकता हूं, ज्ञान नहीं दे सकता। इस भेद को ठीक से समझ लो। पंडित-पुरोहित तुम्हें ज्ञान देते हैं, ध्यान नहीं। और ज्ञान बासा है, उधार है, तुम्हारा नहीं, किसी काम का नहीं। मैं तुम्हें ध्यान देता हूं--सिर्फ खोदने की विधि, एक कुदाली, कि ये रही कुदाली, इससे खोदो, अपना कुंआ बनाओ। यह बात कुछ ऐसी है कि आने कुएं से ही पानी पी सकोगे। किसी और के कुएं से कोई पानी नहीं पी सकता। यह कुआं भीतर है। और यह प्यासा भी भीतर है। दूसरे का कुआं बाहर होगा; और बाहर का कुआं और भीतर की प्यास भी भीतर है। दूसरे का कुआं बाहर होगा; और बाहर का कुआं और भीतर की प्यास को कोई मिलन नहीं होता।

शास्त्रों में तो सब सत्य पड़े हैं, सदगुरुओं ने तो सारी बातें कह दी हैं, कहने को कुछ बचा नहीं है; कुछ जोड़ा जा सके, ऐसा कुछ शेष नहीं रहा है, लेकिन फिर भी क्या सार मिलता है? गीता कंठस्थ हो जाती है, तुम कृष्ण तो नहीं होते! अगर गीता ही कंठस्थ होने से कोई कृष्ण होता होता, तो कितने लोग कृष्ण न हो गये होते। धम्मपद तो कंठस्थ हो जाता है लेकिन बुद्ध नहीं होते तुम। नहीं हो सकते हो। हालांकि तुम भी वही बोलने लगते हो जो बुद्ध बोलते थे। ठीक वैसा ही। वही शब्द, वही भावभंगिमा।

वैसे ही उठ सकते हो, वैसे ही बैठ सकते हो, वैसे ही कपड़े पहन सकते हो, वैसा ही भोजन कर सकते हो, सब चर्या वैसी ही बना सकते हो, मगर फिर भी सब ऊपर-ऊपर रहेगा, नाटक रहेगा और तुम भीतर जैसे कोरे थे, कोरे के कोरे रहोगे। तुम्हारी गागर में परमात्मा का सागर नहीं भरेगा।

विज्ञान दूसरों से मिल सकता है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा होती है। स्कूल में, कालेज में, विश्वविद्यालय में। केमिस्ट्री पढ़ो, फिजिक्स पढ़ो, बायोलाजी पढ़ो, पढ़ायी जा सकती है। न्यूटन ने खोज लिया एक सत्य, गुरुत्वाकर्षण का, अब हर एक को खोजने की जरूरत नहीं है। किसी बगीचे में और किसी सेव के वृक्ष के नीचे बैठने की जरूरत नहीं है। कि बैठे हैं, अब सेव गिरेगा और फिर हम सोचेंगे कि अच्छा, सेव नीचे ही गिरा; नीचे ही क्यों गिरा, ऊपर की तरफ क्यों न गया? जरूर जमीन में कोई कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है, गुरुत्वाकर्षण है, ग्रेविटेशन है। एक दफा खोज ली बात खोज ली।

बाहर के सत्य ऐसे हैं कि बाहर से मिल जाते हैं। मगर भीतर का सत्य तो बार-बार खोजना पड़ता है, प्रत्येक को अपना खोजना होता है। यही इसका सौंदर्य भी है। क्योंकि यह सदा नितनूतन होता है, यह भी पुराना नहीं पड़ता। जब भी तुम चखोगे तब यह किसी और का चखा हुआ नहीं होगा। यह बासा नहीं होगा, जूठा नहीं होगा। यह सत्य बिल्कुल ही नया होगा। एकदम ताजा होगा। तुम्हारा होगा।

मैं तुम्हें ज्ञान नहीं दे सकता। ज्ञान चाहिए, पंडित-पुरोहितों से पूछो। वे तुम्हें ज्ञान देंगे। यहां आए हो, ध्यान पूछो। रास्ता बता सकता हूं; कैसे चलो, यह बता सकता हूं; लेकिन पहुंच कर क्या मिलेगा, वह

अनिर्वचनीय है। शब्दों में समाता नहीं। भाषा एकदम नपुंसक है। उसे तो केवल मौन में ही समझा जा सकता है। मौन हो जाओ और समझो।

दूसरा प्रश्नः भगवान, ठीक एक महीने के बाद मेरी शादी होनेवाली है। मैं क्या करूं और क्या न करूं, कुछ समझ में नहीं आता। मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करने का व्रत लिया है। आपके संन्यास में भी उत्सुकता है।

चंद्रशेखर दुबे! तुम गलत जगह आ गये। तुम जाओ विनोबा भावे के पास पवनार आश्रम में, वहां तुम्हें सम्यक मार्गदर्शन मिलेगा। यहां तो मैं तुम्हें भटका दूंगा। पहले ही से चेता देता हूं। फिर पीछे मुझसे मत कहना।

यूं हुआ कि विनोबा का एक आश्रम है बिहार में, समन्वय आश्रम, बोधिगया में। उस आश्रम के संयोजक मेरे प्रेम में पड़ गये। उन्होंने मेरा एक शिविर आश्रम में रख लिया। विनोबा को जब पता चला तब तो वे बहुत नाराज हुए, क्योंकि विनोबा तो मेरी किताबों को भी पवनहार आश्रम में, जहां वे रहते हैं, प्रवेश नहीं करने देते। आश्रमवासी मेरी किताबें चोरी से पढ़ते हैं। और मेरा शिविर उनके आश्रम में हो, यह उनको बाद में पता चला। हो गया तब पता चला। नहीं तो हो नहीं पाता।

शिविर में ऐसी घटना घटी, तुम जैसा ही कोई व्यक्ति, चंद्रशेखर दुबे, रहा। विनोबा तो हर किसी को व्रत दिला देते हैं, आजन्म ब्रह्मचर्य का। जिसने अभी वासना नहीं जानी, उसे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलाओगे, इससे ज्यादा और मूढ़ता की बात कुछ भी नहीं हो सकती। जिसने अभी स्वाद ही नहीं लिया वासना का कि कड़वी है कि मीठी, उसको तुमने व्रत दिलवा दिया--और आजन्म! आजन्म से कम तो वे बात ही नहीं करते। हर चीज आजन्म। भूमिदान होता, जीवनदान होता, ... जीवनदान! कल का पता नहीं आदमी को, घड़ी भर बाद का पता नहीं, वह जीवनदान करता है! और सब जीवनदानी धोखा खा गये। और सब जीवनदानी धोखा दे गये। खुद जयप्रकाश नारायण जैसे जीवनदानी, जोकि सबसे पहले जीवनदानी थे, वे भी विनोबा को धोखा दे गये। क्योंकि जीवनदान में एक शर्त थी कि राजनीति में भाग नहीं लेना। उसी बात पर कलह हो गयी। वह राजनीति में भाग लिये ही नहीं, इस देश की पूरी राजनीति को गड़बड़ कर गये, इस देश की पूरी राजनीति को अस्त-व्यस्त कर गये। और खुद ही नहीं गये और न-मालूम कितने जीवनदानियों को साथ ले गये।

तो एक युवक को और एक युवती को, दोनों को आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा दिया। अब इन्हें कुछ पता नहीं कि क्या ब्रह्मचर्‍य है और क्या अब्रह्मचर्य। विनोबा ने कहा तो ठीक ही कहते होंगे विनोबा। प्रभावित थे, व्रत ले लिया। और व्रत लेने का एक मजा होता है। भीड़ में अहंकार की तृप्ति होती है, लोग तालियां पीटते हैं, फूलमालाएं लोगों ने पहनाईं, मैं आ गया! फिर दोनों को आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत दिला कर भूदान के काम से गांव-गांव यात्रा पर भेज दिया। दोनों साथ रहे, प्रेम में पड़ गये--जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है। साथ उठे, साथ बैठे, साथ चले, साथ सफर किया--अब एक झंझट हुई दोनों को, क्योंकि दोनों आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ले चुके हैं। अब दोनों की इच्छा विवाह करने की! तो अब क्या करना?

तो जाकर विनोबा को ही उन्होंने प्रार्थना की कि आपने हमें व्रत दिलवा दिया और हमें विवाह की इच्छा होती है दोनों की; हम दोनों प्रेम में पड़ गये हैं। पहले तो विनोबा ने बहुत समझाया-बुझाया कि इस तरह व्रत नहीं तोड़ते; यह महा पाप है; यह संकल्पहीनता है, इससे आत्मा का पतन होगा। मगर वे तो सब राजी थे, आत्मा का पतन हो तो हो जाए। महापाप हो तो हो जाए। ... और मैं नहीं मानता कि कुछ गलती की उन्होंने, कुछ भूल की। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। एक उम्र है, जबकि प्रेम होगा--होना चाहिए, न हो तो ही कुछ गड़बड़ है। न हो तो कुछ विकृति है। न हो तो कुछ बात रुग्ण है। यह तो स्वस्थ लक्षण था।

मगर विनोबा ने बहुत अपराधभाव पैदा करवा दिया। फिर भी नहीं माने वे दोनों तो उनका विवाह भी करवा दिया। आनी ही उपस्थिति में भूदान सम्मेलन में उनका विवाह भी करवा दिया। अपनी ही उपस्थिति में भूदान सम्मेलन में उनका विवाह करवा दिया। और जब दोनों का विवाह हो गया और दोनों आशीर्वाद लेने आए तो आशीर्वाद देते समय कहा कि अब तुम दोनों अपना आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत छोड़ना मत। अब भीड़ के सामने विनोबा ने फिर कहा, सो उन्होंने फिर हां भर दिया, सिर हिला दिया कि ठीक। फिर ताली पिटी। फिर फूलमालाएं पहनाई गयी कि यह और भी ऊंची बात हुई कि अब विवाह भी हो गया और आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत, सो दोनों दुनिया सधी। यह दुनिया भी और वह दुनिया भी। इस पार भी रहे और उस पार भी पहुंच गये।

अब इनकी मुसीबत तुम समझ सकते हो। और सीधे-सादे युवक थे। ग्रामीण युवक और ग्रामीण युवती थी। चालबाज होते, बेईमान होते होशियार होते, विश्वविद्यालय में पढ़े-लिखे होते, तो साध लेते दोनों भी--पाखंडी हो जाते। ऊपर-ऊपर दिखाते कि ब्रह्मचर्य चल रहा है और भीतर-भीतर जो चलना था चलता। मगर सीधे-साधे ग्रामीण थे तो दिक्कत में पड़ गये। अब विवाह के बाद यह ब्रह्मचर्य कैसे सधे? और अगर ब्रह्मचर्य ही साधना था तो इस विवाह की जरूरत क्या थी? यह तो विना ही विवाह के सध सकता था। कोई ब्रह्मचर्य साधने के लिए विवाह आवश्यक नहीं था। न इससे कुछ सहयोग मिलने वाला था।

तो इतना कष्ट उनको हो गया कि जब मैं आश्रम गया तो उन दोनों ने मुझसे निवेदन किया कि हम बिल्कुल पागल हुए जा रहे हैं। हालत हमारी इतनी बुरी हो गयी कि हमने निवेदन किया तो विनोबा ने कहा, तुम एक काम करो, कि अगर तुमसे नहीं संभलता है तो दोनों अलग-अलग कमरों में रहो। और लड़की को कहा कि तू आनी तरफ से ताला लगाकर चाबी उस तरफ फेंक दिया कर खिड़की में से; सो चाबी उस तरफ रहेगी, ताला तेरी तरफ रहेगा, तो न यह खोल सकता है न तू खोल सकती है। सो वे यही काम कर रहे थे बिचारे, वालो लगाकर चाबी उधर फेंक दें। एक के पास चाबी, एक के पास ताला, ब्रह्मचर्य सधेगा ही! मगर ऐसे कहीं ब्रह्मचर्य साधने का कोई अर्थ हो सकता है! अब अगर वे दोनों पगला रहे थे तो कुछ आश्चर्य नहीं था। न रात नींद आए, न दिन चैन। एक अपना ताला जकड़े बैठा है, एक अपना चाबी पकड़े बैठा है। और ताले में चाबी लगनी नहीं है क्योंकि वह ब्रह्मचर्य, आजन्म ब्रह्मचर्य! ताला-चाबी दूर-दूर!

उन दोनों ने मुझसे कहा कि हम क्या करें? ! मैंने कहा, तुम बिल्कुल बेवकूफ हो? मैं तुम्हें मुक्ति दिलवा देता हूं। ताली ही बजवानी है न! तो मेरे शिविर में आए लोग ताली बजाएंगे। फूलमाला पहननी है, फूलमाला पहना देंगे। उन्होंने तुम्हें व्रत दिलवाया, यह बंधन हो गया, मैं तुम्हें मुक्ति दिलवाता हूं व्रत से। सो मैंने उनकी मुक्ति करवा दी। और मैंने कहा, ताला-चाबी मुझको दे दो, झंझट खतम करो। ताली पिटीं खूब, उनको फूलमाला पहनाईं, उनको आशीर्वाद मैंने दे दिया।

फिर विनोबा बहुत नाराज हुए, जब उनको पता चला। उन्होंने कहा कि उनका शिविर ही यहां नहीं रखना थी। अब इन दोनों को भ्रष्ट कर दिया।

चंद्रशेखर दुबे! तुम एक तरफ तो कहते हो कि मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत ले लिया है। और ठीक एक महीने बाद मेरी शादी होनेवाली है। अब तुम खुद भी झंझट में पड़ोगे और किसी गरीब लड़की को भी झंझट में डालोगे। उस लड़की ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुमने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है, तो कृपा करो, अपना ब्रह्मचर्य व्रत संभालो, अब विवाह करने की क्या जरूरत है? और अगर विवाह ही करना है तो यह आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत किसलिए लिया है? और लेने वाले तुम हो तो मालिक तुम हो; तो लिया तो तोड़ दिया।

अरे, जब ले सकते हो तो तोड़ भी सकते हो! अपने दिल की बात है। टोपी पहन ली तो उतारें कैसे! व्रत लिया है, किसी भूलचूक में ले बैठे, छोड़ो! और मैं नहीं मानता कि यह व्रत कुछ टिकानेवाला है, या किसी अर्थ का है।

और तुम्हें मेरे संन्यास में भी उत्सुकता है। तुम्हें बिल्कुल ही होना है--क्या है? मतलब दो ही टांगें हैं तुम्हारे पास या तीन टांगें हैं? तीन तरफ कैसे जाओगे ऐसे तो दो टांगों से भी दो तरफ जाना मुश्किल है। एक तो विवाह, फिर ब्रह्मचर्य, फिर मेरा संन्यास! तुम बिल्कुल विक्षिप्त हो जाओगे। तुम्हें संन्यास ही लेना हो तो पुरी के शंकराचार्य के पास जकर ले लो। उनका संन्यास तुम्हारे काम पड़ेगा--कम-से-कम तुम्हारे ब्रह्मचर्य के पक्ष में तो रहेगा। और वे तुम्हें समझा देंगे कि पत्नी नरक है, और पत्नी तो पाप की गठरी है, और पत्नी में रखा ही क्या है--हड्डी-मांस-मज्जा, मवाद, पीप इत्यादि भरी है--वे तुम्हें ऊंची-ऊंची बातें समझा देंगे।

तुम मेरे संन्यास में भी तुम्हारी उत्सुकता है। अगर मेरे संन्यास में उत्सुकता है, तो फिर तुम्हें थोड़ा समझना पड़ेगा। फिर मूढ़ताओं में पड़ने की मैं सलाह नहीं दूंगा। पहली तो बात, यह आजन्म ब्रह्मचर्य की बकवास बंद करो! ब्रह्मचर्य आता है, थोपा नहीं जाता। ब्रह्मचर्य कोई व्रत नहीं है, जीवन के अनुभव का निचोड़ है। पहले जीवन को जीओ तो। आ जाएगा ब्रह्मचर्य, लेकिन पहले जीवन को जीओ तो। जीवन के कड़वे-मीठे घूंट तो पीओ। अभी कोई दूसरा तुमसे कहेगा, उसका क्या मूल्य? तुम्हारे अपने अनुभव में तो अभी वासना भरी होगी, अभी वासना तरंगें लेगी, उठान मारेगी, उफान आएगा, और तुम उसे दबा-दबा कर थक मारोगे। तुम्हारा राम-राम जपना और माला फेरना, सब उसीको दबाने के लिए होगा। तुम दमित हो जाओगे, कुंठित हो जाओगे; तुम रुग्ण हो जाओगे और विक्षिप्त हो जाओगे।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में निन्यानबे प्रतिशत मानसिक बीमारियां दमित वासना के कारण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि निन्यानबे प्रतिशत मानसिक बीमारियों के कारण तथाकथित धार्मिक गुरु, पंडित-पुरोहित हैं और जब तक ये पंडित-पुरोहित दुनिया में हैं, मनुष्य का मानसिक रोगों से छुटकारा नहीं है सकता। क्योंकि ये तुम्हें उलटी बातें सिखा रहे हैं; ये कहते हैं : दबाओ।

समझो! अनुभव करो! अनुभव तुम्हें बहुत कुछ सिखाएगा।

लड़की के पिता ने उस नवयुवक से जिसके साथ वह शादी करना चाहती थी, पूछा, "मेरी बेटी ने तुम्हें पसंद कर लिया है, तुम शादी कब करना चाहोगे?"

"यह आपकी बेटी जाने।"--नवयुवक ने उत्तर दिया।

"और क्या शादी चुपचाप करोगे या बारात लाओगे?"

"यह आपकी बेटी की मां जाने।"

"पर शादी करके तुम मेरी बेटी के साथ रहोगे कहां? खाओगे कहां से?"

"यह आप जानें।"--नवयुवक ने उत्तर दिया।

पहले तो कोई ऐसे ढंग की जगह खोजो।

एकस्त्री ने अपने पति से कहा, " जब भी आप किसी खूबसूरत लड़की को देखते हैं, तो यह भूल जाते हैं कि आप विवाहित हैं।"

भूलता कहां हूं? उस समय तो यह एहसास और भी तीव्र हो उठता है"--पति ने उत्तर दिया--"कि हाय, मैं विवाहित हूं! कि हे राम, किस दुर्भाग्य के क्षण में विवाहित हो गया!"

पहले इन कष्टों से गुजरो!

पत्नी अपने पति से कह रही थीः "सुनोजी, आपने इतना बढ़िया खाना बनाना कहां से सीखा? अपनी मां से क्या?"

पति ने कहा, "नहीं-नहीं, अपने पिताजी से।" कुछ गुजरो!

बीबी ने अपने पति से कहा, "आप अपने मित्र के भूले ही जा रहे हैं क्या? उसकी बीबी मर गयी है, उसकी अर्थी तैयार है, वे सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उसने आपको विशेष रूप से बुलाया है, आप उसकी बीबी की शवयात्रा में शामिल नहीं होंगे क्या?"

"मैं नहीं जाऊंगा।"--पति ने कहा।

"अरे, क्यों?"--बीबी ने विस्मित होकर कहा--"वह आपका इतना गहरा मित्र है।"

"क्या यह अच्छा लगता है कि वह मुझे चौथी बीबी की शवयात्रा पर बुला रहा है और मैं उसे अभी तक एक बार भी नहीं बुला सका?"

फिर ब्रह्मचर्य आसान होगा। इतनी जल्दी नहीं!

मोरारजी देसाई के संबंध में सुना है कि सत्ता छिन जाने के बाद वे चमचों से इस तरह घबड़ाने लगे हैं कि खाने की मेज पर चमचों के बजाय हाथ से खाने लगे हैं।

अनुभव बड़ी चीज है। दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है।

एक महिला अपनी पड़ोसिन से पूछ रही थी कि आप अपनी सेहत का राज बता सकती हैं?

" मैं जब अपने पति के पीने के लिए दूध लेकर जाती हूं तो किसी बात पर उनसे लड़ बैठती हूं। तब वे क्रोध में आकर कह देते हैं कि मैं दूध नहीं पीऊंगा। बस, मैं दूध पी जाती हूं।"--पड़ोसिन ने कहा।

अभी नहीं, चंद्रशेखर! थोड़े ठहरो। ब्रह्मचर्य आएगा। अगर तुमने थोपा ब्रह्मचर्य तो कभी नहीं आएगा। तुम जिंदगी भर वासना से भरे रहोगे। और अगर तुमने ब्रह्मचर्य थोप दिया अपने ऊपर, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। संसार में इतनी स्त्रियां हैं, कैसे रक्षा करोगे? पत्नी की यही तो खूबी है कि वह बाकी स्त्रियों से तुम्हारी रक्षा करती है। नहीं तो तुम जगह-जगह मुश्किल में पड़ोगे। प्रत्येक पति को एक पत्नी चाहिए ही, नहीं तो उसकी रक्षा कौन करेगा? पति यह सोचते हैं कि वे पत्नी की रक्षा कर रहे हैं। वे गलती में हैं, बिल्कुल गलती में हैं, पत्नी उनकी रक्षा करती है। नहीं तो वे कभी भी मुंह मार बैठें, कहीं भी भागे, कुछ भी उलटा-सीधा करें!

आनंद अमृता ने एक प्यारी और सच्ची घटना लिख कर भेजी है। अमृता अमरीका से अपना सब कुछ छोड़-छाड़कर यहां आ गयी है। लिखा है उसने--

"मेरी एक मित्र के पिताजी एक बार अमरीका आए। बड़े धार्मिक हुए जा रहे हैं, ऐसा वे सोचते थे। परिवार को अधार्मिकता से बचाने के लिए उन्हें नित्य उपदेश देते। अपी संस्कृति और धर्म का गुणगान करते। भारतीय परंपराओं को बनाए रखने के लिए उन्हें प्रेरित करना उनका नित्यकर्म था। परिवारवाले किसी भी भांति वृद्ध पिताजी के उपदेशों को गले से उतारते।

कुछ महीनों के पश्चात उन्होंने अचानक धार्मिक भाषण बंद कर दिया। पूछने पर भी चुप रह जाते। गजब की चुप्पी साध ली थी उन्होंने। सभी हैरान थे। मामला क्या है, समझ में कुछ न आ रहा था। वे एक खिड़की पर बैठ जाते और अपना जाप करते रहते। होंठ हिलते दिखायी देते। जप करते समय आंखों के सामने अखबार न जाने वे क्यों रखने लगे। और अखबार को निरंतर आंखों के सामने ऊपर-नीचे करते रहते। परिवार वाले बेचैन हुए कि वृद्ध पिताजी को यह कोई रोग तो नहीं हो गया। उनकी बेचैनी को पिताजी ने भाप लिया। उन्होंने

अखबार ऊपर-नीचे करना बंद कर दिया। पर उसमें एक छेद कर लिया। अब तो सबकी हैरानी की सीमा न रही।

भगवान, आप बता सकते है कि खिड़की के सामने क्या था? उसमें से वे क्या देख रहे थे?

सामने के बंगले में पड़ोसी की युवा कन्याएं सूर्य-स्नान कर रही होती थी।"

वह सारी संस्कृति और सारा धर्म मिट्टी में मिल गया। अब यह अखबार में छेद करके सह सत्संग कर रहे हैं। राम-राम जप रहे हैं! थोपा होगा जबर्दस्ती अपने ऊपर सारा धर्म। इस देश में अधिक लोगों की यह दुर्दशा है। लोग थोपे हुए हैं।

मैं जबर्दस्ती किसी भी चीज के थोपने के विरोध में हूं।

तुमने तीन बातें चाही हैं, चंद्रशेखर; एक तो कि मेरे संन्यास में तुम्हारी उत्सुकता है। वह तुम पहला काम करो। इसलिए उसे मैं पहला कहता हूं कि उसके बाद तुम ढंग की पत्नी खोज सकोगे। क्योंकि मेरे संन्यासी नियोजित विवाह में भरोसा नहीं करते हैं, प्रेम-विवाह में भरोसा करते हैं। नियोजित विवाह जबर्दस्ती है, बलात्कार है, हिंसा है। जिस स्त्री को तुमने कभी चाहा नहीं, जिस स्त्री ने तुम्हें कभी चाहा नहीं, किन्हीं पंडित-पुरोहित के मंत्र पढ़ देने से तुम अधिकारी नहीं हो जाते कि उस स्त्री के साथ किसी भी तरह का संबंध बनाओ। तुम्हारा संबंध अनैतिक है।

मेरे हिसाब में नियोजित विवाह से पैदा हुए सभी बच्चे नाजायज हैं। सात चक्कर लगा लिए इससे जायज हो गये बच्चे! सात क्या तुम सत्तर लगा लो चक्कर चक्कर में क्या रखा है? घन-चक्कर पैदा होंगे!

प्रेम के अतिरिक्त इस जगत में तुम जो भी संबंध बनाओगे, वे संबंध थोथे होंगे, ऊपरी होंगे। उनके कारण क्या हो सकते हैं? कुछ और ही कारण होंगे-- प्रेम तो है ही नहीं कारण। धन होगा कारण, कि कितना दहेज मिलेगा : परिवार होगा कारण, प्रतिष्ठा होगी कारण; नौकरी अच्छी मिल जाएगी; बड़े पद पर पहुंच जाओगे-- मगर यह प्रेम है? और इस पत्नी को तुम सोचते हो कि यह तुम्हारी पत्नी है? तुम इसके पति हो? तुम्हारे बीच कोई सेतु है?

इसलिए बिल्कुल संयोग की बात है; इस देश में अगर सौ में से एक जोड़ा भी सच में जोड़ा मिल जाए, तो वह बिल्कुल सांयोगिक बात है। निन्यानबे जोड़े तोझूठे हैं।

इसलिए उनकी जिंदगी कलह ही कलह में बीतती है।

पहला काम तो करो संन्यास। फिर दूसरा काम, तुम्हारे जीवन में जब प्रेम उदय हो, किसी से तुम्हारा लगाव बने, ऐसा लगे कि किसीके साथ रहने का रस है, किसीके साथ तुम रहना चाहों इसकी अदम्य आकांक्षा उठे, तो जरूर साथ रहे। उस साथ रहने को ही मैं विवाह कहता हूं। और विवाह का कोई अर्थ नहीं है।

और तब तक ही साथ रहो तब तक कि तुम्हारे भीतर यह प्रेम की धारा बहती रहे। जिस दिन तुम पाओ कि प्रेम की धारा सूख गयी है, उसके बाद जबर्दस्ती न करो; उसके बाद क्षमा मांग लो, कि बात समाप्त हो गयी। जिस प्रेम के कारण हम इकट्ठे हुए थे, वह प्रेम तिरोहित हो गया।

और इस भ्रांति में मत रहना कि सच्चा प्रेम कभी नहीं मरता। जितना सच्चा हो, उतने जल्दी मर जाता है :झूठे फूल टिकते हैं, सच्चे फूल सुबह खिलते हैं, सांझ समाप्त हो जाते हैं। सचाई में एक गहराई तो होती है, लंबाई नहीं होती। झूठ में लंबाई तो होती है, गहराई नहीं होती। और इसीलिए विवाह टिकता है। विवाह टिकाऊ है। प्रेम-विवाह कि लिए इसीलिए सदियों से लोगों ने, होशियार लोगों ने, समझदार लोगों ने, चालबाज लोगों ने

रोक रखा है कि प्रेम-विवाह खतरनाक है। क्योंकि प्रेम का क्या भरोसा? टिके, न टिके। आज है, कल नहीं हो जाए।

यह आग ऐसी है कि न लगाए लगे, न बुझाए बुझे। लगे तो लग जाए और बुझे तो बुझ जाए, तुम्हारे हाथ के बाहर है। यह बेबूझ पहेली है। मगर प्रेम की बेबूझ पहेली से ही तुम्हारे कदम परमात्मा की तरफ उठते हैं। क्योंकि परमात्मा और भी बड़ी बेबूझ पहेली है।

तो मैं कहूंगा कि प्रेम के साथ जोखम लेनी चाहिए। यह टिकाऊपन का जो भाव है, यह जो बाजारूपन है दिमाग में कि चीजें स्थायी होनी चाहिए, ये व्यवसायी बुद्धि के लक्षण हैं। और व्यवसायी बुद्धि का आदमी जगत में कुछ भी नहीं पाता। हां, कुछ ठीकरे जोड़कर मरेगा। बस ठीकरे ही जोड़ने में मर जाएगा। उसकी आत्मा कुछ ठीकरों में बिक जाएगी। जुआरी चाहिए जिंदगी में। दांव लगाने वाले लोग चाहिए। और प्रेम बड़ा दांव है।

तो पहता तो काम, चंद्रशेखर संन्यास। ताकि तुम सीख सको प्रेम की कला, ध्यान की कला, मौन की कला--और साहस जुटा सको। फिर अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम का कोई फूल खिले, तो जरूर उस व्यक्ति के साथ रहना, बेफिक्री से रहना। लेकिन जब तक प्रेम का फूल खिला रहे तभी तक। जब प्रेम विदा हो जाए, तो एक क्षण को भी झूठ को मन खींचना, झूठ को मत दोहराना। क्योंकि जोझूठ को दोहराता है, झूठ हो जाता है। जोझूठ को थोपे रहता है; वह धीरे-धीरे मुर्दा हो जाता है, मर जाता है, पाखंडी हो जाता है। जिससे प्रेम नहीं है, उससे कहना पड़ता है कि प्रेम है। बताना पड़ता है कि प्रेम है। दिखाना पड़ता है कि प्रेम है। हजार उपाय करने पड़ते हैं--क्योंकि अब प्रेम तो रहा नहीं। प्रेम तो रहा नहीं। प्रेम तो पर्याप्त है, न साड़ी लानी पड़ती, न फूल के गुलदस्ते लाने पड़ते, न हार खरीदने पड़ते हैं--प्रेम काफी है। प्रेम की हवा और, गंध और। और जब प्रेम मर जाता है तो फिर साड़ी लाओ, गहने लाओ, उपहार लाओ; फिर किसी तरह से पूर्ति करो, वह जो मर गया है प्रेम, उसकी जगह कुछ थोथे उपकरण जुटाओ; धोखा बनो रखो कि प्रेम है। क्योंकि कभी वायदा किया था। अब वायदे से मुकरना कैसा! लेकिन तुम कर क्या सकते हो? ! यह आग ऐसी है कि न तुम लगा सकते, न तुम बुझा सकते। तुम बेबस हो। प्रेम तुमसे बहुत बड़ा है! बाढ़ की तरह आता है। और कब चला गया, पता नहीं। टिक जाए टिक जाए, न टिके न टिके।

मगर जिसने प्रेम को जीया है, उसके सुख-दुख दोनों भोगे हैं--दोनों हैं। प्रेम तुम्हें नर्क के कष्ट देगा और तुम्हें स्वर्ग के क्षण भी देगा। तुम्हें ऊंचाइयों से ऊचांईयों पर उड़ाएगा और तुम्हें नीचाइयों से नीचाइयों पर ले जाएगा। तुम्हें गहरे से गहरे अंधकार में गिराएगा। और तुम्हें प्रकाशोज्ज्वल शिखरों पर भी उठाएगा। प्रेम की जड़ें हैं जो पाताल तक जाती हैं और प्रेम की शाखाएं हैं जो आकाश तक जाती हैं।

इन दोनों को जानने के बाद, इस अनुभव की परिपक्वता से ब्रह्मचर्य का उदय होता है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ यह होता है; प्रेम ने तुम्हें इतना पका दिया कि अब तुम्हें प्रेम भी बचकाना मालूम पड़ने लगा। अब तुम्हारा घड़ा कच्चा न रहा, पक गया। अब तुम उस आग से गुजर गये जो पका देती है। अब तुम्हारे जीवन में अगर ब्रह्मचर्य होगा तो यह ब्रह्मचर्य जबर्दस्ती नहीं होगी, थोपा हुआ नहीं होगा, आरोपित नहीं होगा, यह सहज होगा, स्वस्फूर्त होगा। और जब स्वस्फूर्त ब्रह्मचर्य होता है तो व्रत नहीं होता, ध्यान रखना। व्रत का अर्थ होता है : थोपा हुआ।

मैं व्रतों का विरोधी हूं। मैं सहजता का पक्षपाती हूं। मेरे लिए सहजता ही साधुता हैं। और सहजता के साथ बहने का नाम समर्पण है। और सहजता के लिए जो भी चुकाना पड़े उसको चुकाने की तैयारी संन्यास है। जीवन भी जाए तो जाए मगर असहज मत होना। तो एक दिन जरूर ब्रह्मचर्य का फूल तुम्हारे जीवन में खिलेगा।

मगर उसके खिलने की पूरी प्रक्रिया है। आज तुम चाहो कि आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर बैठ जाओ, तो तुम कष्ट पाओगे। मैं तुम्हें ऐसे कार्य में कोई सहयोग नहीं दे सकता। तुम्हें ऐसे कार्य में सहयोग चाहिए तो पूरी के शंकराचार्य जैसे आदमी ठीक रहेंगे। या विनोबा भावे के पास चले जाओ। या इस देश में कुछ कमी है; मुक्तानंद, अखंडानंद, ढेर लोग हैं! एक मुझको छोड़कर तुम कहीं भी जाओ, मैंने तुमसे जो कहा है, वह तुमसे कोई भी नहीं कहेगा। क्योंकि मुझे न किसी परंपरा के पालन की इच्छा है, न किसी परंपरा के पोषण का कोई भाव है। मैं तो सच जैसा है, मेरे लिए सत्य जैसा है वैसा ही तुमसे निवेदन कर देता हूं, उसमें रत्तीभर भेद नहीं करना चाहता। मुझे कुछ लाज नहीं, संकोच नहीं है। में किन्हीं शिष्टाचारों में भरोसा नहीं करता। सत्य के लिए सारे शिष्टाचार भी छोड़ देने पड़ें तो मैं तैयार हूं।

तुम जैसी मूढ़तापूर्ण बात कर रहे हो, इसके लिए तो तुम्हें पुरी के शंकराचार्य जैसे व्यक्ति ही समर्थन कर सकते हैं। मेरे पास तो तुम गलत जगह आ गये। मैं तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। तुम्हारी सारी भावदशा गलत है। तुम एकदम दकियानूसी किस्म की बात कर रहे हो। यह जवान आदमी को बात ही नहीं करनी चाहिए इस तरह की। यह तो जवानी के पहले बुढ़ापा आ गया। युवा न हुए और मर गये। मरने के बहुत पहले मर गये। अर्थी तो निकलेगी चालीस-पचास साल बाद, मर गये अभी तुम। और अगर ऐसा ही तुम्हें करना हो, आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ही लेना हो, तो कृपा करके किसी स्त्री को क्यों कष्ट देना चाहते हो, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अब यह महीने भर बाद शादी होनेवाली है, महीना भर काफी है, भाग निकलो जितने दूर निकल सको। महीने भर में तो अगर पैदल भी चलोगे तो चीन पहुंच जाओगे।

तीसरा प्रश्नः भगवान, पांण कच्छ हलोंता? (हम कच्छ चलेंगे?)

सचमुच कच्छ प्रदेश के भाग्य बलशाली हैं! धन्य होगी भूमि भगवान के वहां पधारने से! अब तक कच्छ सबसे--कच्छियों से भी--उपेक्षित रहा है। पर आश्रम के वहां जाने की बात से अचानक कच्छ के हितेच्छुओं (!) को भूमिप्रेम, सुरक्षा, पता नहीं और क्या-क्या भाव जाग जाते हैं! जो लोग अभी आश्रम के कच्छ-प्रवेश की बात पर विरोध आंदोलन चलाते हैं, वे अधिकांश लोग आपकी महावीर-वाणी के प्रवचन से प्रभावित थे। पर अब... !

आप कुछ संदेश देने की अनुकंपा करें!

(आंउ कच्छी अंइया।--मैं कच्छी हूं।)

योग हंसा! अरे, जो कच्छा पहने सो कच्छी! मगर कच्छा बदलते रहना! और बदलो तो सरदार विचित्तर सिंह से मत बदल लेना।

चलेंगे, हंसा, कच्छ चलेंगे! पांण कच्छ हलोंता। तू ही थोड़े कच्छी है। आंउ कच्छी अंइया। मैं भी कच्छी हूं।

कश्मीर से लेकर मैं कन्याकुमारी तक गया हूं, बंबई से लेकर कलकत्ता तक, सिर्फ कच्छ कभी नहीं गया। उसको मैंने छोड़ रखा है कि वहां जाऊंगा तो फिर वहां से हटूंगा ही नहीं। एक ही जगह मैंने पूरे देश में छोड़ रखी है, कच्छ। बहुत बार कच्छियों ने मुझसे कहा कि कच्छ चलें, मैंने कहा, आऊंगा। आऊंगा तो बस फिर आऊंगा। फिर क्या जाना? कच्छ से फिर कहां जाना? तो कच्छ चलेंगे, कोई फिक्र न कर तू! विरोध वगैरह तोबिल्कुल स्वाभाविक है।

और कुछ खास विरोध नहीं, दो-चार-दस लोग। थोड़ा रस ही रहेगा चलने में, विरोध रहेगा तो। यूं मेरी जमात कहीं जाए और बिना विरोध के पहुंच जाए, बात कुछ शोभादयक नहीं होगी। ऐसा कुछ जिंदाबाद-

मुर्दाबाद तो होना ही चाहिए। पूरा कच्छ कंपना ही चाहिए पहुंचने से। लेकिन सौ में से निन्यानबे प्रतिशत लोग साथ हैं; एक प्रतिशत लोग विरोध में हैं। और जो विरोध में हैं, उनके स्वार्थ हैं। उनको घबड़ाहट है।

और तू ठीक कहती है कि ये वे ही लोग हैं, जो महावीर-वाणी के प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित थे। वे मुझसे प्रभावित नहीं थे। वे तो इसलिए प्रभावित थे कि मैंने उनके महावीर की प्रशंसा कर दी। जैसे महावीर पर उनकी कोई बपौती है। मैं तो अपनी ही बात कर रहा था। महावीर तो खूंटी किसीकी हो। हर खूंटी पर मैं अपना कोट टांगता हूं। खूंटियों से मैं कोई चिंता ही नहीं लेता। खूंटी न हो खीली हो तो खीली पर टांग देता हूं। कोट तो कहीं न कहीं टांगना ही होगा।

तो फिर जीसस हों कि महावीर हों, कि बुद्ध हों, कि तिलोपा हो, कि सरहा हो, क्या फिक्र! मैं फिक्र ही नहीं करता, किसी भी खूंटी पर टांग देता हूं--खूंटी के रंग-ढंग से क्या फर्क पड़ता है! मुझे अपनी बात कहनी है और मैं अपनी ही बात कहता हूं। मगर लोग ऐसे मूढ़ है! मुझे अपनी बात कहनी है और मैं आनी ही बात कहता हूं। मगर लोग ऐसे मूढ़ हैं कि बस महावीर की खूंटी पर कोट टंगा देखा तो उन्होंने सोचा, अरे, महावीर स्वामी का कोट है। वे एकदम गदगद हो गये। और जब मैं अपना कोट उतार कर चलने लगता हूं तो बस! और कोट मेरा है। इसमें महावीर स्वामी का क्या लेना-देना? वे तो नंग-धड़ंग थे, वैसे भी उनके पास कोट वगैरह था नहीं। और अब मैं उन्हीं पर कोट टांगे रहूं तो दूसरी खूंटियों का क्या हो? वही कोट फिर मैं बुद्ध पर टांग देता हूं। तो बुद्ध को मानने वाले बड़े प्रसन्न हो जाते हैं मगर अड़चन उनको आनेवाली हैं, सभी को आने वाली है।

जब मैं महावीर पर बोला, तो जैन बड़े प्रसन्न हुए। उनको लगा कि चलो, महावीर की वाणी को दुनिया के कोने-कोने तक पहुंचाने वाला कोई व्यक्ति मिल गया।

महावीर के अहंकार में उन्होंने अपना अहंकार जोड़ा हुआ है। महावीर का नाम उन्हें लगता है उनका नाम। महावीर से सारी दुनिया प्रभावित हो जाए तो उनका झंझा फहर जाए। और मुझे किसी के झंडे फहराने से कोई मतलब नहीं है। मुझे तो महावीर में कोई बात प्रीतिकर लगी तो मैंने कही। कहीं भी तो मैंने अपने अर्थ दिये हैं। जरूरी नहीं कि महावीर मेरे अर्थों से राजी हों। हो भी नहीं सकते पच्चीस सौ साल का फासला है, महावीर मेरे अर्थों से राजी हो भी कैसे सकते हैं! पच्चीस सौ सौ साल में आदमी वहीं तो नहीं रुका है। पच्चीस सौ साल में कितनी क्रांति हो चुकी, आदमी कहां से कहां पहुंच गया, गंगा का कितना पानी बह गया!

महावीर से मेरा मिलना हो तो उन्होंने कहा है, उसमें और मेरे कहने में बहुत फर्क रहेगा, जमीन-आसमान का फर्क रहेगा, पच्चीस सौ साल का फर्क रहेगा। यद्यपि हम एक-दूसरे को समझ पाएंगे। क्योंकि जिस अनुभव से उन्होंने कहा है, वह मेरा भी अनुभव है। अनुभव में हम सहमत होंगे, लेकिन हमारे वक्तव्य तो भिन्न होने वाले हैं। निश्चित भिन्न होने वाले हैं। मेरी भाषा और, उनकी भाषा और। उनके कहने के तौरत्तरीके और, मेरा तौरत्तरीका और। उनका अंदाजे-बयां और, मेरा अंदाजेबयां और। मेरे सोचने की प्रक्रिया और। मैं बीसवीं सदी के लोगों से बात कर रहा हूं। वे पच्चीस सौ साल पहले और ही तरह के लोगों से बात कर रहे थे। फर्क तो हो ही जानेवाला है। बहुत फर्क हो जानेवाला है।

इसलिए महावीर के जब मैं अर्थ करता हूं तो ख्याल रखना, वे अर्थ मेरे हैं। लेकिन जैन प्रसन्न हुए। मगर वह प्रसन्नता ज्यादा देर टिकने वाली नहीं है। हां, उसमें से मैंने कुछ जैन पकड़ लिए। जो सच में ही प्रसन्न हुए थे। जिन्होंने इसकी फिक्र नहीं की कि महावीर की प्रशंसा मैंने की। जो आंदोलित हो गये, सच में आंदोलित हो गये। जिनका हृदय सच में गदगद हुआ। जिनका कोई जैन होने का अहंकार तृप्त नहीं हुआ वहन जिन्हें राह मिली, मार्ग मिला, दृष्टि मिली। वे मेरे साथ हो लिये। आखिर हंसा भी तो ऐसे ही मेरे साथ हुई। उसमें से कुछ जैन मेरे

साथ हो गये। बस, उनके लिए ही मैंने जाल फेंका था। जो मछलियां मेरी थी वे मेरे जाल में आ गयीं। और सभी कूड़े-करकट को मुझे करना भी क्या था? तो जैसे ही मैंने जीसस की बात की, वे जो सिर्फ महावीर का झंडा फहराने को उत्सुक थे, वे जीसस का नाम सुनकर ही बहुत हैरान हो गये।

मुझसे एक जैन मुनि ने कहा कि आप महावीर और जीसस का नाम एक ही साथ ले देते हैं, यह अच्छा नहीं है। कहां महावीर तीर्थंकर और कहां जीसस! जीसस को सूली लगी। सूली तो उसी को लगती है जिसने बहुत महापाप किये हों पिछले जन्मों में। जैन धर्म के हिसाब से तो कोई निर्णय निर्णायक की कोई खुशामद करो तो बचा दे। कि प्रशंसा करो, अपने बालों को बचा ले। जो न मानें उनको नर्क में डाल दे, जो मानें उनको स्वर्ग ले जाए। जैन धर्म में तो कोई ईश्वर की धारणा नहीं है। जैन धर्म में तो ईश्वर की जगह कर्म का ही सिद्धांत है। और कर्म का सिद्धांत तोबिल्कुल ही निष्पक्ष है, तटस्थ है। सिद्धांतों में कोई पक्षपात तो होता नहीं। तो सूली क्यों लगी? जैनों की तो धारणा यह है कि महावीर को तो कांटा भी नहीं चुभ सकता; सूली लगना तो दूर। जब महावीर चलते हैं तो रास्ते पर अगर कांटा सीधा पड़ा हो तो तब जब कोई पाप किया हो। पाप तो समाप्त हो गये। जीसस को सूली लगी तो किसी महापाप को ही फल होगा।

तो जैन मुनि ने मुझसे कहा कि आप कैसे जीसस का नाम ले देते हैं! आप तोहद कर देते हैं, मुहम्मद तक का नाम ले देते हैं, जो आदमी तलवार लेकर लड़ता रहा! आप कृष्ण का भी नाम ले देते हैं उसी पंक्ति में! कृष्ण को जैन शास्त्रों ने नर्क में डाला हुआ है। क्योंकि इसी आदमी ने महाभारत का युद्ध करवाया। अर्जुन तो बेचारा जैन हुआ जाता था। वह तो यह कह रहा था कि हम जैन मुनि होंगे। वह तो सब छोड़-छाड़कर जाना चाहता था। उसको तो बड़ा वैराग्यभाव पैदा हुआ था। और कृष्ण ने उसकी खूब मार-ठोंक की। ... जैसे अभी चंद्रशेखर को मैंने मारा-ठोंका! ऐसे कृष्ण ने अर्जुन को खूब मारा-ठोंका। उसकी बुद्धि बिल्कुल ठिकाने ला दी। वह तो कह रहा था मेरा गाण्डिव ही हाथ से खिसका जा रहा है। वह तो बैठ ही बया था कि मेरे हाथ शिथिल हो गये। मुझसे उठा ही नहीं जाता। उसको एकदम लकवा लगा जा रहा था। कृष्ण ने उसको फिर से खड़ा कर दिया। धक्कम-धुक्की देकर उसको पूरी गीता ऐसी पिलायी! लाख उसने बचने की कोशिश की--इधर से भागा, उधर से भागा, उन्होंने बस दरवाजे बंद कर दिये! और ऐसा नहीं लगता कि अर्जुन उनसे अंततः भी राजी हुआ। वह तो घबड़ा कर बोला कि भइया, अब क्षमा करो! मेरे सब संदेह गये! बजाय तुमसे सिर पचाने के लड़ ही जाने में सार है! अब कब तक सिर पचाना है? तो लड़ गया बेचारा।

जैनों की धारणा है कि कृष्ण ने हिंसा करवा दी।

तो जैन मुनि मुझसे बोले कि आप इन सबका नाम महावीर के साथ ले देते हैं। कहां महावीर तीर्थंकर, परम पुरुष, परमज्ञान को उपलब्ध, समाधिस्थ और कहां ये लोग! तो उनको कष्ट होना शुरू हो गया।

लेकिन जब मैं जीसस पर बोला तो ईसाई बहुत प्रभावित हुए। जैन तो छट गये--हंसा जैसे जैन रह गये, जिनमें हिम्मत थी मेरे साथ रहने की वे रुक रहे--लेकिन ईसाई आने शुरू हुए। जब तक मैं जीसस पर बोला, ईसाई मुझसे बहुत खुश थे। जीसस पर मेरी बोली गयी किताबें करीब-करीब दुनिया की सारी भाषाओं में अनुवादित हो गयीं। ईसाई चर्चों में जीसस पर मेरे बोले गये वचनों के उद्धरण दिये गये। ईसाई पादरी दूर देशों से यहां सुनने आये, समझने आये। उनको लगा कि किसी व्यक्ति ने जीसस के संबंध में वे बातें कह दी हैं जिनका हमें ख्याल ही नहीं था, जिनका हमें पता ही नहीं था। लेकिन जब मैं लाओत्सु पर बोलने लगा, तो वे भाग खड़े हुए। कुछ उसमें से बच गये। यह होनेवाला था।

इसलिए मैं इन अलग-अलग लोगों पर बोला हूं, क्योंकि लोग तो बंटे हुए हैं। आज ऐसा आदमी तो खोजना कठिन है जो बंटा हुआ न हो। मेरे जैसे व्यक्ति के सामने बड़े से बड़ा सवाल यह है कि किन व्यक्तियों को चेताओ, सब वर्गों में बंटे हुए हैं। कोई जैन है कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई बौद्ध है--सब बंटे हुए हैं। तो मुझे तो इन्हीं बंटे हुए लोगों में से खोजना होगा। मुझे तो इन्हीं में पुकार देनी होगी। इनमें पुकार देने का एक ही ढंग है कि इन्हें के ढंग से पुकार दे दो। उसमें समझ सकेंगे, वे ठहर जाएंगे। जो नहीं समझेंगे, वे चले जाएंगे। जब मैं लाओत्सू पर बोला तो बस, उनको कठिनाई शुरू हुई। जब मैं बुद्ध पर बोला तो उनको बहुत कठिनाई शुरू हुई।

तुम जान कर हैरान होओगे कि जीसस पर मेरी बोली गयी किताबें तो पश्चिम की सारी भाषाओं में अनुवादित हो गयी, लाओत्सू पर और बुद्ध पर बोली गयी किताबें जापानी भाषा में अनुवादित हुई, लेकिन जीसस पर बोली गयी किताब जापानी भाषा में अनुवादित नहीं हुई। जैनों के सिवाय किसीने उसको पढ़ा ही नहीं। उपनिषदों पर बोला, हिंदुओं ने पढ़ा। गीता पर बोली, हिंदुओं ने पढ़ा, जैनों ने नहीं पढ़ा। यह मेरी अपनी विधि है। मुझे अपने लोग खोज लेने हैं जगह-जगह से। वे बंटे हुए हैं। वे किसी-किसी भीड़ में खोये हुए हैं। उनको मैं कैसे चुनूं? क्या उपाय है? मैं थोड़ी देर को उनकी भाषा बोलूं। उस भाषा में जो भी चेत सकते हैं, वे चेत कर मेरे साथ हो जाएंगे। लेकिन जब मैं किसी और पर बोलूंगा तो उनको कठिनाई शुरू हो जाएगी--तत्क्षण कठिनाई शुरू हो जाएगी।

जब मैं बुद्ध पर बोला तो जैनों को बहुत दुख शुरू हो गया। क्योंकि जैनों और बौद्धों में बड़ी पुरानी स्पर्धा है। बुद्ध और महावीर समसामयिक थे, तो उन दोनों में विरोध प्राचीन चल रहा है, संघर्ष भारी है और जैनी बुरी तरह पछाड़ खा गये हैं, क्योंकि बौद्धों ने सारे एशिया में फैलाव कर लिया और जैन तो सिकुड़ कर रह गये--कोई पैंतीस लाख संख्या उनकी, कोई संख्या है! तो बहुत भीतर कचोट है, बुद्ध के प्रति बहुत नाराजगी है। और जब मैं बुद्ध पर बोला, तब तो उनकी बेचैनी की सीमा न रही। वे एकदम मेरे विरोध में होने शुरू हो गये। और पतंजलि पर बोला, तिलोपा पर बोला; या जब विज्ञान भैरव तंत्र पर बोला तब तो एकदम भागदौड़ मच गयी! क्योंकि उनकी सारी धारणा दमन की है। मैंने तो महावीर में फी अर्थ यही किये थे कि दमन नहीं। मैं तो अर्थ ही वही करूंगा जो मेरे हैं। मगर महावीर का नाम था तो उन्होंने सुन लिया और जब मैं शुद्ध तंत्र पर ही भाषा की, तो बस उनके छक्के छूट गये।

तो परेशान हो रहे हैं कि अगर मैं कच्छ गया... और मैं जाऊंगा ही।

मोरारजी मुझे रोकने की कोशिश में खुद चले गये। मैं प्रतीक्षा करता रहा, मैंने कहा, ठीक। सासवड़ का तो मैंने बहाना ले किया था कि चलो, नजर बचेगी, यह लगेगा कि मैंने कच्छ जाने का ख्याल ही छोड़ दिया। मगर सासवड़ मैं गया भी नहीं। तुम जरूर उदघाटन करने गये, मैंने कदम नहीं रखा। मैं जाऊंगा तो कच्छ--पांण कच्छ हलोंता। सासवड़ कोई दूर नहीं है, कुल बीस-पच्चीस मील, मैं देखने भी नहीं गया। तुम जाकर उदघाटन भी कर आये, तुम जाकर समारोह भी मना आये। लेकिन मैं जानता था कि मोरारजी एंड कंपनी कोई ज्यादा देर टिकने वाली तो है नहीं। यह तोबिल्कुल बिल्ली के भाग्य से हंडी टूट गयी थी, छींका टूट गया था, संयोग की बात थी कि मोरारजी छाती पर बैठ गये। अन्यथा न तो योग्यता थी, न कोई प्रयोजन था, न कुछ उनसे देश का हित था। तो कितनी देर छाती पर बैठे रह सकते थे! उनका उतरना निश्चित था। साल-दो-साल मैंने कहा प्रतीक्षा कर लो, कोई हर्जा नहीं। अब कच्छ जाने का समय करीब आया जा रहा है। उनके विरोध वगैरह से कुछ होने वाला नहीं है। उन्हीं का हाथ है पीछे। उनके विरोध वगैरह से कुछ होने वाला नहीं है। उन्हीं का हाथ पीछे। वे जो लोग आज

विरोध कर रहे हैं, उनके पीछे मोरारजी का हाथ है। मोरारजी को लगता है कि यह उनकी प्रतिष्ठा का सवाल है। उनको लगता है, ... उन्होंने सब तरह से झूठे उपाय करके कच्छ जाने से रोका।

जिस समुद्र तट को हम आश्रम बनाना चाहते थे, वहां के सरकारी अधिकारियों पर दबाव डाल कर--स्वभावतः वे दबाव डाल सकते थे, सत्ता उनके हाथ में थी--झूठी रिपोर्टें लिखवाईं। अब सारी फाइलें देखने में आई हैं, सब झूठी रिपोर्टें हैं। ऐसी झूठी रिपोर्टें लिखवाईं जिनका कोई हिसाब नहीं है। लिखवाया है कि यहां से केवल तीस किलोमीटर की दूरी पर एयरफोर्स का अड्डा है, इसलिए एयरफोर्स के संबंध में कोई भी चीज गुप्त नहीं रह सकेगी अगर आश्रम यहां बनता है, तीस किलोमीटर बहुत पास है। अभी जाकर पता लगाने से पता चला है कि वह तीस किलोमीटर नहीं है अड्डा, पचास मिल है। और जब कलेक्टर को पूछा गया कि यह क्यों तीस किलोमीटर लिखा गया, तो उसने कहा, हम क्या करें, हम तो पेट के लिए नौकरी करते हैं। हम पर दबाव डाला गया कि तीस किलोमीटर ही बताओ। तो तीस किलोमीटर बता दिया।

और यह भी बात झूठी प्रचारित की कि एयरफोर्स विरोध कर रहा है कि इतने पास आश्रम नहीं बनना चाहिए। जबकि अब सब फाइलें देखी गयीं, तो एयरफोर्स की तरफ से कोई विरोध किया ही नहीं गया था।

अब उनके पास कुछ और तो उपाय नहीं है। अब एक उपाय है कि बंबई के कच्छियों को इकट्ठा करके कुछ शोरगुल मचाए। वह मचवाने की कोशिश कर रहे हैं। उससे कुछ हानि होने वाली नहीं है। उससे कुछ अड़चन होने वाली नहीं है। उससे लाभ ही होगा।

सत्य को कभी हानि पहुंचती नहीं। हानि पहुंचाने के सब उपाय व्यर्थ जाते हैं। थोड़ी देर-अबेर हो सकती है। पर देर-अबेर से क्या चिंता! सत्य के लिए तो शाश्वत काल पड़ा हुआ है। और मुझे ऐसी जगह चाहिए जो एक तरह से बिल्कुल अलग हो, ताकि मैं जो गहरे-से-गहरे प्रयोग करना चाहता हूं, वे किये जा सकें। वे गहरे प्रयोग भीड़-भाड़ में नहीं किये जा सकते, बाजार में नहीं किये जा सकते, नगरों में किये जा सकते। और वैसी जगह कच्छ में उपलब्ध है। क्योंकि कच्छ की आबादी कम।-- कच्छी सब वहां से छोड़ कर चले गये हैं। कच्छी वहां कोई रहते नहीं। न के बराबर संख्या है। पूरे कच्छ की आबादी सात लाख है। कच्छ के पास काफी जगह है, जहां हम बिल्कुल एकांत पा सकते हैं। ऐसा एकांत कि वहां न कभी कोई आये न कभी कोई जाये। जिसे आना है साधना के लिए, वही आए। और आये तो दुनिया से जैसे बिल्कुल टूट जाए। जैसे दुनिया भूल ही गयी। जैसे कि कोई चांद पर चला आया, इतने दूर दुनिया से हो गया। ऐसी मुझे कोई जगह चाहिए। वह जगह मेरे नजर में है। उस जगह को मैं छोडूंगा नहीं। और कितना ही विरोध किया जाए। विरोध करनेवाले चूंकि बिल्कुल ही झूठा विरोध कर रहे है...

कच्छ को आश्रम के पहुंचने से सिवाय लाभ के कोई हानि नहीं है। आश्रम की मौजूदगी पूना को डेढ़ लाख रुपया रोज दे रही है। आश्रम के हटते ही से पूना को पता चलेगा कि रौनक गयी! कि होटलें खाली पड़ गयी। कि चीजों के दाम नीचे गिर गये! कच्छ के लिए डेढ़ लाख रुपया रोज... और यह तो अभी आश्रम की सिर्फ शुरुआत है, क्योंकि पास कोई इंतजाम नहीं है, अभी केवल तीन हजार संन्यासी यहां है। कच्छ में मैं दो साल के भीतर दस हजार संन्यासियों को आबाद कर दूंगा। दस हजार संन्यासी आने को तत्पर बैठे हैं सिर्फ जगह का सवाल है। एक दफा जगह हाथ में हुई कि दस हजार संन्यासियों की गैरिक बस्ती बस जाएगी। वह इस पृथ्वी पर अपने ढंग का अनूठा प्रयोग होगा। दुनिया में कभी इतने बड़े पैमाने पर कोई आश्रम न हुआ है, न है। और इतना विश्वजनीन, जहां सभी जातियों के, सारे धर्मों के, सारे देशों के लोग होंगे।

कच्छ के तो सौभाग्य हो जाएंगे। कच्छ की दीनता मिट जाएगी। कच्छ में पांच हजार लोग बेकार हैं। पांच हजार लोगों का तो हमें काम दे सकेंगे--सिर्फ हमीं काम दे सकेंगे। कच्छ की पूरी बेकारी तो हमीं अलग कर देंगे। क्योंकि दस हजार लोगों के लिए रहने के लिए इंतजाम करना, मकान बनाना, आवास बनाना! और मैं कोई दीनता-हीनता में भरोसा नहीं करता कि झोपड़े तनाने हैं। वे पांच हजार लोग जो कच्छ में बेकार हैं, उनकी बेकारी एकदम खतम हो जाएगी। और जब दस हजार संन्यासी वहां आकर रहेंगे--और ये संन्यासी कोई साधारण संन्यासी नहीं हैं। ये हैं, सुशिक्षित लोग हैं। ये नवनीत हैं, दुनिया के। इसमें बड़े वैज्ञानिक हैं, इंजीनियर हैं, आर्किटेक्ट हैं, चित्रकार हैं, मूर्तिकार हैं, अन्वेषक हैं, अभिनेता है, संगीतज्ञ हैं, नर्तक हैं... और ये सब वहां काम शुरू हो जाने वाला है।

यहां "विनोद" बैठे हुए हैं, "विनोद" को मैंने कह ही रखा हुआ है कि जैसे ही आश्रम बनता है, संन्यासियों का अपना फिल्म उद्योग। दुनिया भर में बकवास होती है इस बात की कि फिल्म में यह नहीं होना चाहिए, वह नहीं होना चाहिए, मगर कोई यह तो बताए कि क्या होना चाहिए! कोई एकाध फिल्म तो बनाकर बताए कि क्या होना चाहिए।

हमारे पास सुंदरतम कलाकार हैं, अभिनेता हैं, मूर्तिकार हैं, चित्रकार हैं। हम वहां सब तरह के उद्योग डालने वाले हैं। क्योंकि मैं कोई संन्यासी को खाली बिठालना नहीं चाहता। हमारा संन्यासी सिर्फ कोई भाव-भजन करने वाला संन्यासी नहीं है। श्रम उसके लिए साधना है। और सृजन उसके लिए ध्यान है।

ये दस हजार संन्यासी कच्छ को इस देश में सर्वाधिक संपन्न भूमि बना देंगे। एक पांच साल के भीतर मैं जो कह रहा हूं उस सत्य का तुम्हें पता चल जाएगा। कि सारा देर्श ईर्ष्या से भर जाएगा कि हम चूक गये। हमने क्यों न निमंत्रित कर लिया आश्रम को! और तब ये लोग जा आज विरोध कर रहे हैं, इनको पता चलेगा। तब इनको होश आएगा। ठिकाने इनके होश तब आएंगे। कि तुम कच्छ को कुछ भी नहीं दिये हो। तुम कच्छ से खुद भाग गये हो, भगोड़े हो। मैं कच्छ में दुनिया भर से लोगों को ले जा रहा हूं। और वहां एक सृजन का पूरा-का पूरा नया छोटा-सा जगत निर्मित हो जाएगा।

अभी तो शुरू में छोटे उद्योग होंगे, लेकिन जल्दी ही... मैं, छोटी चीजों में मेरा भरोसा ही नहीं है। ... उद्योग बड़े हो जाएंगे। कच्छ के आश्रम के पास वैसा अस्पताल होना चाहिए जैसा अस्पताल पूरे भारत में दूसरा न हो।

और होगा, वसा अस्पताल होगा!

हमारी अपनी खेती-बाड़ी होगी। जिसमें हम सारे आधुनिकतम तंत्र का उपयोग करेंगे। हमारे अपने सब चीज के उद्योग होंगे। आश्रम स्वावलंबी तो होगा ही होगा लेकिन आश्रम के सहयोग से पूरे कच्छ की रौनक बदल जाएगी, कच्छ में पुनरुज्जीवन आ जाएगा।

योग हंसा! चलेंगे, बिल्कुल फिकिर मत कर! तू इसकी फिकिर ही मत कर तू ही कच्छी नहीं है। आंऊ कच्छी अंइया! और, पांण कच्छ हलोंता!

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

प्रार्थना या ध्यान?

पहला प्रश्नः भगवान,

तमसो मा ज्योतिर्गमय

असतो मा सद्गमय

मृत्योर्मा। .मृतं गमय

उपनिषद की इस प्रार्थना में मनुष्य की विकसित चेतना के अनुरूप क्या कुछ जोड़ा जा सकता है?

नरेन्द्र बोधिसत्व, यह प्रार्थना अपूर्व है! पृथ्वी के किसी शास्त्र में, किसी समय में, किसी काल में इतनी अपूर्व प्रार्थना को जन्म नहीं मिला। इसमें पूरब की पूरी मनीषा सन्निहित है। जैसे हजारों गुलाब से बूंद भर इत्र निकले, ऐसी यह प्रार्थना है। प्रार्थना ही नहीं है, समस्त उपनिषदों का सार है। इसमें कुछ भी जोड़ना कठिन है। लेकिन फिर भी मनुष्य निरंतर गतिमान है, यह अजस्र धारा है मनुष्य की चेतना की, जिसका कोई पारावार नहीं है। यह रोज नित नये आयाम छूती हैं, नित नये आकाश। बहुत बार ऐसा लगता है, आ गया पड़ाव और फिर आगे और भी उज्ज्वलतर शिखर दिखायी पड़ने लगते हैं। लगता है ऐसे कि आ गयी मंजिल, लेकिन हर मंजिल बस सराय ही सिद्ध होती है। और यह शुभ भी है। नहीं तो मनुष्य जीए ही कैसे? विकास है तो जीवन है। निरंतर विकास है तो निरंतर गति है। गत्यात्मकता जीवन है। इसलिए इस प्रार्थना में यूं तो कुछ जोड़ा नहीं जा सकता, ऐसे बिल्कुल भरी-पूरी है, और फिर भी कुछ जोड़ा जा सकता है।

नानक के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि वे अपनी अनंत यात्राओं में--बहुत यात्राएं कीं उन्होंने। भारत में तो कीं ही, भारत के बाहर भी कीं। काबा और मक्का तक भी गये। वे एक ऐसे गांव के पास पहुंचे जो फकीरों की ही बस्ती थी। सूफियों का गांव था। और उन सूफी दरवेशों का जो प्रमुख था, उसे खबर मिली कि भारत से एक फकीर आया है, पहुंचा हुआ सिद्ध है, गांव के बाहर ठहरा हुआ है--गांव के बाहर ही सरहद पर, एक कुएं के पास, एक वृक्ष की छाया में।

रात नानक ने और उनके शिष्य मरदाना ने विश्राम किया था।

नानक चलते थे तो मरदाना सदा उनके साथ चलता था। मरदाना उनका एक मात्र संगी-साथी था। नानक गाते गीत, मरदाना धुन बजाता। नानक गुनगुनाते, मरदाना ताल देता। नानक प्रभु के गुणों के गीत उतारते, मरदाना स्वर साधता। मरदाना के बिना नानक अधूरे से थे। गीत तो उनके पास थे, मरदाना जैसे उनकी बांसुरी था।

सुबह सुबह नानक गा रहे थे, सूरज उग रहा था और मरदाना ताल दे रहा था। तभी उस फकीर का संदेशवाहक आया। उस फकीर ने सांकेतिक रूप से--सुफियों का ढंग, अलमस्तों का ढंग, अल्हड़ों को ढंग--एक स्वर्ण पात्र में दूध भरकर भेज दिया था। इतना भर दिया था दूध कि एक बूंद भी उसमें अब और न समा सके। जो लेकर आया था पात्र, उसे भी बड़े संभालकर लाना पड़ा था। क्योंकि अब छलका तब छलका। इतना भरा था। ऐसा लबालब था।

पात्र लाकर उसने नानक को भेंट दिया और कहा, मेरे सदगुरु ने भेजा है; भेंट भेजी है। नानक ने एक क्षण पात्र को देखा, मरदाना सुबह सुबह ही नानक के चरणों पर लाकर कुछ फूल चढ़ाया था, उन्होंने एक फूल उठाया और उस दूध से भरे पात्र में तैरा दिया। अब फूल का कोई वजन ही न था, वह तैर गया दूध पर। एक बूंद दूध भी बाहर न गिरा। और कहा नानक ने, ले जाओ वापस, मैंने भेंट में कुछ जोड़ दिया; तुम न समझ सकोगे, तुम्हारा गुरु समझ लेगा।

और गुरु समझा।

भागा हुआ आया, नानक के चरणों में गिरा और कहा कि आप मेहमान बनें। मैंने पात्र भेजा था भर कर यह कहने कि अब और फकीरों की इस बस्ती में जरूरत नहीं। यह बस्ती फकीरों से लबालब है। यह मस्तों की ही बस्ती है, अब आप यहां किसलिए आए हैं! लेकिन आपने गजब कर दिया। आपने एक फूल तैरा दिया। यह तो मैंने सोचा भी न था, इसकी तो कल्पना भी न की थी, कि फूल तैर सकता है। क्योंकि फूल कुछ डूबेगा नहीं ऊपर ही ऊपर रहा। रहा होगा हलका-फुलका फूल, टेसू का फूल। कि चांदनी का फूल। डूबा ही नहीं तो पात्र से दूध के गिरने का सवाल ही न उठा। समझ गया आपका संदेश कि आप आए हैं बस्ती में, फूल की तरह समा जाएंगे। आएं, स्वागत है! बस्ती में कितने ही फकीर हों, आपके लिए जगह है। फूल ने खबर दे दी।

यह सूत्र यूं तो लबालब है, यह पात्र यूं तो दूध से भरा है, इसमें एक बूंद जोड़ने की गुंजाइश नहीं, लेकिन फूल तैराया जा सकता है। और जरूर तैराना चाहिए। तैराते ही रहना चाहिए। उपनिषद मरने नहीं चाहिए। तब तो उपनिषद पर उपनिषद लिखे गये। अन्यथा एक उपनिषद से बात पूरी हो गयी थी। एक छान्दोग्य उपनिषद में सब आ जाता। एक कठोपनिषद में क्या बचता है और, सब आ गया! एक छोटे से उपनिषद ईशावास्य में, जिसको कि पोस्टकार्ड पर छापा जा सकता है, सब आ गया; सब उपनिषद आ गये, सब वेद आ गये, सब पुराण आ गये। लेकिन उपनिषद पर उपनिषद लिखे जाते रहे। तैराने वाले फूल पर फूल तैराते चले गये।

यूं ही जीवन गतिमान रहता है। नहीं तो ठरह जाए, सड़ जाए। जहां पानी रुका, वहां गंदा हुआ। जहां बहता रहा, वहां निर्मल रहा।

बहता रहे यह पानी भी, इसलिए तुमसे कहता हूंः

इस सूत्र का पहला चरण हैः "तमसो मा ज्योतिर्गमय।

हे प्रभु... प्रभु को सीधा सीधा उल्लेख नहीं किया। वह प्यारी बात है। क्योंकि शब्द में जो आ जाए, वह तो परमात्मा नहीं है। उसे अनकहा छोड़ दिया है। उसे समझो, उसे कहो मत। इसलिए सीधा सीधा प्रभु का कोई उल्लेख नहीं। मगर उसकी उपस्थिति का एहसास है। क्योंकि यह प्रार्थना है। जहां प्रार्थना है, वहां प्रभु की उपस्थिति है।

सच्ची प्रार्थना में प्रभु को कहना नहीं होता, प्रार्थना काफी होती है। प्रार्थना का धुआं, धूप, प्रार्थना की ज्योति जिस तरफ उठने लगती है, जिस आकाश की तरफ, जो ऊर्ध्वगमन करने लगती है वही इशारा है उसका। इशारा भर होता है। इसलिए तुम कोष्ठक में समझनाः"हे प्रभु!" प्रत्क्ष नहीं है, प्रगट नहीं है, कहा नहीं है, मगर समझना जरूर क्योंकि बिना उसके बात बनेगी नहीं। सूत्र अधूरा है बिना उसके।

सूफियों ने ईश्वर को सौ नाम दिये है; लेकिन गिनाए केवल निन्यानबे हैं, सौवां कहा नहीं है। वही असली नाम है।

तुम जब सूफियों के, फकीरों के, अलमस्तों के ईश्वर के नामों की गणना पढ़ोगे तो बहुत चौंकोगे। ऊपर तो लिखा होता है। परमात्मा के सौ नाम--और अगर तुमने गिनती न की तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, क्योंकि

निन्यानबे हैं कि सौ, कैसा पता चलेगा? --गिनोगे तो बहुत चौंकोगे; गिनोगे तो निन्यानबे पाओगे, सौ कभी नहीं। निन्यानबे कहे हैं, सौवां असली है; जो कहा, वह तो सिर्फ इशारा है, जो नहीं कहा, वही असली है। निन्न्यानबे से उसीकी तरफ इशारा किया है, सौवें की तरफ। मगर अनकहे को भी गिनती में गिना है; सौ। ऊपर तो लिखा होता हैः सौ नाम परमात्मा के, पाओगे निन्यानबे।

ऐसा ही कहा नहीं है, छिपा है।

सत्य को पंक्तियों के बीच में पढ़ना होता है, जहां पृष्ठ खाली होता है, लकीरों में नहीं।

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

हे प्रभु... कोष्ठक लगा लेना... "मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।"

कहा तो इतना ही है कि मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। मगर किससे कहा? किसीसे तो कहना ही होगा। नहीं तो सूत्र बेमानी हो जाएगा। इसका कुछ अर्थ न रह जाएगा। मुझे ले चल अंधकार से आलोक की ओर। मगर कौन ले चले? इसलिए प्रार्थना में प्रभु है; मगर उसकी उपस्थिति है, अभिव्यक्ति नहीं है।

"असतो मा सदगमय"

दूसरा चरण हैः कि, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल। और तीसरा चरण है--

"मृत्योर्मा। .मृतं गमय"

"मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।"

तीनों सूत्र अलग अलग नहीं हैं। एक-दूसरे गुंथे हैं। एक ही सत्य के तीन पहलू हैं। यूं समझोः त्रिमूर्ति। परमात्मा के जैसे तीन रूप, ऐसे तीन सूत्र। जैसे तीनों रूपों की प्रार्थना कर ली। इसमें फूल तैराया जा सकता है और जरूर तैराना चाहिए; ताकि उपनिषद जिंदा रहे; उपनिषद मर न जाए; उपनिषद बढ़ता रहे, बहता रहे। गंगा चलती रहे, सागर बनती रहे। सागर उड़ता रहे, बादल बनता रहे। बादल बरसता रहे, गंगा बनता रहे। यह बहाव ही जीवन है।

इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं कि इस प्रार्थना से थोड़े और ऊपर उठा जा सकता है। फूल तैराना होगा तो थोड़े ऊपर उठना होगा। क्योंकि पात्र तो लबालब है, भरपूर है, एक बूंद जगह नहीं हैं। थोड़ा ऊपर उठोगे तो ही बात बनेगी।

अंधकार तो होता ही नहीं। अंधकार का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। इसलिए यह प्रार्थना कि हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल, अंधकार से ही भरी हुई हो गयी। अंधकार तो होता ही नहीं। अंधकार तो केवल अभाव है। अंधकार की कोई स्थिति नहीं है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है। इसीलिए तो तुम अगर अंधकार के साथ सीधा सीधा कुछ करना चाहो तो न कर पाओगे। तुम्हारे कमरें अंधकार भरा हो और मैं कहूं निकाल बाहर कर दो, तो तुम लाख चिल्लाओ, धक्के मारो, तलवार निकाल लो म्यान से, कि बंदूक चलाओ, कुछ भी न होगा। कितने ही बड़े पहलवान क्यों न हो और कितने ही दांव-पेंच क्यों न लगाओ, लेकिन हारोगे, अंधकार को बाहर न निकाल सकोगे; टूटोगे, खुद ही गिरोगे थक कर। और जब गिरोगे थक कर तो तुम्हारा तर्क कहेगा कि शायद अंधकार मुझसे ज्यादा बलवान है।

यही ता तर्क की भ्रांति है।

तर्क बड़े भ्रांत निष्कर्ष दे देता है। लड़े और हारे तो जाहिर है कि जिससे हारे, वह शक्तिशाली होना चाहिए। मगर यह भी हो सकता है--यह तर्क को कभी नहीं सूझता --कि वह हो ही न इसलिए तुम हारे। अब जो है ही नहीं, उससे लड़ोगे जीतोगे कैसे? जीतना असंभव है। अंधकार से घूंसेबाजी करोगे तो खुद ही थक जाओगे,

थक कर गिरोगे। अंधकार का क्या बिगाड़ लोगे? अंधकार होता तो जरूर कुछ बिगाड़ा जा सकता था। धक्का-मुक्की करके बाहर निकाल सकते थे। शोरगुल मचा सकते थे। हमला बोल सकते थे। लेकिन तुम अंधकर का कुछ भी न कर सकोगे, क्योंकि अंधकार है ही नहीं। तलवार चल जाएगी, कटेगा नहीं। बंदूक चल जाएगी, मरेगा नहीं। जहां का तहां रहेगा क्योंकि है ही नहीं। होता तो कुछ न कुछ कर लेते।

न तो अंधकार को हटा सकते हो। अगर तुम हटा सकते होते तो बड़ी दिक्कतें होतीं। भारत की सड़कों पर चलना मुश्किल हो जाता। हर आदमी अपने घर का अंधकार सड़कों पर डाल देता। जैसे कचरा डाल देते हो।

और यहां तो हर आदमी दार्शनिक है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा था कि एक औरत ने पूरी की पूरी टोकरी कचरा-कबाड़ से भरी ऊपर से उंडेल दी। छज्जे के नीचे झांक कर भी न देखा। उस टोकरी में से एक टीन का डिब्बा नसरुद्दीन के सिर पर लगा। बड़े जोर से वह चिल्लाया कि अंधी है तू, तुझे दिखायी नहीं पडता? अरे, स्त्री ने कहा कि यही कहो कि एक ही डिब्बा लगा; इसमें ईंट भी थी, पत्थर भी था। सौभाग्य मानो अपना, बड़े मियां! धन्यवाद दो परमात्मा का यह खाली टीन का डिब्बा बजा, इसमें क्या बिगड़ गया?

इस देश में ज्ञानी तो सभी हैं। क्या बात उसने भी पते की कही कि यह क्यों नहीं सोचते, आशावादी बनो, क्या निराशावादी बनते हो, यह क्यों नहीं सोचते कि ईंट भी लग सकती थी! सिर खुल जाता, अभी अस्पताल में होते! सिर्फ टीन का डिब्बा लगा, धन्यवाद तो देते नहीं, उलटे मुझ आंखवाली को अंधा कहते हो!

और मैं भी क्या करूं? अभी नयी नयी शादी होकर आयी है, पहले दिन मेरे पति ने कहा कि नीचे देख दाखकर फेंकना। सो मैं आधा घंटे खड़ी रही, जब आदमी निकला एक तब मैंने फेंका। सो वह आदमी लड़ने आ गया। और मैंने पति से कहा, तुमने ही तो कहा था कि नीचे देख लेना कि आदमी है या नहीं, तब फेंकना। तो उसने अपना सिर पीट लिया मेरे पति ने और कहा कि तू अब बिना ही देखे फेंका कर। तो आज दूसरे दिन बिना फेंका; तो आप झगड़ने को खड़े हो गए। आखिर आदमी कुछ करे कि न करे?

अंधेरा अगर फेंका जा सकता होता तो सड़कों पर ढेर लग जाते, निकलना मुश्किल हो जाता। तैरना पड़ता अंधेरे में से। नावें खेनी पड़तीं। बड़ी मुश्किल हो जाती। मगर अच्छा है कि अंधेरे को कोई बाहर नहीं फेंक सकता। न अंधेरे को तुम बाहर फेंक सकते हो और न अंधेरे को भीतर ला सकते हो। जैसे दोपहर में तुम्हें सोना है और तुम चाहो कि अंधेरा भीतर ले आएं ताकि अच्छी नींद आए, तो तुम अंधेरे बटोरकर भीतर भी नहीं ला सकते। अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। अंधेरा हटाना है तो प्रकाश जलाओ। अंधेरा लाना है तो प्रकाश बुझाओ। प्रकाश की सत्ता है, अंधकार की कोई सत्ता नहीं।

यह प्रार्थना कहती हैः "हे प्रभु, मुझे अंधकार से आलोक की तरफ ले चलो।"

अंधकार तो है ही नहीं, क्यों परमात्मा को कष्ट देते हो? इतना जान लो कि अंधकार नहीं है, इतने जान लेने में ही प्रकाश हो जाता है। इस बोध में ही प्रकाश हो जाता है।

इसलिए उपनिषदों से आगे कदम बढ़े। बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं की। परमात्मा को बीच में नहीं लाए। क्यूं उस बिचारे को परेशान करना! बोध से ही बात हल हो जाती है तो प्रार्थना क्यूं करनी? जब अपने से ही बात हल हो जाती हो तो क्यूं उसके द्धार पर दस्तक देनी? हो तो ठीक, न हो तो ठीक।

परमात्मा है या नहीं, इसकी भी चर्चा बुद्ध ने नहीं की। कोई पूछता था तो हंसकर टाल जाते थे। कह देते थे, अव्याख्य है, मत पूछो। न पूछो तो अच्छा। कुछ भी कहना उचित नहीं है। हो तो ठीक, न हो तो ठीक, लेना-

देना क्या है? काम की बात तो कुछ और है। अंधकार नहीं है, इस सत्य की प्रतीति चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें प्रार्थना नहीं सिखाता, मैं तुम्हें ध्यान सिखाता हूं, भेद इतना ही है।

प्रार्थना और ध्यान में इतना ही भेद हैः प्रार्थना सिर्फ हाथ जोड़ कर निवेदन करती है, हे प्रभु, ऐसा करो। फिर वह कितनी ही ऊंची प्रार्थना क्यों न हो, यह उपनिषद की ही प्रार्थना क्यों न हो, यह अदभूत, अपूर्व प्रार्थना ही क्यों ना हो। प्रार्थना में मांग होती है। तू कुछ कर! और ध्यान में स्वयं करने का बल होता है; स्वयं करने का भाव होता है।

जब भी कोई समाज प्रार्थनाओं से भर जाता है, तो आलसी हो जाता है। हो ही जाएगा। क्योंकि वह हर चीज के लिए प्रार्थना करने लगता है। जब परम अनुभूतियों के लिए प्रार्थना की जा सकती है तो फिर छोटी-मोटी चीजों के लिए क्यों नहीं कर लेनी! जब परमात्मा अंधकार को मिटाकर और प्रकाश दे सकता है, असत्य को हटाकर और सत्य दे सकता है, मृत्यु को हटाकर अमृत दे सकता है, तो क्या गरीबी मिटाकर अमीरी नहीं दे सकेगा? बेकारी मिटाकर कारोबार नहीं दे सकेगा? जरूर दे सकेगा। ये तो छोटी-मोटी बातें हैं। ये तो परमात्मा के नौकर-चाकर देवी-देवता कर देंगे। यह तो काली माई और दुर्गा माई और संतोषी मैया और ढांढन सती--यह तो कोई भी कर देगा। यह तो नौकर-चाकर, नौकर-चाकरों के नौकर-चाकर कर देंगे। ये छोटे-मोटे काम! और भी छोटे-मोटे करने हों, बुरे काम करवाने हों, तो भूत-प्रेत हैं, वे कर देंगे। किसीकी जेब कटवानी है, किसीको जहर दिलवाना है किसीकी गर्दन कटवानी है। मगर कोई कर देगा! हमे नहीं करना है।

प्रार्थना में एक बुनियादी भूल है कि यह टालती है दूसरे पर। और इसका स्वाभाविक परिणाम आलस्य होता है।

मौसम था बरसात का, भादौं आधी रात का,
आश्रम श्रम से दूर था, सुनो वहां की बात।
सुनो वहां की बात, जलेबी-दूध-परांठे,
खा-पी करके गुरु ले रहे थे खर्राटे।
आंख खुली तो चेले को आवाज लगाई,
क्यों रे छोरे! बिजली अब तक नहीं बुझाई?
चेला अड़ियल आलसी, गुरु अजगरानन्द,
कहने लगा कि मान्यवर, आंखें कर लो बन्द।
आंखें कर लो बंद, समस्या स्वयं सुलझेगी,
मुंह ढंक कर सो जाओ, समझ लो बत्ती बुझेगी।
बोले गुरु, यह तो बतला आलस के चरखा,
बंद हो गयी है या अभी हो रही बरखा?
गुरु जी, बाहर से आई है अपनी बिल्ली
हाथ फेर कर देखो, सूखी है या गिल्ली?
गिल्ली है तो जानिए, चालू है बरसात,
सूखी है तो बन्द है, खत्म हो गयी बात।
खत्म हो गई बात? न आती तुझको लज्जा
टाल रहा हर काम, बंद कर दे दरवज्जा।

दो मैंने कर दिये कार्य अब सोने दीजे,

काम तीसरा, भगवान आप स्वयं कर लीजे।

यह होनेवाला है। यह स्वाभाविक है। जहां प्रार्थना प्रमुख हो जाएगी वहां अंतिम परिणाम आलस्य होगा। लोग भिखमंगे हो जाएंगे। भारत की पूरी मनोदशा भिखमंगे की हो गयी है। जब मांगने से मिल जाए, तो करना क्यूं? इसलिए मंदिरों में सिर पटको, कब्रों पर मनौतियां मनाओ, पीरों की प्रार्थना करो--और आशा रखो कि सब हो जाएगा। जब उसकी मर्जी होगी तब होगा। अपने किये तो कुछ होता नहीं। उसकी मर्जी के बिना तो पत्ता नहीं हिलता, यह प्रार्थना करने वाले लोग समझते रहे, समझाते रहे। सो ये पत्ता भी नहीं हिलाते। ये खुद ही नहीं हिलते।

इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ कि सारा देश गहन आलस्य में, तंद्रा में, निद्रा में, में डूब गया। इसका परिणाम हुआः गरीबी, दरिद्रता, दीनता। फिर हम गरीबी, दरिद्रता और दीनता के लिए नये नये तर्काभास खोजने लगे। पहले हमने तर्काभास खोजा कि गरीब वे ही लोग हैं, जिन्होंनो पिछले जन्मों में दुष्कर्म किये थे। अमीर वे लोग है, जिन्होंने पिछले जन्मों में पुण्यकर्म किये थे। यूं अपने को समझाने लगे, सांत्वना देने लगे।

फिर महात्मा गांधी आए और उन्होंने कहा कि गरीब? कोई छोटी-मोटी बात नहीं। यह तो दरिद्र नारायण है। तो दरिद्र नारायण की तो पूजा करनी चाहिए। उसके तो पैर धोने चाहिए। तो वर्ष में एक दिन महात्मा गांधी किसी दरिद्र के पैर धो देते थे--औपचारिक, वर्ष में एक दिन। जैसे वृक्षारोपण समारोह होता है! आज लग जाते हैं वृक्ष कल नदारद हो जाते हैं। आज यहां लग जाते हैं वही वृक्ष कल दूसरी जगह वृक्षारोपण उन्हीं का हो जाता है। तीसरे दिन तीसरी जगह हो जाता है--वही वृक्ष जगह जगह रोपित होते रहते हैं। कहीं वृक्ष ऊगते दिखायी पड़ते नहीं। करोड़ों वृक्ष रोपित हो गये इन तीस सालों में, पूरा देश हरियाली से भर गया होता! हरियाली कहीं दिखायी नहीं पड़ती! सब वैसे ही का वैसा है। कहां जाते हैं ये वृक्ष, पता नहीं। ये वृक्ष भी क्या करें, इनको रोपित ही नहीं होने दिया जाता। आज यहां, कल वहां, परसों वहां--ये तो यात्रा ही करते रहते हैं बेचारे। जैसे नेता को रोज रोज उदघाटन करना पड़ता है, वृक्षों को रोज रोज रोपित होना पड़ता है।

तो एक दिन प्रतीकात्मक रूप से दरिद्रनारायण की सेवा कर ली। किसी कोढ़ी के पैर दबा दिये। फिर दरिद्र को इज्जत देना शुरू कर दी हमने। कि जैसे दरिद्र होने में बड़ी खूबी है! जैसे दरिद्र होने में बड़ी गुणवत्ता है, बड़ी महत्ता है।

पुराना तर्क था लक्ष्मी नारायण का। नया तर्क बना दरिद्र नारायण का। और मजा यह कि महात्मा गांधी सेठ जमनालाल बजाज के धन से चलते, उठते, बैठते थे। जमनालाल बजाज ने मंदिर बनवाया वर्धा मेंः लक्ष्मी नारायण का मंदिर--उस मंदिर का नाम है! मैंने जमनालाल की पत्नी जानकीदेवी बजाज को पूछा, वे मुझे मिलने आयी थीं वर्धा में, मैंने कहा कि गांधीजी के भक्त थे जमनालाल, कम से कम इस मंदिर का नाम दरिद्रनारायण का तो रखना था; लक्ष्मीनारायण रखा। उन्होंने कहा, यह कैसे हो सकता है, हम परम वैष्णव! नाम मंदिर का तो लक्ष्मीनारायण ही होगा।

नाम तो मंदिर का लक्ष्मीनारायण हुआ--वह पुराना तर्क चलता रहा। वह पुरानी सांत्वना थी कि जिसके पास धन है, वह प्रभु का प्यारा है, सबूत है, नहीं तो धन क्यों होगा उसके पास। गांधी ने तर्क को बदला लेकिन सांत्वना वही है। अब जो दरिद्र है, वह प्रभु का प्यारा है। दरिद्र इसीलिए तो बनाया उसको। जरूर दरिद्र उसको ज्यादा प्यारे हैं, तभी तो दरिद्र ज्यादा लोग बनाता है। और अमीर तो कभी कभी कोई बनाता है। इक्के-दुक्के, यहां

वहां। जिनको ज्यादा बनाता है, साफ है, जाहिर है बात कि उसको वे लोग ज्यादा पसंद हैं जिनको ज्यादा बनाता है। नहीं तो क्यों ज्यादा बनाए?

ये सारे तर्काभास आदमी खोजता है। मगर इनके भीतर छिपी हुई जड़ को नहीं देखता। ये हमारी मांगने की वृत्ति का परिणाम है। ये हमारे आलस्य का फल हैं। सारी दुनिया धनी होती चली गयी, हम गरीब होते चले गये।

मेरा जोर प्रार्थना पर नहीं है। मेरा जोर ध्यान पर है। फर्क समझ लेना!

प्रार्थना कहती हैः ऐसा कर दो, प्रभु! ध्यान अपने भीतर खोजता है कि कैसा है। और ध्यानी पाता है कि अंधकार तो है ही नहीं, प्रार्थना क्या करनी है! जाओ भीतर और देखो, आलोक ही आलोक है। क्या प्रार्थना में समय गंवा रहे हो! तमसो मा ज्योतिर्गमय! किस तमस से और किस ज्योति की तरफ जाने की बात कर रहे हो! नहीं भीतर गये, मालूम होता। नहीं तो तुमसे अंधकार पाया ही नहीं होता। ज्योति ही ज्योति है।

फिर अगर ज्योति के बाद ही तुम्हारे भीतर से धन्यवाद का स्वर निकले, अगर तुम्हारी प्रार्थना मांग न हो, धन्यवाद हो, तो फिर धन्यवाद का रूप दूसरा होता। वह रूप यह होता--अगर धन्यवाद ही देना होता और प्रार्थना की ही भाषा का उपयोग करना होता, तो वह रूप ऐसा होता कि हे प्रभु, मुझे प्रकाश से और प्रकाश की तरफ ले चल! यूं फूल तैराया जा सकता है। अंधकार की बात ही क्यों छेड़नी! असत्य से सत्य की तरफ ले चल, ये बात क्यों छेड़नी, सत्य से और बड़े सत्य की तरफ ले चल! मृत्यु से अमृत की तरफ ले चल, ये बात क्यूं छेड़नी, मृत्यु है ही नहीं, मृत्यु झूठ है। जिसको लगता है कि मृत्यु है, उसने अभी कुछ जाना ही नहीं। जिसने भीतर झांका, उसने पाया अमृत ही अमृत है। न तुम कभी जन्मे, न तुम कभी मरे। ध्यान में यही तो उदघाटन होता है। असत्य है ही नहीं, सत्य ही सत्य है।

फिर भी अगर प्रार्थना में ही बांधना हो इस अनुभव को, अगर तुम्हें प्रार्थना का स्वर ही प्यारा हो, तो फिर यूं प्रार्थना करोः कि प्रकाश से और प्रकाश की तरफ ले चल। सत्य से और सत्य की तरफ ले चल। अमृत से और अमृत की तरफ ले चल। पूर्ण से और पूर्णतर की तरफ, पूर्णतम से पूर्णतम की तरफ।

लेकिन यह जोड़ तभी संभव है जब ध्यान घटे।

उपनिषद प्रार्थना के शास्त्र हैं। उनमें अदभुत काव्य है। लेकिन मेरी रुझान प्रार्थना की तरफ नहीं है। क्योंकि प्रार्थना में एक बुनियादी बात मानकर चलनी पड़ती है कि परमात्मा है। और मैं नहीं चाहता कि तुम कुछ भी मानकर चलो। क्योंकि मानकर चलने का अर्थ हुआ कि तुमने बिना जाने कोई बात मान ली। तुम अंधविश्वासी हो गये। और अंधविश्वासी कैसे सत्य को जान सकेगा? उसने तो निष्कर्ष ले ही लिया। निष्कर्ष किस आधार पर लिया? किस बुनियाद पर लिया?

दूसरों से सुनकर ले लिया। औरों ने कहा, इसलिए ले लिया। अब और ठीक कहते थे या गलत, यह क्या पता। और और तो हजार तरह की बातें कहते हैं। हिंदू एक बात कहते हैं, मुसलमान दूसरी बात कहते हैं, जैन तीसरी बात कहते हैं, बौद्ध चौथी बात कहते हैं, किसकी मानो, किसकी न मानो। तो संयोगवशात लोग निष्कर्ष लेते हैं।

संयोग का अर्थ हुआः जिस घर में जन्म हो गया। अगर तुम भारत में पैदा हुए, तो धार्मिक हो, मंदिर जाते हो, घंटी बजाते हो, आरती उतारते हो। अगर रूस में होते, तो अधार्मिक होते, नास्तिक होते। हिंदू बच्चे को मुसलमान घर में पालो, कभी मंदिर नहीं जाएगा बड़े होकर। कोई खून में थोड़े ही हिंदू धर्म होता है; न मुसलमान धर्म होता है। हड्डीयों में थोड़े ही कोई मुसलमान और हिंदू होता है। कोई डाक्टर परीक्षा करके तो

बता दे हड्डियों की कि यह आदमी ईसाई था, कि जैन था, कि पारसी था! ये तो केवल बाहर से डाले गये संस्कार। जो सिखा दिया, वही बच्चा सीख लेता है। जो सिखा दया, उसीको मानकर जीने लगता है।

एक आदमी पागल हो गया, दर्जी था। मगर भगवान चतुर्भुज का भक्त था। कोई अजनबी आदमी उससे कमीज सिलवाने गया--गांव के लोग तो उसके पास जाना बंद ही कर दिये थे। क्योंकि सिलवाओ कमीज, बना दे पजामा। बटनें आगे की न लगाकर पीछे लगा दे। बनवाओ पजामा, गले में बांधन की सुथनी बना दे। उलटा सीधा कर दे--पागल आदमी!

यह अजनबी था, आदमी बाहर का था, यह चला गया बनवाने। जब इसकी कमीज बनकर तैयार हुई और लेने गया तो देखकर बड़ा हैरान हुआ कि उसमें चार बांहें थीं। उससे पूछा कि भैया, ये चार बांहें क्यों बनायीं? उसने कहा, मुझे तो... मैं चतुर्भुज भगवान का भक्त हूं, मुझे तो सभी जगह चतुर्भुज के ही दर्शन होते हैं। तुम्हारी चार बांहें नहीं हैं? मुझे तो चार ही दिखायी पड़ रही हैं। तो तुम पहले ही कह देते कि तुम्हारी कितनी बाहें हैं उतनी बना देता। तुम बोले क्यों नहीं? तो मुझे जैसा दिखायी पड़ता है वैसा मैंने बना दिया।

अब कोई चतुर्भुज भगवान को माननेवाला है। कोई अर्धनारीश्वर को माननेवाला है कि आधे भगवान नारी, आधे नर। कोई नरसिंह भगवान को माननेवाला कि आधे पुरुष और आधे सिंह। फिर क्या क्या मान्यताएं हैं! क्या क्या धारणाएं हैं! जो जिसको समझा दिया। दूसरे हंसेंगे। क्योंकि दूसरों की धारणाएं और हैं। तुम उनकी धारणाओं पर हंसोगे। ईसाई हिंदुओं पर हंसते हैं, हिंदू ईसाइयों पर हंसते हैं, मुसलमान जैनियों पर हंसते हैं, जैनी बौद्धों पर हंसते हैं--सारी दुनिया एक दूसरे पर हंसती हैं। समझदार अपने पर हंसता है। वह यह देखता है कि मेरी धारणाएं भी तो इतनी ही बचकानी हैं।

प्रार्थना में एक बुनियादी भूल है कि तुम्हें परमात्मा मानकर चलना होगा। नहीं तो प्रार्थना किससे करोगे? कैसे करोगे, प्रार्थना शुरू कैसे होगी? प्रार्थना की आधारशिला अंधविश्वास है। इसलिए मैं प्रार्थना को पक्षपाती नहीं हूं।

ध्यान की एक खूबी है, उसकी एक वैज्ञानिकता है। ध्यान कहता है, कुछ भी मानने की आवश्यकता नहीं है। नास्तिक भी ध्यान कर सकता है, यह उसकी गरिमा है। नास्तिक को भी ध्यान यह नहीं कहता कि तुम आस्तिक हो जाओ, फिर ध्यान करना।

मेरे पास नास्तिक आते हैं, वे कहते हैं, हम ध्यान कर सकते हैं? हम नास्तिक हैं? मैं कहता हूं, ध्यान पूछता ही नहीं कि तुम आस्तिक हो कि नास्तिक हो। ध्यान तो एक वैज्ञानिक विधि है, शांत होने की। अब नास्तिक को शांत होना है तो नास्तिक शांत हो सकता है। मौन होने की कला है ध्यान। अब नास्तिक को मौन होना है तो नास्तिक मौन हो सकता है।

आस्तिक और नास्तिक में फर्क क्या है? इसके भीतर आस्तिक बकवास चल रही है, उसके भीतर नास्तिक बकवास चल रही है। ध्यान कहता है, कोई बकवास नहीं चलनी चाहिए। ध्यान कहता है, भीतर कोई विचार नहीं चलना चाहिए न आस्तिक, न नास्तिक। हिंदू करे, मुसलमान करे, ईसाई करे, पारसी करे, कोई भी ध्यान करे।

ध्यान की एक अदभुत महिमा है। और वह यह कि न संप्रदायों की कोई जरूरत है, न विश्वासों की कोई जरूरत है, न मान्यताओं की कोई जरूरत है, न संस्कारों की कोई जरूरत है? एक वैज्ञानिक प्रयोग है, जो कोई भी पूर्वापेक्षा नहीं करता कि पहले तुम्हें यह मानना पड़ेगा। जो कहता है, तुम जैसे हो, बस ऐसे ही शांत हो

सकते हो। और शांत होने के बाद जानने का उदघाटन होता है, पर्दे उठते हैं। जो शांत हुआ उसने जाना, जो मौन हुआ उसने पहचाना।

जरूर परमात्मा जाना जाता है, लेकिन मानो क्यों? जो जाना जा सकता है, उसे कभी मानना ही मत। क्योंकि मान लिया तो फिर जान न सकोगे। माननेवाला अभागा है। सौभाग्यशाली तो जाननेवाला है। मुक्ति तो जानने से होगी।

इसलिए मैं तो कहूंगाः जानो! और जानोगे, जागोगे अपने भीतर तो पाओगे अंधकार नहीं है, असत्य नहीं है, मृत्यु नहीं है। यह प्रार्थना करने की गुंजाइश ही गयी। सत्य ही है, आलोक ही है, अमृत ही है। फिर तुम्हारी मौज में आए और गाना हो गीत, गुनगुनाना हो तो मैं मना नहीं करता। मैं कौन हूं किसीको मना करूं! तुम्हें नाचना हो जानने के बाद, गीत गाना हो तो गाना, मगर तब तुम्हारे गीत का यह भाव नहीं हो सकता कि मुझे अंधकार से आलोक की तरफ ले चल। तब यही भाव हो सकता है कि आलोक तो है ही, हे मेरे प्रभु, मुझे और आलोक की तरफ ले चल! कौन जाने, इतना आलोक है तो और भी आलोक हो! तब तुम्हारी प्रार्थना में भी एक सत्य होगा, एक अंधी धारणा नहीं। एक अनुभव होगा, एक प्रतीति होगी। इतना सा फूल अगर आज्ञा दो तो तुम्हारे दूध से भरे पात्र में तैराना चाहता हूं।

तुम्हारा पात्र दूध से भरा है, यानी प्रार्थना से। मैं ध्यान का फूल उसमें तैरा देना चाहता हूं। यह फूल तैर जाए तो तुम्हारे जीवन में चार चांद जुड़ सकते हैं।

लेकिन मेरी बात को समझने की कोशिश करना, नरेन्द्र बोधिसत्व। अक्सर खतरा हो जाता है, मेरी बात को समझने में अक्सर चूक हो जाती है। क्योंकि जो मैं तुमसे कहता हूं, वह तो मेरा अनुभव है, तुम्हारा नहीं। तुम सुनते हो उसे अपनी जगह से, अपनी धारणाओं में डूबे हुए। तुम्हारी धारणाओं को चोट लग सकती है। मेरी मजबूरी है। मै असहाय हूं। चोट करना नहीं चाहता, तुम्हें दुख देना नहीं चाहता, लेकिन दुख हो सकता हैं। दुख इसलिए हो सकता है कि तुम एक गलत जीवन-दृष्टी को पकड़कर अगर चल रहे हो, तो तिलमिलाओगे; तो तुम्हें बेचैनी हो जाएगी; तुम कुछ का कुछ समझ लोगे।

मैं उपनिषद के विरोध में नही बोल रहा हूं। उपनिषद से मुझे प्रेम हैं। लेकिन उपनिषद के भी पार और जगत है। और भी आसमान हैं, और भी उड़ाने हैं। और मैं चाहता हूं कि जब उड़ने ही निकले हो, तो किसी सीमा को मत बांधना। न उपनिषद की, न वेद की, न कुरान की, न बाइबिल की। मानना ही मत सीमाओं को। जब उड़ने ही चले हो, तो पंखों को पूरी स्वतंत्रता देना।

दिल्ली की घटना है। एक आदमी रिक्शेवाले से बोला,"क्यों भाई, लाल किले का क्या लोगे?

रिक्शेवाला बोला, लाल किला क्या मेरे बाप का है?

क्या कहो और लोग क्या समझ लें!

दो अफीमची बैठे थे। पीनक में थे। ... और यहां कौन पीनक में नहीं है। तरह तरह की अफीमें हैं। कार्ल मार्क्स ने तो कहा ही है कि तुम्हारा तथाकथित धर्म अफीम का नशा है। और मैं उससे निन्यानबे प्रतिशत राजी हूं। निन्यानबे प्रतिशत ही लेकिन। जहां तक भीड़ के धर्म का संबंध है, वह तो अफीम का नशा है ही। वह तुम्हें सुलाए रखता है। लेकिन कार्ल मार्क्स की बात सौ प्रतिशत सत्य नहीं है। क्योंकि उसे बुद्धों के धर्म का कोई पता नहीं है। नहीं तो वह बात बेशर्त नहीं कह सकता था। उसने बेशर्त घोषणा कर दी। उसने तो यूं कह दिया कि सभी धर्म अफीम के नशे हैं। धर्म मात्र अफीम का नशा है। वैसा मैं नहीं कहूंगा। धर्म है तो अफीम का नशा, लेकिन तुम्हारा धर्म, मेरा नहीं।

वे दो अफीमची बैठे, पूरे चांद की रात, एक अफीमची ने कहा, अहह, क्या प्यारा चांद है! दिल होता है खरीद ही लूं। आज अगर कोई लाख रुपये भी मांगे तो देने को राजी हूं। है कोई बेचनहार! --दी उसने जोर से आवाज।

दूसरा अफीमची खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा, अरे, बकवास बंद कर, अपनी हैसियत का ख्याल कर। तेरी क्या तेरे बाप की भी हैसियत नहीं कि चांद खरीद ले!

उसने कहा, क्या कहा? जरा संभलकर बोलना। आज सब दांव पर लगा दूंगा। "अरे, दूसरे ने कहा, तू कितना भी दांव पर लगा दे, हमें बेचना ही नहीं! तू सारी दुनिया दांव पर लगा दे मगर जब बेचना ही नहीं हमें तो कोई खरीदेगा कैसे?

तुम्हारी मान्यताओं का लोक तुम्हारी कल्पनाओं का लोक है। पीनक की बातें हैं। तुम्हें अपना पता नहीं और तुम ईश्वर की बातें करते हो! तुम्हें अपना पता नहीं, अपना ठिकाना नहीं तुम्हें, तुम कौन हो, इसका उत्तर नहीं दे सकते और तुम मोक्ष और निर्वाण और परलोक की बातें करते हो! और तुम्हें शर्म भी नहीं आती, संकोच भी नहीं लगता? तो फिर मेरी बातें सुन कर तुम्हें चोट लग सकती है।

कहां पांव धरें हम,
किसे याद करें हम,
यह अजानी डगर है,
अजनबी-सा शहर है
सभी ओर अंधेरे के
उभरते हुए चेहरे,
इधर सांप की फुफकार
उधर भूत के पहरे.
यहां रात के तहखानों में
मुर्दों का सफर है.
अजनबी-सा शहर है.
यहां शक्लें सभी बर्फ की
परतों में जमी-सी,
कमरों के पिरामिड में
बंद देह ममी-सी.
आंखों में बंद नींद की
टिकिया है, जहर है.
अजनबी-सा शहर है.
सभी ओर घूमती हैं
कबंधों की जमातें,
जिंदों को घेर करके
प्रेत जश्न मनाते.
इधर जिंदगी की चीख

उधर मौत का घर है.
अजनबी-सा शहर है.
यहां सर्द कैदखाने-सी
हर बंद गली है,
सड़के लहूलुहान हैं
दीवारें जली हैं.
हर बात यहां एक
हादसे की खबर है.
अजनबी-सा शहर है.

अपना पता नहीं, औरों का पता नहीं, सब अजनबी सा है, सब अपरिचित है और तुम चले जाते हो, चलते चले जाते हो--भीड़ में, धक्कम-धुक्की में, एक दूसरे की नकल करते हुए। तुम्हारे पिता ने तुमसे कह दिया ईश्वर है, उनके पिता उनसे कह गये कि ईश्वर है और उनके पिता उनसे कह गये। इनमें से शायद किसीको भी पता नहीं। शायद हजारों साल पीछे किसीको पता रहा हो तो रहा हो। वह भी कुछ पक्का नहीं हैं। बात बिल्कुल सुनी हो सकती है। यहां तो चिंदी के सांप बन जाते हैं। यहां तो खबरों को पंख लग जाते हैं। यहां तो बात फैलती ही चली जाती है, बड़ी होती चली जाती है। और फिर लोग उस पर जी जान से लड़ने को तैयार हो जाते हैं।

नकल से मत जीना। प्रार्थना में वही खतरा है। उसमें नकल है। ध्यान में खतरा नहीं है। उसमें नकल नहीं हैं। ध्यान में तुम्हें अपने भीतर जाना हैं, प्रार्थना में किसीके पीछे जाना है। और नकल से कभी काम होता नहीं। सिखाये पूत दरवाजे चढ़ते नहीं, दीवारें लांघते नहीं।

मैंने सुना है, दो आदमी एक जेलखाने में बंद थे। एक था मारवाड़ी चंदूलाल, आ गया था गिरफ्त में! की होगी तस्करी वगैरह! और दूसरे थे सरदार विचित्तर सिंह। दोनों सोचते विचारते, कैसे निकल भागें? एक रात मौका हाथ लग गया। होली की रात थी, पहरेदार डटकर मांग छान गया था, सो उन्हों ने कहा आज मौका है, आज निकल भागें, आज पहरेदार नशे में है।

पहले चंदूलाल निकले। जब चंदूलाल सरक कर दरवाजे के पास से निकलने लगे, तो यूं तो पहरेदार भंग के नशे में था मगर जिंदगी भर की पहरेदारी की आदत, सो नशे में भी बोलाः कौन है? चंदूलाल तो पक्के मारवाड़ी, होशियार आदमी, बोलेः म्याऊं, म्याऊं। पहरेदार ने कहा, भाड़ में जा! अपनी मस्ती में बैठा था, कहां कि बिल्ली आ गयी और!

सरदार विचित्तर सिंह ने सुना, उन्होंने कहा, वाह, गजब का चंदूलाल है! निकल गया पट्ठा!

सरदार विचित्तर सिंह भी निकले। फिर उस पहरेदार ने पूछाः कौन है? सरदार विचित्तर सिंह ने कहाः अरे, अभी वह मारवाड़ी बिल्ली गयी, मैं पंजाबी बिल्ला हूं। नाम सरदार विचित्तर सिंह।

पकड़े गये। फौरन पकड़े गये।

जब मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम यह क्या बकवास कर रहे थे, उन्होंने कहा, वह चंदूलाल भाग गया और उस हरामजादे ने भी सिर्फ म्याऊं-म्याऊं कहा था। और मैने तो पूरा ही पूरा उत्तर दिया था कि मैं पंजाबी बिल्ला हूं, सरदार विचित्तर सिंह मेरा नाम है और फिर भी पकड़ा गया। मेरी तो राज समझ में नहीं आता!

नकल में अक्सर यह भूल होनेवाली है। कुछ का कुछ हो जाएगा।

तोतों की तरह लोग दोहरा रहे हैं। यह उपनिषद की प्रार्थना कितनी दोहराई जाती है। मगर जो दोहराते हैं, उनका अंधकार मिटते दिखता है? कहीं दिए जलते दिखते हैं? कहीं दीपावली होती दिखती है उनके जीवन में? वही अंधकार। वही का वही अंधकार।

एक हिंदू संन्यासी, स्वामी दिव्यानंद, मैं जब छोटा बच्चा था, तो मेरे घर मेहमान हुए थे। मेरे पिता से उनकी काफी बनती थी, तो कई बार आकर रुकते थे। वे इस प्रार्थना को रोज करते थे। सो जब भी आते--साल में एक-दो बार जरूर आते और महीने-पंद्रह दिन रुकते--रोज नियम से वे इस प्रार्थना को करते। और मेरे जिम्मे यह काम था कि उनको सुबह से घुमाने ले जाऊं। सो वे रास्ते भर इस प्रार्थना को करते रहते थे। एक साल मैंने सुना, दूसरी साल मैंने सुना, तीसरी साल मैंने सुना, जब चौथी साल वे फिर आए और फिर यही प्रार्थना करने लगे तो मैंने कहा कि मामला कब तक चलेगा? अभी तक आलोक हुआ नहीं? उसने सुनी नहीं? अभी भी वही बकवास जारी है? अब तीन साल से तो मैं सुन रहा हूं और कम से कम तीस साल आप पहले से कर रहे होंगे। कब तक यह करते रहोगे प्रार्थना कि ले चल अंधकार से प्रकाश की ओर? न वह सुनता है, न आपकी अकल में यह आता है कि तीस साल निकल गये अभी तक सुना नहीं, अब क्या खाक सुनेगा! यां तो बज्र बहरा है, जैसा कि कबीर ने कहा कि क्या बहरा हुआ खुदाय? अरे, यूं चिल्ला रहा है, इतने जोर से चिल्ला रहा है! चिल्लाता है न मुल्ला, अजान देता है सुबह से। पकड़ लिया होगा किसी मुल्ले को और कहा होगा कि क्यूं चिल्लाता है इतने जोर से, क्या तेरा खुदा बहरा है? और इतने जोर से भी चिल्लाएगा तो भी क्या खुदा सुन लेगा?

मैंने कहा, तीस साल हो गये, कब तुम्हें समझ आएगी? अपना दीया खुद क्यों नहीं जलाते? तुम्हारी हालत तो यूं है कि लालटेन लिए बैठे हैं और बस प्रार्थना कर रहे हैं, कि हे प्रभु, जला दे। तीन साल हो गये, अब तक नहीं जलाई, जाहीर है कि उसे तुम्हारी लालटेन जलाने में कोई रस नहीं है। उन्होंने कहा, देखो जी, तुम मेरी प्रार्थना में गड़बड नहीं कर सकते। मैंने कहा, मैं, तीस साल हो गया सुनते, जब मैं घबड़ा गया तो परमात्मा की तो सोचो! तीस साल से तुम्हारी सुन रहा है और तीन हजार साल से भारतीयों की सुन रहा है, उसकी खोपड़ी भगभना गयी होगी। और तुम क्या करोगे? जब वह तुम्हारी लालटेन जलाएगा! तुम भी कुछ करोगे कि नहीं? फिर मैंने कहा, लालटेन कहां है, यहा भी तो देखूं!

वे तो मेरे पिता से कहे कि मैं इसको साथ नहीं ले जा सकता, यह मेरी प्रार्थना में दखलंदाजी करता है। मैं तो सुबह सुबह जाता ही इसीलिए हूं कि एकांत में, मौन से, शांति से, सुबह के ब्रह्ममुहूर्त में अपनी प्रार्थना दोहराऊं। ये ऐसे उलटे-सीधे सवाल करने लगा! ये मुझसे कहता है कि आपकी लालटेन कहां है जिसको आप जलवाना चाहते हैं? कि मैं जला दूं, यह मुझसे कह रहा था। अब नहीं जलाता परमात्मा तो छोड़ो, मैं जला देता हूं।

और तुम को अभी भी भरोसा है कि तुम मरोगे, जो तुम अमृत की प्रार्थना कर रहे हो? फिर क्या खाक जाना! फिर जरा सी भी पहचान नहीं, जरा सा भी स्वाद नहीं चखा अपने जीवन का, नहीं तो कहीं कोई जन्मता है या मरता है! न जन्मे हो, न मरोगे। इस देह के पहले भी तुम थे, इस देह के बाद भी तुम रहोगे। तुम शाश्वत हो।

उन्होंने मुझे ले जाना बंद कर दिया, मगर प्रार्थना उन्होंने जारी रखी। वे किसी और को ले जाने लगे। मैंने उससे पूछा कि भई, तुम्हें ले जाने लगे हैं, प्रार्थना कौन सी करते हैं? अगर वही प्रार्थना करते हों तो तुम दखलंदाजी दे देना अगर बचना हो। नहीं तो रोज ले जाना पड़ेगा। तीन साल से मैं परेशान रहा। मैंने दखलंदाजी की कि छुट्टी मिली।

प्रार्थना से नहीं कुछ हो सकता है। प्रार्थना पर खड़ी हुई धर्म की पूरी धारणा ही बचकानी है। मांगने की बात नहीं, जीने की बात है। जीओ तो पा सकोगे। खोजो तो पा सकोगे। यूं आलस्य से न चलेगा।

ये शब्द तो प्यारे हैं। मगर शब्द कितने ही प्यारे हों, शब्दों से क्या हो सकता है? इनमें अनुभव का अर्थ चाहिए। और अनुभव का अर्थ कौन डालेगा? वह तुम ही डाल सकते हो। उपनिषद मुर्दा हैं, जब तक तुम उनमें प्राण न फूंको। तुम प्राण फूंको तो तुम्हारे भीतर का उपनिषद बोलने लगता है। और जब तुम्हारे भीतर की कोयल कुहू-कुहू करती है, और तुम्हारे भीतर का पपीहा पिया-पिया पुकारता है, तब मजा है, तब रस है; रसैवैसः। तब तुम्हें अनुभव होगा कि परमात्मा का क्या स्वरूप है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, मैं माया के जाल से मुक्त होना चाहता हूं। यह संसार तो सपना है, इसे कैसे काटूं, मार्ग बताइये।

मातादीन शुक्ल, एक ओर तो कहते हो कि "माया जाल से मुक्त होना चाहता हूं।

तो ऐसा लगता है जैसे तुम जान गये कि यह सब माया है।

"एक ओर तो कहते हो कि यह संसार तो सपना है।"

तो साफ लगता है कि तुम पहचान गये कि यह संसार सपना है।

"और दूसरी ओर पूछते हो, इससे कैसे मुक्त होऊं इसे कैसे काटूं?"

इन दोनों बातों में तो विरोधाभास है। या तो तुमने जाना नहीं कि यह माया है, यह सपना है, और जान लिया तो काटने को क्या बचा, बात खतम हो गयी! सुबह जागकर किसीने कभी कहा है कि मैंने रात जो सपने देखे, इनको कैसे काटूं? कहां है वह कैंची जिससे रात से सपने काट डालूं? कि कहां है वह आग कि जिसमें रात के सपने डाल दूं? किसीने सुबह जागकर यह कहा है? जब कोई जागता है तो जानता है कि सपना सपना था। सपने में तो कोई जानता ही नहीं कि सपना सपना है। अगर सपने में तुम जान लो कि सपना सपना है, सपना तत्क्षण टूट जाता है। यह सपने का सीधा सा विज्ञान हैं।

जार्ज गुर्जिएफ अपने शिष्यों को समझाता था कि तुम अगर एक बात जान लो कि सपने में तुम पहचान सको कि यह सपना है, तो बस सपना टूट गया। और उसी दिन बड़ा सपना भी टूट जाएगा। मगर यह बड़ा कठिन काम, सपने में जानना कि यह सपना है। इसके के लिए वर्षों ध्यान की एक विशिष्ट प्रक्रिया गुर्जिएफ अपने शिष्यों को देता था कि इसको साधो। वर्षों की प्रक्रिया के बाद कहीं यह घटना घटती थी और वह भी कभी किसीके जीवन में--सभी के जीवन में नहीं--कि कोई सपने को सपने में जान पाता। और तब गुर्जिएफ का सत्य प्रगट हो जाता था। जैसे ही तुमने जाना कि यह सपना है कि सपना तिरोहित हुआ। क्योंकि तुम जाग गये।

लेकिन तुम, मातादीन शुक्ल, पिटी पिटायी बातें कर रहे हो। यह बकवास तुमसे सुन ली है। यह पंडित-पुरोहितों से तुमने तोतों की तरह ये सुंदर सुंदर शब्द कंठस्थ कर लिये है। यहां तो हर कोई दोहरा रहा हैः यह सब माया-मोह है! जो देखो वही दोहरा रहा हैः सब माया-मोह है! यहां तो ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है जिसको ब्रह्मज्ञान न हो। मुझे तो नहीं मिला अभी तक आदमी जिसको ब्रह्मज्ञान न हो! यहां तो सभी ब्रह्मज्ञानी हैं! यह देश तो अदभुत देश है। तभी तो यहां देवता भी पैदा होने को तरसते हैं। यहां जो देखो वही ब्रह्मज्ञानी है। हर एक आदमी ब्रह्म की चर्चा कर रहा है। और यूं कर रहा है जैसे उसे पता हो। और जिंदगी देखो तो भ्रमों से भरी हई है, ब्रह्म का कहीं नाम निशान नहीं।

बातचीत अच्छी सीख ली है। जैसे तोते राम राम, राम राम, राम राम, राम राम जप रहे हैं।

शंकराचार्य जब मंडन मिश्र से विवाद करने मंडला गये तो उन्होंने गांव के बाहर कुएं पर पानी भरनेवाली युवतियों से पूछा कि देवियो, मैं मंडन मिश्र से विवाद करने आया हूं, उनके घर का मुझे पता दे सकती हो? मंडन मिश्र के नाम पर ही मंडला का नाम मंडला पड़ा। मंडन मिश्र उस समय के अदभुत विद्वान पंडित थे। वे स्त्रियां हंसने लगीं। और उन्होंने कहा, आप चिंता न करें, आप गांव में प्रवेश करें, आपको पता चल ही जाएगा कि कौन सा मकान मंडन मिश्र का हैं। असंभव है बचकर निकलना उनके मकान से। उनके मकान के पास तोते भी वेद मंत्र पढ़ते हैं। दूर से पता चल जाता है कि मंडन मिश्र का मकान आ गया।

और शंकराचार्य चकित हुए थे। सच में ही वृक्षों पर बैठे तोते वेदों का उच्चार कर रहे थे। नीचे शिष्यगण बैठे थे वृक्षों के, वे वेद का उच्चार कर रहे थे। तोते तो नकलची होते हैं, ये बकवास सुनते सुनते शिष्यों की वे भी बकने लगे होंगे। तोतों को क्या? वेश्याओं के घर में रहते हैं तो वैश्याओं की भाषा बोलने लगते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक तोता खरीद लायी। तोता बेचनेवाले ने बहुत इनकार किया कि बाई, न ले जा! मान, न ले जा! नहीं मानी, क्योंकि तोता बड़ा सुंदर था और बड़ी लफ्फाजी बातें कर रहा था। नहीं मानी तो उसने कहा, तेरी मर्जी, लेकिन मैं एक बात जता दूं, फिर कल लौटकर मुझे शिकायत मत करना। यह तोता जरा अच्छी जगह नहीं रहा। जरा गलत संग-साथ में रहा है। तो कभी कभी उलटी-सीधी बातें कह देता है। तो फिर मुझसे मत कहना। ले जाती हो ले जा।

उसने कहा कि लेकिन यह इतनी अच्छी बातें कह रहा है कि नहीं। उसने कहा कि, अच्छी बातें भी कहता है; बड़े गजब की शायरी करता है; कभी कभी भजन भी गाता है-अब वेश्या तो क्या नहीं करती! कभी भजन भी गा देती है। क्योंकि कभी कभी ब्रह्मज्ञानी पहुंच जाते हैं। तो भजन भी गाना पड़ता है। कभी कभी लुच्चे लफंगे भी आ जाते हैं। तो उनके लिए कव्वाली भी सुनानी पड़ती है। शेरो-शायरी भी करनी पड़ती है। अब वेश्या को तो तरह तरह का माल रखना पड़ता हैं। जैसा खरीददार, और जैसे दाम दे, उस हिसाब का माल बेचा जाता है। और वेश्या का ही घर है, वहां शराबी भी पहुंच जाते हैं, गाली-गलौज भी होती है, मार-पीट भी होती है, दंगा-फसाद भी होता है--सभी कुछ होता हैं। तो यह सभी कुछ जानता है। साफ कर देता हूं, मैं वापस नहीं लूंगा। मगर उसे उसकी बातें ऐसी जंच रही थीं, क्योंकि वह ऐसी शिष्टाचार की बातें कर रहा था-- बिल्कुल लखनवी मालूम हो रहा था। वह वेश्या लखनवी रही होगी। बड़ी लच्छेदार उसकी बातें थीं। बड़ी लज्जत की; बड़ा जायका था उनमें।

ले गयी नसरुद्दीन की पत्नी।

घर देखते ही से तोता बोला, आह! प्यारा घर है! नया घर! पत्नी तो बड़ी प्रसन्न हुई कि देखो देखते ही से घर का क्या मंगलवचन बोला! फिर उसकी लड़कियां कालेज से पढ़कर लौटीं, तो उसने कहा, अरे, सुंदर सुंदर बेटियां, सुंदर सुंदर लड़कियां! बड़ा प्यारा घर है, बडा प्यारा परिवार है! लडकियां भी बड़ी खुश हुईं।

और आखिर में सांझ को मुल्ला नसरुद्दीन अपने दफ्तर से वापस लौटा। उसने देखकर ही बोला, कि अरे हरामजादे, तू यहां भी आ गया! नयी मालकिन, नयी छोकरियां, नया मकान, मगर ग्राहक वही! हेलो, नसरुद्दीन!

तब नसरुद्दीन की पत्नी को पता चला। नहीं तो अब तक वह यही समझती थी कि नसरुद्दीन तो बड़े ही भोले भोले आदमी हैं, सुबह ही से कुरान का पाठ करते हैं। और बड़ी माला वगैरह फेरते हैं। और ज्ञान चर्चा छेड़ते हैं।

मातादीन शुक्ल, तुम कह रहे हो, "मैं माया के जाल से मुक्त होना चाहता हूं।"

अगर जान गये कि माया का जाल है, तो क्या मुक्त होना; किससे मुक्त होना? माया का अर्थ होता है, जो नहीं है, जो झूठ है। तुमने कभी किसीसे जाकर कहा कि माफी मांगो उस गाली के लिए जो तुमने दी नहीं? तो वह भी क्या कहेगा कि क्या बात कर रहे आप! क्या गजब की बात कर रहे हो! क्या पहुंची हुई बात कर रहे हो! क्या सिद्धों की भाषा बोल रहे हो! जो गाली मैंने दी ही नहीं, उसके लिए माफी मांगू? तो फिर दी हुई गालियों के लिए क्या करूंगा? उनके लिए तो कुछ बचेगा ही नहीं। माया का अर्थ ही क्या होता हैः जो नहीं है। उससे मुक्त होने का सवाल कैसा!

इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि तुम संसार को छोड़कर जाओ, क्योंकि संसार माया है। अगर माया है तो छोड़कर जाओ क्यूं? छोड़कर जाओगे क्या? और जो माया को छोड़कर गये हैं और सोच रहे हैं कि तपस्वी हैं, वे भी गजब की बातें कर रहे हैं। जो थी ही नहीं चीज, उसको छोड़कर आ गये। और अकड़ रहे हैं। मूछों पर ताव दे रहे हैं, कि देखो, क्या त्याग किया! लात मार दी माया को!

माया जो थी ही नहीं, उसको लात मारकर आ गये। दुश्मन जो था ही नहीं, उसको हरा आए, चारों खाने चित कर दिया। और अब लंगोट फहरा रहे हैं। दिग्विजय करके आ गये हैं! छोड़ना क्या है जब संसार माया है? माया है तो बात खतम हो गयी। और अगर माया नहीं, तो फिर क्यों छोड़ना? मेरा हिसाब साफ है। अगर माया है, तो क्या खाक छोड़ना! और अगर माया नहीं है, तो क्यों छोड़ना? दोनों हालत में छोड़ना नहीं। जम कर रहो! जमकर जीओ! जी भर कर जिओ! भगोड़ेपन की बातें नहीं।

कह रहे हो, ... "यह संसार तो सपना है।"

बातें तो बडी ऊंची कर रहे हो। ऊंची बातों में तो भारतीयों का कोई मुकाबला ही नहीं। और फिर मातादीन शुक्ल, ब्राह्मण हो। फिर तो कहना ही क्या! फिर तो बातों के धनी हो--मगर इन्हीं बातों के जाल में उलझे रहोगे और जिंदगी खराब हो जाएगी।

न तो कुछ छोड़ना है, न कुछ पकड़ना है। यहां कुछ पकड़ने को है, न कुछ छोड़ने को है। जागो! पकड़ने-छोड़ने की भाषा से भागना शुरू होता है।

दो तरह के भागने वाले लोग हैं। एक धन की तरफ भागते हैं और एक धन की तरफ पीठ करके भागते हैं--मगर दोनों भगोड़े हैं। इनमें कोई फर्क नहीं है। दोनों धन से ही आच्छादित हैं। दोनों ही धन को मानते हैं। दोनों की श्रद्धा धन में है। जो धन की तरफ जा रहा है, उसकी श्रद्धा भी धन में है और जो धन से भाग रहा है, उसकी भी श्रद्धा धन में है। भागना क्या है! धन हो तो उछालो। और न हो तो दिल भरकर नहाओ--नंगा नहाए निचोड़े क्या; निचोड़ने तक का झंझट नहीं। चादर हो तो ओढ़ो और न हो तो बिना ओढ़े घोड़े बेचकर सोओ, क्या फिकर! जैसी अवस्था हो--झोंपड़ा हो तो महल और महल हो तो झोंपड़ा। लेकिन मौज में बाधा न पड़े। मस्ती में बाधा न पड़े। मस्ती बहती रहे। इस मस्त होने को नाम संन्यास है।

लेकिन लोग कहते एक बात हैं, करते दूसरी हैं। करनी ही पड़ेगी। क्योंकि जो कहते हैं, कभी गौर से उन्होंने सोचा भी नहीं कि क्या कहते हैं। हम इतनी भी ईमानदारी खो दिये हैं। हमारी इतनी भी प्रामाणिकता नहीं रह गयी है कि हम जो कहें, कम से कम एक बार सोच तो लें कि जो हम कह रहे हैं, यह क्या कह रहे हैं?

एक नेताजी भाषण देकर घर लौटे तो पत्नी से बोले, आज के सभी श्रोता बेवकूफ व गधे थे। पत्नी ने कहा, तभी तो आप बार बार उन्हें मेरे प्यारे भाइयो के नाम से संबोधित कर रहे थे।

अगर गधे ही थे, तो काहे के लिए मेरे प्यारे भाइयो, उनसे कह रहे थे! मगर इस तरह का ही दोहरा ढंग।

दो अफीमची अदालत में पकड़कर लाए जाते हैं। जज पहले से पूछता हैः तुम कहां रहते हो, जी?

पहला बोला, साहब, मेरा कोई घर नहीं। बेघर हूं। आवारा हूं।

तो जज ने दूसरे से पूछाः और तुम कहां रहते हो, जी?

दूसरा बोला, जी, मैं इसका पड़ोसी हूं।

तुम कभी सोचो तो तुम क्या कह रहे हो! तुम कभी पुनर्विचार तो कर लिया करो प्रश्न पूछो उसके पहले!

एक जेबकट ने किसीकी जेब में रखा सुंदर सोने की निब वाला फाउंटेन पेन जेब काटकर चुरा लिया और बाजार में बेचने के लिए गया। जब वह वापस लौटा तो उसके दूसरे जेबकट मित्र ने पूछा, क्यों भाई, कितने में बिक गया?

पहला बोला, जितने में खरीदा था।

दूसरा बोला, क्या मतलब?

पहला बोला, किसीने मेरी जेब से काटकर उसे चुरा लिया है।

यह कहीं जेबकट भी ज्यादा समझदारी की बात कर रहा है। सीधी बात कर रहा है, कि जितने में खरीदा उतने में गया। जैसा आया वैसा गया। न हमने खरीदा था, न हमने बेचा।

मगर तुम कहते हो,

"मैं माया के जाल से मुक्त होना चाहता हूं। ...

"कोई माया के जाल से मुक्त नहीं होता। हां, ध्यान से पता चल जाता है कि माया है ही नहीं, कोई जाल है ही नहीं, तुम बंधे ही नहीं हो, बंधन भ्रम मात्र है। माना है तो बंधन है। न मानो तो बंधन छूट गया। मानने में ही बंधन है। और तुम बिना जाने अगर भागने की कोशिश करोगे तो बंधन और मजबूत हो जाएगा। क्योंकि तुम्हारा भागना ही उसको बल देगा, ऊर्जा देगा, पोषण देगा। तुम्हारा भागना ही बता रहा है कि तुम्हें घबड़ाहट है। और डरते तुम किससे हो?

मैं छोटा था, मेरे एक शिक्षक थे--हेडमास्टर थे स्कूल में--उनका बड़ा तहलका, बड़ा दबदबा था। उनको देखकर ही लोग थरथर कांपते थे, बच्चे तो बिल्कुल ही होश-हवास खो देते थे। वे थे भी देखने में बड़े भयंकर। नाम तो उनका मुझे भूल ही गया, नाम उनका किसीको भी याद नहीं था। कंटर मास्टर लोग उनको कहते थे। क्योंकि उनकी एक ही आंख थी। उसी तरह वे जाने जाते थे।

एक ही आंख, भारी शरीर, कोई साढ़े छः फीट ऊंचे और बड़े तगड़े कि किसीको एक धौल भी जमा दें, प्रेम में भी जमा दें, तो वह चारों खाने चित हो जाए। उनके संबंध में ऐसी कहानियां प्रचलित थीं कि उन्होंने उन्नीस सौ सोलह में नुमाइश में लखनऊ की गामा पहलवान को हरा दिया था। पता नहीं कहां तक सच थी, मगर उनको देखकर लगता था कि हराया होगा। देखकर ही हार गया होगा। चेहरा उनका बडा कुरूप और भयानक था। पहलवानी उनको करनी ही नहीं पड़ी होगी, देखकर ही उसने कहा होगा, कंटर मास्टर, हम हार गये।

उनसे मास्टर भी डरते थे। वे पढ़ाते-लिखाते तो थे ही नहीं, वे क्लास वगैरह नहीं लेते थे। उनकी कोई रिपोर्ट भी नहीं कर सकता था म्युनिसिपल कमेटी में कि ये पढ़ाते करते नहीं हैं। वे सिर्फ हेडमास्टरी करते थे। हालांकि जरूरत थी उनको भी एक कक्षा लेने की, मगर वे लेते-करते नहीं थे। और सब मास्टर--दूसरे मास्टर उनकी कक्षा पढ़ाते थे। उनका काम था यूं घूमना। इसको धौल लगाना, उसको चांटा लगा देना, बेंत लिये रहना, दिन में सजा देना--उनको संबंध में कहा जाता था कि मौका-बेमौका वे शिक्षकों को भी पीटते थे। लड़कों की तो बिसात क्या!

तो जब मैं चौथी हिंदी में पहुंचा, जिसके कि नियमानुसार वे अध्यापक थे--मगर पढ़ाते-करते नहीं थे, बस, आते थे दिन में एक-दो दफा मारपीट करने। इधर देखा, उधर देखा, इसको पकड़ा, उसको पकड़ा, दो-चार को झपट्टे लगाए, किसीके बाल खींचे--और एक से एक तरकीबें थीं, उनको पुलिस में होना चाहिए था। अंगुलियों में पेंसिलें अटका देते और फिर अंगुलियां दबाते। छोटे छोटे बच्चे, चीखें निकल जाती! बाल पकड़कर उठाते--और मेरे बाल बहुत बड़े थे, तो उन्हें बड़ा ही मजा आता। वे मुझे छोड़ते ही नहीं थे, कोई न कोई बहाने वे मेरे बाल पकड़कर उठाते।

रोज रात को वे मेरे घर के सामने से गुजरते थे। पत्नी-बच्चे तो उनके थे नहीं, तो एक होटल में खाना खाकर वे कोई नौ-साढ़े नौ बजे मेरे घर के सामने से गुजरते थे। इसके आगे उनका घर था। जब मेरी भी बर्दाश्त के बाहर हो गया, तो बाजार में एक दिन मैंने देखा कि एक आदमी सांप बेच रहा है--रबर के सांप। तो मैं एक सांप खरीद लाया। उसमें काला धागा बांधा और रास्ते के दूसरी तरफ एक नाली में उस सांप को डाल आया और धागा बांधकर रास्ते पर फैलाकर इस तरफ--गर्मी के दिन थे; तो गर्मी के दिन में गांव में लोग बाहर ही सोते हैं; तो मैं अपने पलंग पर लेट रहा, धागा अपने हाथ में रखा। जब वे साढ़े नौ बजे के करीब वहां से निकले, तो मैंने धीरे धीरे धागा खींचा। अंधेरे में उन्होंने जब सांप को नाली में से निकलते देखा, तो सब होश-हवास खो गये। यूं हाथ में लकड़ी लिये थे, लकड़ी छूटकर गिर गयी, और जो भागे कि धोती फंस गई, सो चारों खाने चित गिरे। और मैंने चार-छः लड़के और छिपा रखे थे घर में, जल्दी से हम लालटेनें लेकर पहुंच गये, ताकि उनको पता चल जाए कि हमने देख लिया, हालात उनके बुरे हो चुके हैं।

खड़े हो गये, कहने लगे, नहीं नहीं, कुछ नहीं। कोई सांप-वांप नहीं। आप किस सांप की बातें कर रहे हैं? कहने लगे, है ही नहीं कोई सांप। मैंने कहा, आप बात ही किस सांप की कर रहे हैं? हम लोगों को तो कोई दिखायी नहीं पड़ा सांप वगैरह, आपको दिखायी पड़ा क्या? उन्होंने कहा, वही जरा भ्रांति मुझे हुई। मैंने कहा अगर भ्रांति थी आपको तो भागे क्यों? और आपकी लकड़ी उतने दूर पड़ी है। और आपकी धोती खुल गयी! आप अपनी कांच तो लगा लो! एक लड़के ने जल्दी से उनकी कांच लगाई। चश्मा गिर गया था, वह फूट गया। मैंने कहा, जब सांप था ही नहीं, तो आप भागे, लकड़ी छूट गई, चश्मा टूट गया! धोती खुल गई! वह तो हम लोग अभी न आए होते तो आपका हार्ट फेल हो जाता या क्या होता?

मैंने उनसे कहा कि आप इतना ही ख्याल रखना कि अब मेरे बाल पकड़ कर आप न उठाना।

वे भी समझ गये। उस दिन से उन्होंने मेरे बाल नहीं पकड़े। समझ गये कि यह लड़का खतरनाक है। अगर आज यह नकली सांप से इसने डरवा दिया, कल कया उपद्रव खड़ा कर दे--और रोज इसकी गली में से निकलना है रात साढ़े नौ बजे; कोई झंझट करे, क्या करे!

मेरे गांव में सांप जैसा एक जानवर होता हैः सीता की लट। पता नहीं यहां होता कि नहीं! लगता बिल्कुल सांप जैसा है। मगर सांप नहीं होता। मगर किसीको भी भ्रांति दे सकता है सांप की। और जब मुझे पता चल गया कि यह सांप है नहीं, काटता-करता है नहीं, सीता की लट उसको कहते हैं, पता नहीं राम जी डर गये या क्या हुआ? उसको पकड़ने से तत्क्षण पहचान आ जाती है कि क्या सीता की लट और क्या सांप? सांप मुड़ सकता है मुड़कर एकदम से पकड़ लेता है। इसलिए खतरा है। सांप को अगर पूंछ की तरफ से पकड़ो तो खतरा हैं। सांप को पकड़ना हो तो मुंह की तरफ से पकड़ना होता हैं। अगर मुंह सांप का पकड़ लिया तो फिर कोई खतरा नहीं हैं। सांप को पकड़ने वाले उसका मुंह पकड़ते हैं। मुंह पकड़ में आ गया फिर कोई खतरा नहीं हैं, सांप कुछ नहीं कर सकता। लेकिन अगर पूंछ पकड़ी तो मारे गये! क्योंकि वह लिपट जाएगा और काटेगा।

सीता की लट लौट नहीं सकती। बस, उसकी जरा सी पूंछ दबाकर देखने से पता चल जाता है। वह लौट नहीं सकती तो सीता की लट है, नहीं तो बिल्कुल सांप जैसी दिखायी पड़ती है।

तो सीता की लट लेकर हम स्कूल पहुंचने लगे। बस, वह मुझे देख लेते सीता की लट लिए हुए कि उनको याद आ जाती; वह रात का पूरा दृश्य! वह कहतेः छोड़, छोड़! और क्यों मुझे याद दिलवाता है? मैं कहूं, किस चीज की याद? तो वे कुछ आगे बात बढ़ाते भी नहीं, क्योंकि वह आगे बात बढ़ाएं तो औरों को पता चल जाए। हालांकि मैंने सबको बता दिया था। सबको पता था। अध्यापकों को पता था, चपरासी को पता था, एक एक बच्चे को पता था। पूरे गांव में खबर फैला दी थी कि नेमा जी की क्या हालत हो गयी? कंटर जी कैसे गिरे?

सीता की लट उनको याद दिलाने के लिए मैं लिए फिरता था। कहीं भी, बाजार में भी मिल जाएं तो खीसे में से सीता की लट निकालकर उनको बता दूं, बस वह उतना! सारा गांव जानता था, कंटर जी अगर किसीसे डरते हैं, तो इस छोकरे से डरते हैं। पता नहीं क्या मामला है? एकदम कहतेः बस बस, रहने दे, याद मत दिला! अब जो हो गया सो हो गया। बीती ताहि बिसार दे।

क्या तुम बात कर रहे हो कि

"मैं माया के जाल से मुक्त होना चाहता हूं। ... "

हो जाओ मुक्त! जो है ही नहीं, उससे मुक्त हो ही।"

यह संसार सपना हैं, इसे कैसे काटूं?"

असली कांटा लगा हो तो असली कांटे से निकाला जा सकता है। अब सपना काटना चाहोगे, तो कुछ झूठे ही उपाय करने पड़ेंगे फिर। फिर ताबीज बांधो, गंडा बांधो--वे भी सब झूठे उपाय हैं। झूठी बीमारियां हों तो झूठी औषधियां काम लानी पड़ती हैं। और इसलिए दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और इनके तीन हजार संप्रदाय हैं। सच्ची औषधि तो एक है, ध्यान, झूठी औषधियां करोड़ हैं। सत्य तो एक है, असत्य अनंत हो सकते हैं।

मैं तो सिर्फ इतना ही कहूंगा कि ध्यान में डुबकी लो; यह बकवास छोड़ोः माया, सपना; यह फिजूल अच्छे अच्छे शब्द दोहराने से कुछ सार नहीं हैं। सिर्फ निर्विचार होने की साधना करो। साक्षी बनो अपने विचार के। जैसे जैसे साक्षी बनोगे, जैसे जैसे विचार को देखोगे, वैसे वैसे एक अपूर्व अनुभव होगा कि विचार देखने से मर जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं। विचार मरे कि वासना मरी। क्योंकि वासना विचार का एक रूप है। विचार मरे कि स्मृति गयी, क्योंकि स्मृति विचार का ही संग्रह है। विचार गये कि कल्पना गयी, क्योंकि कल्पना भी विचार की एक तरंग है।

विचार के जाते ही विचार के सब रूप चले जाते हैं, सब पत्ते झर जाते हैं, जैसे पतझड़ आ गयी। और जब मन के सब पत्ते झर जाते हैं और मन बिल्कुल निर्वस्त्र, पत्रहीन जैसे पतझड़ में वृक्ष खड़ा हो जाता है ऐसा खड़ा हो जाता है, तब तुम देख पाओगेः न कुछ बांधा है तुम्हें, न कभी तुम बंधे थे, न तुम कभी बंध सकते हो; तुम्हारे भीतर जो विराजमान है, सदा मुक्त है। नित्य मुक्त है। और उसकी प्रतीति--यहीं मोक्ष है, यहीं निर्वाण है।

आग के समंदर में

कागज की नाव

अपना यह गांव।

दीवारें ढोती हैं

धुएं की कथा।

चेहरों पर पुती हुई
जलन की व्यथा।

बस्ती भर नाच रहा,
नंगा आतंक।
यहां जिंदगी जैसे,
बिच्छू का डंक।

जलती दोपहरी में
कोढ़ी के पांव।
अपना यह गांव।

लपटों से घिरा रहा
आखिरी मकान।
आश्वासन देने में,
व्यस्त आसमान।

कभी-कभी सुनते हैं
बादलों का शोर।
अब तक न टूट सका,
अग्निकांड--दौर

अंगारों पर लेटी
बरगद की छांव।
अपना यह गांव।

आग के समंदर में
कागज की नांव
अपना यह गांव।

कागज की नावों में बैठे हो और सोचते हो कैसे पार हो जाएं! विचार क्या है? कागज की नाव है। कागज की नाव भी कुछ है, विचार तो उतना भी नहीं है। सिर्फ तरंग है पानी की, हवा की लहर है। और तुम विचारों में ही जी रहे हो। संसार में कुछ उपद्रव नहीं हैं, विचार में उपद्रव है। संसार से मुक्त नहीं होना है, विचार से मुक्त होना है। लेकिन तुम्हें सदियों से कहा गया हैः संसार से मुक्त ओ जाओ। सो तुम संसार से तो मुक्त होने की कोशिश करते हो, विचार से मुक्त होने की कोशिश नहीं करते।

मैं ऐसे जैन मुनियों को जानता हूं, हिंदू संन्यासियों का जानता हूं, जिन्होंने वर्षों तपश्चर्या की हैं, व्रत-उपवास किये हैं, मगर कहीं पहुंचे नहीं। संसार छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दिये, बच्चे छोड़ दिये, घर-द्वार छोड़ दिया, मगर वह जो खोपड़ी में कचरा था, वह वहीं का वहीं भरा है। उस गऊमाता के गोबर को खूब संभालकर बैठे हैं। खोपड़ी में गोबर भरा है। उसको नहीं छोड़ते। और वही असली उपद्रव है। खोपड़ी को गोबर से खाली करो। यह गऊमाता का ही सही, गोबर गोबर है, इसको बाहर करो। यह खोपड़ी को कोई गोबर गैस प्लांट थोड़े ही बनाना है! इसमें से गैस ही निकल रही है। और फिर चारों तरफ बदबू उड़ेगी।

ढब्बू जी एक जटा जूट धारी स्वामीजी का सत्संग करने गये थे। स्वामीजी ने दान की महिमा बहुत समझायी। स्वामी लोगों का खास काम यही है। दान की महिमा समझाते हैं! और दान भी किसको करो, वह भी बता देते हैं वे। और इस ढंग से बता देते हैं दान की पात्रता कि करीब करीब उनके सिवाय और कोई पात्र बचता नहीं। अगर तुम बौद्ध शास्त्र पढ़ो तो उसमें जो पात्रता बतायी गयी है कि किसको दान देना चाहिए, उसमें बौद्ध भिक्षु ही आता है सिर्फ। अगर जैन शास्त्र पढ़ो, उसमें जो पात्रता बतायी गयी है किसको दान देना, उसमें जैन मुनि ही आता है केवल। बाकी तो सब कुगुरु, कुशास्त्र, कुदेव। इनको तो देना ही मत। इनको तो देने से पाप होता है। देना तो सदगुरु को। और सदगुरु कौन? उसमें भी अगर तुम दिगंबर शास्त्र पढ़ो तो वही, जो नग्न। और अगर श्वेतांबर शास्त्र पढ़ो तो नग्न की चर्चा ही नहीं। वह जो श्वेत वस्त्रधारी, मुंह पर पट्टी बांधे हुए। मुंह पर पट्टी भी न हो तो बात खतम हो गयी। ब्राह्मणों से पूछो कि दान किसको देना? तो ब्राह्मण को।

जटा जूट धारी संन्यासी ने बहुत समझाया दान की महिमा। यह बड़े मजे बात है, खूब समाझाया। जैसे मातीदीन शुक्ल, मिल जाएं जटा जूट धारी संन्यासी को और कहें कि मायाजाल से मुक्त होना है, तो वह कहें, हो जाओ, भैया! दान कर दो। झंझट तुम्हारी मिट जाए। अरे, हम तो सबकी झंझटें लेने को तैयार हैं। हमको दो, तुम क्यों कष्ट झेल रहे हो? हम तो तपस्वी हैं, हम झेल लेंगे। तुम्हें सपने छोड़ने हैं, लाओ हमें दे दो।

यह बड़े मजे की बात है कि साधु-संन्यासी लोगों को समझाते हैं कि क्या धन के माया-मोह में पड़े हो? और फिर यह भी समझाते हैं कि दान करो। और दान किसका? वही धन का। और करो किसको? उन्हीं को। क्या जाल है! क्या प्यारा जाल है! और कैसे बुद्धुओं की जमात है कि इस प्यारे जाल में फंसती चली जाती है!

मगर ढब्बूजी भी पहुंचे हुए हैं--तभी तो वे ढब्बूजी! और उन्होंने लाख समझाया जटा जूट धारी संन्यासी ने, मगर ढब्बूजी टस से मस न हुए। सिर हिलाएं, कहेंः हें जी, हें जी! मगर एक पैसा न निकालें। आखिर जटाजूटधारी का भी धैर्य टूट गया, वह भी गुस्सें में आ गया कि ढब्बू के बच्चे लाख समाझाया, तेरी कुछ समझ में नहीं आता, तेरे सिर में गोबर भरा है। ढब्बूजी ने कहा, जरूर भरा होगा, महाराज, नही तो आप घंटे भर से चाटते क्यों? मगर एक बात समझ में न आयी। जटा जूट धारी स्वामी ने पूछा, क्या बात समझ में नहीं आयी? यह बात समझ में नहीं आयी कि मेरी कि मेरी खोपड़ी तो आप देखते हैं, यूं है जैसे ताजा ताजा बनाया हुआ सीमेंट का रोड़। बिल्कुल सफाचट है। बाल ऊगते ही नहीं। और आपके बाल, ऐसी जटाएं, घने जटा जूट!

स्वामी ने कहा, मैं समझा नहीं, तुम्हारा मतलब क्या है, प्रश्न का प्रयोजन क्या है? उसने कहा, प्रश्न का प्रयोजन यह है कि महाराज, मैंने सुना है जिस जमीन में गोबर ज्यादा भरी होती है, उसमें घास ज्यादा उगता है। तो यही संदेह मन में उठ रहा है कि गोबर किसकी खोपड़ी में ज्यादा भरी है? मेरी या आपकी? क्योंकि घास-पात आपकी खोपड़ी में ज्यादा उगा है। मेरा तो बिल्कुल झर ही गया है घास-पात, न मालूम कब का झर गया! अगर गोबर भरी होती तो घास-पात उगता। और वर्षा के दिन, अभी तो उगता कम से कम!

संसार बाहर नहीं है, तुम्हारी खोपड़ी का नाम है। और खोपड़ी में कचरा है। कचरा यानी विचार, वासनाएं, इच्छाएं, एषणाएं, योजनाएं, महत्वाकांक्षाएं। यह हो जाऊं, वह हो जाऊं, यह पा लूं, वह पा लूं। अब यह भी तुम जो पूछ रहो हो कि संसार से कैसे मुक्त हो जाऊं, बताइए; सपने से कैसे मुक्त हो जाऊं, बताइए, यह भी तुम सोच रहे हो कि कोई सच में ज्ञान की जिज्ञासा है? नहीं, जरा भी नहीं। इसके पीछे भी लोभ है। इसके पीछे भी यह ख्याल है कि बैकुंठ कैसे मिले। कि कैसे स्वर्ग में प्रवेश हो जाए। और तुम स्वर्ग में भी प्रवेश करके क्या करोगे? अगर यही खोपड़ी रही, वहां भी पहुंच गये तो कुछ बहुत होने वाला नहीं है।

चंदूलाल मरे, स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचे, दरवाजा खटखटाया। द्वारपाल ने दरवाजे से झांककर पूछा कि कौन हो भाई? उन्होंने कहा, मै हूं चंदूलाल। कहा कि कोई चंदूलाल के आने की हमें खबर नहीं, कोई सूचना नहीं। समय के पहले आ गये या क्या मामला है? किस डाक्टर से इलाज करवा रहे थे? कि ऐसी-तैसी हो उन डाक्टरों की कि समय के पहले लोगों को भिजवा दे रहे है! जिनको मरना नहीं, वे मर जाते हैं। और जिनको मरना है, वे जिए चले जाते हैं। सब गड़बड़ झाला हो गया है। तो मुझे देखना पड़ेगा जाकर, दफ्तर में; आधी रात को अब तू आ गया और नींद खोल दी; पूरा पता-ठिकाना दे। तेरा पूरा नाम क्या है?

तो उसने कहा, चंदूलाल लोहावाला। लोहावाला क्यों? यह भी कोई जाति है? नहीं, कोई जाति नहीं है, मैं लोहा-लंगड़ का काम करता, कबाड़ी की मेरी दुकान है, पुराना लोहा खरीदना और बेचना यही मेरा धंधा है, इसलिए मेरा नामः लोहावाला। बम्बई में रहते चंदूलाल। बम्बई में ऐसे ऐसे नाम होते हैं। चंदूलाल लोहावाला, कि फलाना बाटलीवाला। बम्बई में तो जो भी नाम न हों गजब।

गया रात देवदूत। आधी रात, किसी तरह पन्ना उलटता रहा होगा, चंदूलाल का पता न मिले, कोई घंटे-डेढ़ घंटे मेहनत करके वापस आया खबर देने कि भई, कोई पता नहीं। इधर देखा तो चंदूलाल नदारद! चंदूलाल ही नदारद नहीं, वह बैकुंठ का लोहे का दरवाजा भी नदारद!

चंदूलाल ऐसा मौका चूक सकते? उन्होंने देखा, घंटा-डेढ़ घंटा हो गया, अब लगे हाथ दरवाजा तो लेते ही चलो।

तब से मैं तुम्हें बता दूं यह खबर, कि बैकुंठ पर दरवाजा नहीं है। वह चंदूलाल लोहावाला ने बम्बई में बेच दिया। अब कोई बैकुंठ पर तुम्हें दरवाजा खटखटाने की जरूरत नहीं, सीधे घुस जाओ। माया-मोह छोड़ो या न छोड़ो, कोई फिक्र नहीं, कहीं मातीदीन शुक्ल, रात के वक्त निकल जाना। और कोई गड़बड करे तो कहना, म्याउं!

लोभ ही पीछे जान खा रहा है। स्वर्ग जाना है, बैकुंठ में निवास करना है, कि जैसे उर्वशी इत्यादि, मेनका इत्यादि तुम्हारी ही राह देख रही हैं, कि कब आएं मातादीन और कब हम नाचें!

जीवन को जीओ! यहीं इसी क्षण बैकुंठ है। कुंठा से जो मुक्त होकर जीए, वह बैकुंठ में जीता है। कुंठा गयी कि बेकुंठ आया। कुंठाएं छोड़ो! और भारतीय मन इतनी कुंठाओं से भरा है जिनका हिसाब नहीं। और ये सब तुम्हारे प्रश्न तुम्हारी कुंठाओं को बढ़ाते हैं। यह माया, यह मोह, यह बुरा, यह पाप, यह ऐसा, वह वैसा, इसको छोड़ो, उसको छोड़ो। तुम कुंठित ही होते चले जाते हो। तुम्हारा जीवन सिकुड़ता है, फैलता नहीं।

भारतीय मानस फैलना भूल गया है, सिकुड़ना सीख गया है, संकोच में जी रहा है। ब्रह्म की बातें करते हो, जीते संकोच में हो। और ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः फैलना। फैलता जाए जो, विस्तीर्ण होता जाए जो। ब्रह्म को वही जान पाता है जो विस्तीर्ण होने की कला जानता है।

फैलो, संकीर्ण मत बनो।

फिर चिरागों से धुआं उठने लगा कुछ कीजिए
अब तो इस घर में भी दम घुटने लगा कुछ कीजिए.

आज अपनी खिड़कियां खोलें तो खोलें किस तरह
इन उजालों का भरम खुलने लगा कुछ कीजिए.

रात का आलम अगर होता तो कोई बात थी
दिन निकलते आदमी लुटने लगा कुछ कीजिए.

दोस्तो फिर इस शहर पर गिद्ध मंडराने लगे
मौत का सामान फिर जुटने लगा कुछ कीजिए.

एक जंगल फिर कहीं तारी न हो इस दौर में
जिंदगी का हरापन बुझने लगा कुछ कीजिए.

मगर यहां तो इस देश की जिंदगी का हरापन बहुत सदियों पहले बुझ गया। यहां तो हम बिल्कुल ही ठूंठ होकर जी रहे हैं। हम तो किस तरह लुटे जिसका हिसाब नही! यह कारवां किस तरह लुटा जिसका हिसाब नहीं! और इसको लूटनेवाले अच्छे अच्छे लोग! बुरे लोग भी लूटते तो भी कहने को एक बात थी। जिनको हम भले कहते हैं, जिनको हम साधु-संत महात्मा कहते हैं, उनके कारण हम बरबाद हुए हैं। उन्होंने हमें जीवन जीने की कला नहीं सिखाई, जीवन का भय सिखाया। घबड़ा दिया हमें! हर चीज में पाप का लेबिल लगा दिया। और पुण्य करने की जबर्दस्ती हम पर थोप दी। पुण्य जबर्दस्ती से किया जाए तो मजा नहीं। और पाप जबर्दस्ती से छोड़ा जाए तो छूटता नहीं। भीतर भीतर रिसता है।

तो मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि यह माया है संसार। संसार माया नहीं है। ये वृक्ष माया नहीं हैं। ये पहाड़, ये चांद-तारे माया नही हैं। अगर माया है कहीं तो तुम्हारी कल्पनाओं में, वासनाओं में, तुम्हारी इच्छा में। तुम इच्छाओं को छोड़ दो, वासनाओं को एक तरफ हटाकर रखो--और तुम्हारी वासना में स्वर्ग की वासना भी सम्मिलित है, स्मरण रहे; मोक्ष की वासना भी सम्मिलित है, भूल न जाना; वासना से मुक्त होने की वासना भी वासना ही हैं, इसे विस्मरण मत कर देना--ये सारी वासनाएं एक तरफ हटाकर रखो और जिंदगी को सरलता से जीओ, मौज से जीओ, परमात्मा ने तुम्हें जो दिया है उसे अनुग्रह के भाव से जिओ और यहीं बैकुंठ है, इसी क्षण। तत्क्षण द्वार खुल जाते हैं स्वर्ग के। अमृत की वर्षा हो जाती है।

स्वर्ग तुम्हारे भीतर है और तुम कहां कहां टटोलते फिरते; कहां कहां; किन किन द्वार-दरवाजों पर सिर-माथा टेकते हो! कहां कहां तुमसे सिज्दे न किये! किस किस से तुमने प्रार्थना नहीं की! किस-किस से नहीं पूछते फिरे! अब तो जागो! अब तो अपने भीतर की ज्योति को पहचानो।

उसे ज्योति को पहचानते ही न कोई सपना है, न कोई माया है। परमात्मा है और केवल परमात्मा है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है; तुममें भी वही है, औरों में भी वही है; एक परमात्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

तत्त्वमसि। तुम वही है।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

धर्म क्रांति है, अभ्यास नहीं

पहला प्रश्न : भगवान,

ढूंढता हुआ तुम्हें पहुंच गया कहां-कहां
न स्वर्ग ही कुछ बोलना न नर्क द्वार खोलता
हर आंख में मैं आंख डाल तस्वीर तेरी टटोलता
पहुंच गया कहां-कहां
सांसों के फासले हैं या कि दूरियां ही दूरियां
न तुम ही कुछ हो बोलते मुख से जुबां न खोलते
चलना है कब तलक मुझे यूं सबके दिल टटोलते
तुम कहां और मैं कहां
ढूंढता हुआ तुम्हें पहुंच गया कहां-कहां
जमीं से मिल सका न पता आसमां लगा सका
ढूंढा नहीं किधर-किधर तुम्हें मगर न पा सका
अब ढूंढता हुआ मैं खुद को किधर-किधर निकल गया
अरे, ये क्या हुआ कि पता तुम्हारा मिल गया
तस्वीर तुम्हारी मेरे दृग में
जैसे कस्तूरी रहती है मृग में

पार्थ प्रीतम कुंडू, यह कबीर का प्रसिद्ध वचन हैः कस्तूरी कुंडल बसै, लेकिन इसमें भी बात पूरी समाती नहीं; इसमें भी कुछ छूट जाता है। कबीर भी कहे तो, पर कह नहीं पाए। क्योंकि कस्तूरी और मृग में फासला है। कस्तूरी को मृग से अलग किया जा सकता है--किया जाता है। ऐसे ही तो कस्तूरी मिलती है। लेकिन तुमको तुमसे अलग किया जा सकता नहीं। तुममें उतना भी फासला नहीं है अपने से, जितना कस्तूरी में और मृग में होता है। कस्तूरी मृग में होती है, लेकिन मृग ही नहीं। और तुम जिसे खोज रहे हो, वह तुम ही हो। उतनी दूरी भी नहीं है। खोजनेवाला ही खोज का लक्ष्य है।

इससे मुश्किल है।

इससे बड़ी मुश्किल है। अपने को ही देखने निकल पड़े हो। कौन देखेगा? दूसरे को देखा जा सकता है। देखने के लिए फासला चाहिए। अपने को कैसे देखोगे? वहां देखनेवाला और दृश्य अलग नहीं। वहां द्रष्टा और दृश्य एक है। इस मौलिक सत्य को जब तक न समझ लो तब तक भटकाव ही भटकाव है। इसीलिए तो आदमी खोजता फिरता है।

और तुम ठीक कहते होः ढूंढता हुआ तुम्हें पहुंच गया कहां-कहां! आदमी कहां कहां नहीं पहुंच गया! चांद पर पहुंच गया। जल्दी ही और तारों पर पहुंच जाएगा। और तलाश एक है, खोज एक है--वही शाश्वत खोज; मैं कौन हूं, आदमी जानना चाहता है। क्योंकि जब तक जान न ले कि मैं कौन हूं, जीए कैसे; किस अर्थ जीए, किस

प्रयोजन जीए? और बिना स्वयं को जाने जैसे भी जीएगा, उस जीने में भूल होगी, भ्रांति होगी। जिस दिशा में भी जाएगा, गलती होगी, चूक होगी। कुछ भी करेगा, गलत होगा। स्वयं को जाने बिना शुभ हो ही नहीं सकता।

पुण्य तो आत्म ज्ञान की सुगंध है। और पाप हैः आत्म अज्ञान की दुर्गंध। इसलिए आत्म अज्ञानी चाहे भी कि पुण्य करूं, तो भी कर नहीं सकता। जाएगा पुण्य करने, हो जाएगा पाप। बनाएगा मंदिर, बन जाएगा कुछ और। यूं ही तो इतने मंदिर बने हैं। फिर भी परमात्मा का मंदिर कहां?

श्री जुगलकिशोर बिड़ला मुझसे मिले थे। कहने लगे, मैने इतने मंदिर बनाए।

मैंने कहा, जरूर बनाए, मगर सब बिड़ला मंदिर हो गये। तुमने तो बनाना चाहे थे परमात्मा के मंदिर, बन गये बिड़ला के मंदिर।

कहने लगे, बात तो सच है! मगर किसी और ने मुझसे कही नहीं।

मैंने कहा, कोई और तुमसे कहेगा भी नहीं। सच में तो जो मुझे उनसे मिलाए थे, सेठ गोविंददास, जब मैंने यह कहा तो वे मेरा कुर्ता खींचने लगे। वे मिलाए ही इसलिए थे कि जुगलकिशोर बिड़ला से मेरे काम के लिए बहुत सहयोग मिल सकता है। उन्होंने देखा कि यह मैंने पहला ही मामला खराब कर दिया। वे सेतु बना रहे थे सहयोग का और यह शुरू से ही बात बिगड़ गयी।

मैंने जुगलकिशोर को कहा कि आपको पता है, सेठ गोविंददास मेरे बगल में बैठे हैं, वही मुझे आपसे मिलाए हैं, वे मेरा कुर्ता खींच रहे हैं! वे कह रहे हैं, मत कहो, ऐसी बात मत कहो! तो जो आपके पास आते हैं, वे भिखारी होते हैं। मैं कुछ मांगने नहीं आया। मुझे कुछ चाहिए नहीं।

और जुगलकिशोर भी आदमी इस अर्थ में सच्चे थे। उन्होंने कहा कि मेरी आपकी बनेगी भी नहीं। कहने लगे, मैं भी चौंका, क्योंकि सेठ गोविंददास ने मुझसे यही कहा था कि उनके काम को कुछ सहायता की जरूरत है।

मैंने कहा, मुझे काम की कोई सहायता की जरूरत नहीं है। मैं प्रतीक्षा करूंगा उन लोगों की जो मेरे सहयोगी हो सकते हैं। तब तक राह देखूंगा। मगर किसी शर्त पर सहायता नहीं। बेशर्त जब मुझे साथ देने वाले लोग आ जाएंगे, तब।

अब जुगलकिशोर तो जा चुके। होते तो उनको कहता कि अब वे, मेरे लोग आ गये। अब मुझसे सहायता के लिए कोई शर्त नहीं है उनकी। उनको ख्याल ही नहीं कि वे मेरी सहायत कर रहे हैं। यह प्रश्न ही नहीं उठता। यह बात ही लेन-देन की नहीं है। अब जो मेरा है, उनका है, जो उनका है, मेरा है।

तो मैंने उनको कहा कि आपके पास जो आते हैं वे तो क्यों कहेंगे! वे तो कहेंगे, और मंदिर बनवाइये। आपने महापुण्य कार्य किया। बैकुंठ में आपकी प्रतीक्षा हो रही है। स्वयं प्रभु माला सजाए, माला गूंथे बैठे हैं कि कब आप आओ और आपके गले में माला पहनाएं। इतने मंदिर किसी और ने बनाए हैं?

ऐसा ही हुआ था, भारत से चौदह सौ वर्ष पहले एक अदभुत संन्यासी, बोधिधर्म, चीन गया। सम्राट वू ने उसका स्वागत किया। वू ने बहुत से बुद्ध के मंदिर बनवाए थे--अनंत! और इतनी मूर्तियां! सारे चीन को बुद्ध की मूर्तियों से भर दिया था। और बहुत विहार। और लाखों भिक्षु उसके खजाने से भोजन पाते थे। वे सब उसकी प्रशंसा और यश के गीत गाते थे। स्वभावतः यही तो शड्यंत्र है न्यस्त स्वार्थों के बीच में। यही तो तथाकथित धर्म और राजनीति की सांठ-गांठ है। सम्राट प्रसन्न था, भिक्षु प्रसन्न थे, और क्या चाहिए था? भिक्षु प्रंशसा कर रहे थे, सम्राट और और खजाने खोल रहा था।

और जब बोधिधर्म चीन पहुंचा तो उसके बहुत पहले उसकी सुगंध पहुंच गयी। यह बुद्ध की कोटि का व्यक्ति था, यह कोई साधारण भिक्षु नहीं था। यह उन असाधारण लोगों में से एक था जो कभी पृथ्वी पर होते हैं। सम्राट वू स्वयं अपने मंत्रिमंडल के साथ साम्राज्य की सीमा पर लेने बोधिधर्म को आया था। और उसने पहली ही बात यही पूछी, जो जुगलकिशोर बिड़ला ने मुझसे पूछी थी, कि मैंने इतने मंदिर बनवाए, यह पुण्यकार्य आप मानते हैं या नहीं? सम्राट वू ने यही पूछा बोधिधर्म को।

जमाना बदल जाता है, आदमी की बुद्धि नहीं बदलती। वही की वही बुद्धि। मैंने जुगलकिशोर बिड़ला को यह घटना कही थी कि मैं आपको दोहरा दूं, यह बात हो चुकी है पहले, यह कुछ नयी नहीं है। सम्राट वू ने कहा, मैंने इतने मंदिर बनाए बुद्ध के, इतने आश्रम, लाखों भिक्षु राजकोष से भोजन पाते हैं, सारे चीन को मैंने बौद्ध धर्म में दीक्षित कर दिया, बुद्ध धर्म को दुनिया का सबसे बड़ा धर्म बना दिया, इस सबका मुझे क्या पुण्य-फल मिलेगा?

बोधिधर्म ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा--वैसे ही जैसे कोई न्यायाधीश किसी चोर को देखे--और कहा कि पुण्य! पुण्य बिल्कुल नहीं! महानर्क में गिरोगे!

वू तो बहुत चौंका। कहा, आप मजाक तो नहीं करते हैं?

बोधिधर्म ने कहा, तुमने जो भी किया है, वह अज्ञान में किया है। ये मंदिर तुमने अपने अहंकार के बनाए हैं। इसमें जो प्रतिमाएं हैं, बुद्ध की नहीं, तुम्हारे अहंकार की हैं। तुम नर्क में पड़ोगे, महानर्क में पड़ोगे।

पर सम्राट वू ने कहा कि और किसी भिक्षु ने ऐसा मुझे नहीं कहा। बोधिधर्म ने कहा, वे कहेंगे भी क्यों? वे तुम्हारे भोजन पर पलते हैं। तुम्हारा नमक खाते हैं। वे तुम पर निर्भर हैं। तुम उन पर निर्भर हो। इसलिए सांठ-गांठ चलती है। वे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तुम उनकी प्रशंसा करते हो। वे कहते हैं, आप महान सम्राट हो, तुम कहते हो कि आप महान भिक्षु हो। वे कहते हैं कि आपको स्वर्ग में महापुण्य मिलेगा, पुण्य के बहुत फल मिलेंगे। आप उनके चरण धोते हो, वे आपका यशोगीत गाते हैं। मुझे इस सबसे कुछ लेना-देना नहीं हैं। इतना मैं तुमसे कह दूं कि जो व्यक्ति स्वयं को नहीं जानता, वह कुछ भी करे तो पाप है। वह कितनी ही नेकनीयत से करे, तो भी उससे पुण्ये नहीं हो सकता।

आत्म अज्ञान की दशा में जो भी कुछ किया जाएगा, वह सभी गलत हो जाने वाला है। क्यों? क्योंकि भीतर अंधेरा है। उसी अंधेरे से तो कृत्य निकलेंगे तुम्हारे। इसलिए तो मैं नीति का बहुत पक्षधर नहीं हूं। क्योंकि मेरी मान्यता हैः नीति का अर्थ होता है, भीतर अंधकार है, रहने दो, ऊपर से चूना पोत लो।

जीसस ने कहा हैः तुम्हारे पंडित-पुरोहित ऐसे हैं जैसे चूने से, ताजे ताजे चूने से पोती गयी कब्रें। भीतर लाशें सड़ी पड़ी हैं और ऊपर चूने से पुती हुई सुंदर सुंदर कब्रें। उन पर जलाओ शमाएं। उन पर चढ़ाओ फूल! उन पर उगा दो गुलाब। सब झूठा है! उड़ाओ सुगंधें, धूप-दीप बालों, सब व्यर्थ है। भीतर सिर्फ मुर्दा है।

तुम कितने ही अच्छे कृत्य करो; कितनी ही पूजा, कितने ही पाठ, यज्ञ-हवन, सब क्रिया-कांड रह जाएगा, क्योंकि भीतर अंधेरा है। और तुम कहीं भी जाओ, तुम गलत जगह ही पहुंचोगे। तुम्हें यही पता नहीं मैं कौन हूं, तो तुम कदम कैसे उठाओगे, दिशा कैसे चुनोगे? तुम नींद में चल रहे हो।

पहली बात, सबसे मौलिक बात, सबसे आधारभूत बात--स्वयं को जानना है। और स्वयं को जानने की विधि साहस चाहती है, दुस्साहस चाहती है। गौरीशंकर पर चढ़ जाना कठीन नहीं है और न चांद पर पहुंच जाना कठीन है--आखिर आदमी पहुंच ही गया--सर्वाधिक कठीन यात्रा है अपने भीतर आने की। कई कारणों से।

पहली बात्त : वही व्यक्ति स्वयं के भीतर पहुंच सकता है, जो नितांत अकेला होने को राजी हो। और वहां हमारी छाती कंपती है। हम भीड़-भाड़ के आदी हैं। हमें संगी-साथी चाहिए। जरा अकेले छूट जाते हैं, बैचेनी होती है। अकेलापन काटता है। अखबार पढ़ने लगते हैं, रेडियो खोल कर बैठ जाते हैं, टेलिविजन देखने लगते हैं। रोटरी क्लब चले, लायंस क्लब चले। होटल में जाकर बैठ जाएंगे। कुछ करेंगे। कहीं उलझाएंगे अपने को। क्षण भर अपने को अकेला न छोड़ेंगे। और जो अपने को नहीं छोड़ सकता, वह कभी अपने को पहचान न सकेगा। और अपने को इतना अकेला छोड़ना होता है कि व्यक्ति तो रह ही न जाएं, विचार भी न रह जाएं, वासनाएं भी न रह जाएं, स्मृतियां भी न रहा जाएं। भीतर कोई धुआं न रहा जाए, कोई ऊहापोह न रहा जाए। भीतर बिल्कुल ही सन्नाटा छा जाए। यूं गहन सन्नाटा, ऐसी चुप्पी, कि टूटे न टूटे! तब कहीं कोई अपने में डुबकी लगा पाता है। और तब पहचान होती है। उस पहचान के बाद जीवन में क्रांति हो जाती है।

तुम ठीक कहते हो, पार्थ प्रीतम :

ढूंढता हुआ तुम्हे पहुंच गया कहां-कहां!"

वह आसान था। सभी यही कर रहे हैं। चल पड़े हैं, खोज में निकले हैं। ऐसे मन को सांत्वना भी मिलती रहती है कि हम खोजी हैं। कोई शास्त्रों में खोज रहा है, कोई सत्यों को सिद्धांतों में खोज रहा है, कोई शब्दों की जोड़-तोड़ में खोज रहा है, कोई तर्कों के जाल में खोज रहा है। कोई पूजा में, पाठ में, अंधविश्वासों में, तरह तरह की धारणाओं में। सभी खोजी हैं इस अर्थ में। मगर शून्य में कोई भी नहीं खोज रहा है। क्योंकि जो शून्य में खोजता है, तत्क्षण पा जाता है। शून्य में खोजने का अर्थ होता हैः खोजने वाला ही मिट जाए। तब खोज पूरी होती है।

यह खोज बड़ी अनूठी है। यह खोज बड़ी विरोधाभासी है। यह यूं है जैसे पानी की बूंद सागर में उतर जाए। देखा है कभी सुबह सुबह ओस की बूंद को कमल के पत्तों पर सूरज की रोशनी में चमकते हुए? अब सरकी तब सरकी! महावीर ने तो कहा ही हैः आदमी का जीवन ऐसे है जैसे ओस की बूंद, घास के तिनके पर सधी; जरा सा झोंका हवा का आ आया कि गयी। जरा पत्ता कंपा कि झील में डूब जाएगी। यूं मृत्यु तो तुम्हें डुबा ही लेगी। मृत्यु के पहले जो डूब सकता है, वही साहसी है, वही संन्यासी है।

मृत्यु तो सभी को डुबाती है, वह डुबाने में तुम्हारा कोई गौरव नहीं है। इसलिए तुम्हें फिर लौट आना पड़ता है। डूबे भी और क्या खाक डूबे! एक देह गयी, दूसरी देह मिली। इधर से डूबे, उधर से उभरे। यूं मिटे, यूं बने। क्षण भर नहीं बीतता। इधर लोग अर्थी सजा रहे होते हैं, उधर तुम किसी गर्भ में प्रविष्ट हो गये होते हो। इधर अर्थी उठ भी नहीं पाती और उधर गर्भाधान हो जाता है। क्षण भर की देर लगती है--क्षण भर की भी कहनी ठीक नहीं, इधर सांस टूटी कि उधर सांस चली। यूं छलांग लगती है। क्योंकि सब पुरानी वासनाएं वैसी की वैसी हैं, पुरानी आकांक्षाएं वैसी की वैसी हैं। वे ही आकांक्षाएं तुम्हें इस शरीर में ले आयी थीं, वे ही आकांक्षाएं तुम्हें नये शरीर में ले जाएंगी। कितने शरीरों में तुम रह चुके हो! कितनी बार जन्मे, कितनी बार मरे! और वही करते हो, बार बार, वही करते हो!

मैंने सुना, एक आदमी ने रात सपना देखा कि हीरा नाम को घोड़ा कल होने वाली घुड़दौड़ में जीतने वाला है। उसने सारे पैसे इकट्ठे किये जितने उसके पास थे, अपने मित्र को साथ लिया और कहा कि चल, आज भाग्य का निपटारा है, इधर या उधर, सब दांव पर लगा देना! हीरा नाम का घोड़ा जीतने वाला है, यह मैंने सपना देखा है। और एक बार नहीं देखा, रात में बार बार देखा है। पता नहीं कितनी बार देखा है, कि मैं यह मान ही नहीं सकता कि यह सपना सिर्फ सपना है। यह घटना होने ही वाली है, मुझे भरोसा आ गया है। और

इसलिए सब जितना इकट्ठा कर सकता था, सब दांव पर लगा देना है। आज लखपति हो कर घर लौटूंगा। और तू साथ आ, मित्र है, तू गवाह रहेगा।

उसने अपने मित्र को कहा कि जा और यह सारा रुपया लगा दे हीरा नाम के घोड़ पर। थोड़ी देर बाद मित्र आया। पूछा उसने कि लगा दिया, भाई? उसने कहा कि मैं तो हीरा पर ही लगाने जा रहा था, लेकिन जो आदमी दांव लगा रहा है, ले रहा है पैसे खिड़की पर, उसने कहा पागल हुए हो! यह घोड़ा कभी आया ही नहीं। और यह कभी आएगा भी नहीं। मरियल घोड़ा! यह तो सदा आखिरी नंबर पर आता है। तुम होश में हो? अरे, मैं तुमसे कहता हूं कि अब जब तुम लगाने ही चले हो, सभी दांव पर लगाने ले आए हो, तो नम्बर सात के घोड़े पर लगा दो। इसकी जीत सुनिश्चित है, बहुत बार जीत चुका है। और जब भी दौड़ा है, जीता है। और इसके मुकाबले कोई घोड़ा नहीं। मैं अनुभव से कहता हूं। सो मैं तो नंबर सात पर लगा आया।

छाती पीट ली उस आदमी ने कि तूने भी क्या मूर्खता की! कितना मैंने तुझसे कहा, हीरा पर लगाना! मगर अब जो होना था सो हो गया। और जब घुड़दौड़ का आधे घंटे में रिजल्ट आया तो हीरा आया नंबर एक। उस आदमी ने कहाः देखा? लगवा दी फांसी! और वह नंबर सात का सात ही नंबर पर आया, सातवें नंबर पर आया। सात ही घोड़े दौड़े थे कुल जमा। उसने कहा, करवा दिया बरबाद! बस, अब यह एक रुपया बचा है, सो ले जा और जाकर कोकाकोला ले आ कि अब पी लें और घर चलें।

वह आदमी गया और फैंटा लेकर आ गया।

तुझसे मैंने कोकाकोला कहा था!

उसने कहा कि वही आदमी फिर मिल गया। कहने लगा, कोकाकोला! अरे, यह जहर है! न मालूम कितने लोगों को कैंसर हो चुका, टी.बी. हो चुका--कोकाकोला के कारण! और तू जानता है कोकाकोला का मतलब? कोका जहर है--कोकीन! सो बात मुझे उसकी जंच गयी। उसने कहा, फैंटा ले जा! यह चीज स्वास्थ्यवर्द्धक है। सो मैं फैंटा ले आया।

उसने कहा, ठीक है, अब जो ले आया सो ठीक है। फैंटा पी लिया। अब चलें घर। चलने के पहले भूख लगी है तो उसने चार आने पैसे, उसने कहा, बस अब ये आखिरी हैं। सब तो तूने बरबाद ही करवा दिया; जिस घोड़े पर कहा, दांव न लगाया; कोकाकोला कहा, कोकाकोला न लाया, यहा फैंटा ले आया; अब तू मूंगफली खरीद ला कि थोड़ा पेट में वजन पड़े और घर चलें, अब सोचें आगे का, क्योंकि सब बरबाद हो गया!

वह तो फुटाने लेकर आ गया।

उसने कहा, तू कैसा आदमी है!

उसने कहा, वही आदमी फिर मिल गया। मैं भी क्या करूं? वह कहने लगा, मूंगफली! अरे, बिल्कुल सड़ी बिक रही हैं। खरीदना ही मत! अब मैं तुझसे अनुभव की कहता हूं। हमारा तो काम ही यही है चौबीस घंटे। फुटाने ले जा! नये नये हैं और अच्छे हैं। और अभी ताजे ताजे चने आए हैं। सो मुझे उसकी बात जंच गयी।

उस आदमी ने सिर पीट लिया। उसने कहा, तू कभी सीखेगा कि नहीं? वह आदमी तीन दफा धोखा दे चुका, बरबाद कर दिया उस आदमी ने, उसी की मान मान कर चला जाता है! तुझे अकल आएगी कि नहीं?

जब मैं यह कहानी पढ़ा तो मुझे लगा कि यह कहानी तो आदमी के बाबत है। तुम क्या करते हो जिंदगी में? वही, जो कल किया था, आज; जो परसों किया था, जो पिछले जन्मों में किया है, जो बार बार किया है। और उन्हीं लोगों की बातें मान कर। वे ही आदमी तुम्हें मिल जाते हैं। तुम ईसाई हो जाओ तो वे ही पादरी और तुम हिंदू हो जाओ तो वे ही पंडित और तुम मुसलमान हो जाओ तो वे ही इमाम और अयातुल्ला।

तुम वही करोगे तुम कहीं भी हो। कुछ फक्र नहीं पड़ता तुम्हारे हिंदू, मुसलमान, ईसाई होने से। तुम जो भी करोगे? वह मूढ़तापूर्ण ही होगा। और उसके होने का बुनियादी कारण यह है कि तुम सदा और से पूछकर करोगे, तुम्हारे भीतर तो कोई रोशनी की किरण नहीं। तुम्हारे भीतर तो कोई दीया नहीं जल रहा है। वहां तो अंधेरा छाया हुआ है। तो तुम पूछते फिरते हो, टटोलते फिरते हो, मांगते फिरते हो। और हाथ कभी कुछ नहीं लगता।

एक ही बात सीखने जैसी है कि बहुत खोज लिया बाहर, अब भीतर उतरो! और भीतर भी कस्तूरी पर मत रुक जाना, क्योंकि कस्तूरी भी भीतर दिखती है, है तो बाहर ही। क्योंकि कस्तूरी भी अन्य है, अनन्य नहीं है। वह तुम्हारी सत्ता नहीं है। तुम मृग हो। तो कस्तूरी का नाफा भी अगर तुम्हारे भीतर पड़ा है, तो भी तुम उससे अलग हो। नाफा तुमसे अलग है।

यह तो प्रतीक ही है जो कबीर ने कहा--कस्तूरी कुंडल बसै। यह तो समझाने के लिए कहा है। जैसे छोटे बच्चों को समझाते हैं कि आ आम का, कि ग गणेश का। पहले हुआ करता था ग गणेश का, अब नहीं होता; क्योंकि अब भारतीय जो है संविधान, वह धर्म-निरपेक्ष है। और गणेश का ग हो तो धर्म आ जाएगा। तो अब ग गधे का। क्या पतन हुआ--गणेश से गधे पर पहुंचे! गणेश में ऐसी कुछ बुराई न थी। देखले में जरा उल्टे-सीधे लगते हैं, फिर भी गधे से तो बेहतर ही थे। मगर गधा धर्म-निरपेक्ष है, यह एक उसकी खूबी है। न हिंदू, न मुसलमान, न जैन, न बौद्ध। गणेश में थोडी धार्मिकता की गंध आती है।

तो गणेश नहीं चलता अब। मगर गणेश चले कि गधा चले, फर्क नहीं। बच्चों के लिए कुछ चाहिए, ग सीधा नहीं सीख सकते वे। गणेश का हो कि गधे का हो, लेकिन किसीका हो। मगर फिर जिंदगी भर पकड़े मत बैठे रहना, कि जब भी ग पढ़ो तो पहले कहो ग गणेश का कि ग गधे का और फिर आगे बढ़ो; फिर जो शब्द आए वह आ आम का, कि आ आदमी का और ह हौआ का। फिर पढ़ोगे कैसे? फिर ये आम, हौआ, और गणेश और गधे, इन्हीं में उलझ जाओगे। ये सिर्फ प्रतीक हैं।

कबीर यह कह रहे हैं कि मृग भटकता फिरता है जंगल में--और अक्सर मुश्किल में पड़ जाता है; क्योंकि कस्तूरी-मृग जो होता हैं, बारहसिंगा होता है, उसके बड़े सींग होते हैं। और जब वह भागता फिरता है तो सींग उसके झाड़ियों उलझ जाते हैं। उसके प्राण संकट में पड़ जाते हैं। और तुम भी कितनी झाड़ियों में नहीं उलझ गये हो! तुम्हारे भी सींग कहां कहां नहीं उलझ गये हैं! छूटना मुश्किल हो जाता है।

मैं एक प्रोफेसर को जानता हूं। वे किसी स्त्री को नहीं देखते। मेरे प्रोफेसर रह चुके हैं। वर्षा हो कि न हो, धूप हो कि न हो, वे छाता ही लगा कर चलते हैं। और छाता भी ऐसा लगाते हैं कि बिल्कुल उनके सिर से ही लगा रहता है छाता, ताकि कोई दिखाई न पड़े--खास कर स्त्रियां।

मैं उनकी कक्षा में जब विद्यार्थी था तो मेरे साथ दो लड़कियां भी थीं। जब लड़कियां कक्षा में होती तो वे आंख ही नहीं खोलते, आंख बंद करके ही पढ़ाते। इससे मुझे तो बड़ा ही लाभ था। वे आंख बंद करके पढ़ाते, मैं आंख बंद करके सोता। कभी कभी वे देख लेते होंगे। थोड़ा आंख खोल कर, तो सोचते होंगे कि मैं भी उन्हीं के सिद्धांत को मानने वाला हूं, कि मैं भी लड़कियां को नहीं देखता।

एक दिन यूं हुआ कि दोनों लड़कियां आयीं नहीं। मैं अकेला ही था। और मैं तो पुरानी आदत के हिसाब से, रोज के हिसाब से, सोता ही था वहां नियमानुसार, सो मैं तो अपना सो गया। मैंने ख्याल ही नही किया कि लड़कियां आज आयी नहीं हैं। और वे आंख खोल कर पढ़ाते रहे। जब उन्होंने देखा कि मैं अब भी आंख बंद किये हूं तो उन्हें थोड़ा शक हुआ। मुझे हिलाया-डुलाया, तो मैं जरा उठा; चौंक कर उठा। तो उन्होंने कहा, अरे! तुम सो

रहे हो क्या? तो मैंने कहा, आप क्या समझते थे, इतने दिन से मैं कोई जाग रहा था! तो उन्होंने कहा, मैं तो यही सोचता था कि तुम भी लड़कियों को नहीं देखते, इसीलिए आंख बंद किये हो। मैंने कहा, मुझे लड़कियों और लड़कों से कुछ लेना-देना नहीं है। आप क्यों आंख बंद किये रहते हैं?

उन्होंनें कहा, अब आज बात ही उठ गयी और लड़कियां हैं भी नहीं, इसीलिए तो मैं छाता लगाकर चलता हूं कि लड़कियां दिखाई न पडें। और लड़कियों से कभी नमस्कार भी नहीं करते थे वे। कोई लड़की कितना ही करे, मगर वे नमस्कार का जवाब भी न दें! उन्होंने कहा, क्या खाक जवाब दूं! दस साल पहले एक लड़की का जवाब दिया था, सो अब तक भुगत रहा हूं। पांच बच्चे हो गये। खोपड़ी खाए जा रहे हैं। एक को नमस्कार को जवाब दिया था। उससे जो भूल हो गयी, बस, वहीं ठहर गया हूं। अब आगे नहीं बढ़ सकता। न मुझे नमस्कार को जवाब देना है, न मुझे किसी स्त्री को देखना है। यह झंझट के ही काम हैं। ऋषि-मुनि ठीक ही कह गये हैं।

फिर इस तरह लोग घबड़ा जाते है! यह तो जगह जगह झाड़ियों में उलझ जाएंगे और या फिर उलझने से ऐसे घबड़ा जाएंगे! मगर यह घबड़ाने में उलझना हो गया। अब ये डर में उलझ गये। अगर पहले वासना में उलझे थे तो अब भय में उलझ गये। वही उलझाव रहा, झाड़ी बदली है। अब भी डरे हुए हैं, कंपे हए हैं, घबड़ाए हुए हैं।

अब इस आदमी की जिंदगी तुम सोचो, कैसी मुश्किल की होगी! स्त्री को देखना नहीं हैं, आंख बंद रखनी है, छाता लगा कर रास्ते पर चलना है। बाजार नहीं जाते थे। सामान खरीदने किसी दुकान पर जाएं और कोई स्त्री मिल जाएं तो वहां आंख बंद कर लें, जरा भद्दा मालूम पड़े। और कई दुकानों पर तो स्त्रियां सामान बेचने का काम करने लगी हैं। वहां नहीं जाते थे। किसी होटल में न जाएं, खाना नहीं खाएं। अगर उनकी पत्नी कभी मायके चली जाए तो वे खुद बेचारे पकाएं। उनसे खाना पकाते आएं नहीं, तो बस दूध उबाल कर पी लें, केला इत्यादि खा लें, किसी तरह समय व्यतीत करें। इतने भयभीत हो गए!

तो कुछ तो हैं जो संसार में उलझ जाते हैं और कुछ हैं जो संसार की घबड़ाहट में त्याग-तपश्चर्या में उलझ जाते हैं। मगर उलझाव जारी रहता है। और दोनों ही बाहर हैं।

मेरा तुमसे कहना हैः उलझने का प्रश्न ही नहीं है, सिर्फ जागने की बात है। कहीं खोजने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम जिसे खोज रहे हो वही तुम हो। तत्त्वमसि--उपनिषद कहते हैं कि तुम वही हो! खोजने वाले में ही खोज गंतव्य छिपा है। जरा भीतर आंख खोलो और देखो।

अच्छा हुआ तुम यहां आ गये। क्योंकि यहां और किसी ब्राह्य आडंबर में उलझाने की बात नहीं है।

तुम कहते होः "न स्वर्ग ही कुछ बोलता।"

हो तो बोले! स्वर्ग कहीं है थोड़े ही। सुख की तुम्हारी कामना का विस्तार है। तुम यहां भी सुख चाहते हो, परलोक में भी सुख चाहते हो। सुख की वासना का विस्तार है स्वर्ग। स्वर्ग कहीं है नहीं। इसलिए तो हर एक जाति का स्वर्ग अलग-अलग होगा; क्योंकि हर एक जाति की सुख की धारणा अलग अलग होगी।

सुख की धारणा बहुत सी चीजों पर निर्भर होती--भूगोल पर, मौसम पर। अब तिब्बती स्वर्ग को ठंडा और शीतल नहीं मान सकता। ठंड से ही तो परेशान है। ठंड से ही तो मरा जा रहा है। और भारतीय का स्वर्ग तो शीतल ही होगा, वातानुकूलित होगा। उन दिनों वातानुकूल करने की कोई सुविधा नहीं थी जब शास्त्र लिखे गये, मगर शास्त्रों में वर्णन है कि स्वर्ग में सदा ही शीतल मंद बयार बहती रहती है। सदा! चौबीस घंटे! सूरज भी निकलता है तो भी ताप नहीं होती, आंच नहीं होती। अब भारतीय तो आंच से घबड़ाए हुए हैं, तपे जा रहे हैं, जले जा रहे हैं। पकाए दे रहा है सूरज उन्हें। तो स्वर्ग में तो शीतल मंद बयार बहेगी! भारतीय स्वर्ग में!

तिब्बती स्वर्ग में बड़ी ऊष्मा है, गर्मी है। होना ही चाहिए, क्योंकि तिब्बती तो बर्फ से मरे जा रहे हैं। पानी छूने में प्राण निकलते हैं। तिब्बती शास्त्र कहते हैंः साल में एक बार स्नान जरूर करना चाहिए। जो साल में एक बार स्नान जरून करने को मानते हों, उनके स्वर्ग में शीतल मंद बयार बह सकती है? वहां तो सूरज निकलता है--जगमग, ज्योतिर्मय, प्रकाश ही प्रकाश! और प्रकाश ही नहीं, ताप ही ताप!

तिब्बतियों के नर्क में बर्फ जमी है! और बर्फ हमारे लिए तो अगर जमे तो स्वर्ग में जमनी चाहिए। शर्बत वगैरह बनाने के काम में आएगी। तिब्बती नर्क में बर्फ जमी है। तिब्बनी नर्क, तुम जान कर हैरान होओगे, वहां आग की लपटें नहीं हैं। हमारे नर्क में आग की लपटें हैं। चौबीस घंटे! कहां से इतना ईंधन आ रहा है! केरोसिन की कमी अगर हो रही है तो हमें लगता है कि भारतीय नर्क की वजह से हो रही है। और नर्क भारतीयों का नीचे है और जमीन में भरा हुआ है केरोसिन, पेट्रोल। तो वहीं से पाइप लगाकर वे नीचे-नीचे खींच लेते होंगे, ऊपर आने न दें। और नीचे उतारना सदा आसान है। सिर्फ पाइप लगा दिया कि धड़ाधड़ जल प्रपात की तरह केरोसिन और पेट्रोल टपकने लगा। ऊपर चढ़ाओ तो मशीनें लगानी पड़ती हैं चढ़ाने के लिए, पंप बिठालने पड़ते हैं, तब बामुश्किल चढ़ पाता है। चौबीस घंटे अनंत काल से अग्निकुंड जल रहे हैं वहां। और आदमियों को बिल्कुल पकौड़ो की तरह उबाला जा रहा है, तेल में पकाया जा रहा है। मरने भी नहीं देते, जिंदा भी नहीं रहते देते।

मगर तिब्बतियों का नर्क, बिल्कुल बर्फ ही बर्फ जमी है। वहां अगर मर कर पहुंचे तो बस, बर्फ में दबा दिये जाओगे। ले लेना मजा ठंडक का फिर वहां पूरा। फिर ठंडक ही ठंडक है अनंत काल तक।

तो प्रत्येक जाति का स्वर्ग और नर्क उसके सुख और दुख की कल्पना है। तुम्हें जो दुख है, वह नर्क बन जाता है। तुम्हें जो सुख है, वह स्वर्ग बन जाता है। कहीं न कोई स्वर्ग है, कहीं न कोई नर्क है। नर्क और स्वर्ग की धारण धार्मिक धारणा ही नही है। मनोवैज्ञानिक विक्षिप्तताओं को एक रूप है।

सूफी फकीर स्त्री हुई राबिया। एक दिन लोगों ने उसे देखा वह बाजार में भागी जाती है। एक हाथ में उसने मशाल ले रखी है और दूसरे हाथ में एक पानी से भरा हुआ घड़ा। लोगों ने पूछा राबिया, तू कहां भागी जा रही है? मस्जिद के सामने भीड़ लगी थी, वहीं राबिया रुकी, वहीं लोगों ने पूछा। उसने कहा कि मैं जा रही हूं कि चाहती हूं तुम्हारे स्वर्ग में आग लगा दूं और तुम्हारे नर्क को पानी में डुबा दूं। क्योंकि जब तक तुम स्वर्ग-नर्क की धारणाओं में उलझे रहोगे, तब तक तुम स्वयं को न पहचान पाओगे।

जो स्वयं को पहचान लेता है, वहां एक तीसरा आयाम शुरू होता है, जिसको हम मोक्ष कहते हैं, निर्वाण कहते हैं। यह शब्द दुनिया की और किसी भाषा में नहीं है, क्योंकि दुनिया के किसी भी कोने में धर्म की इतनी गहन खोज नहीं हुई, जितनी गहन खोज हमने की है। जितने गहरे हम पैठे हैं, जैसी हमने डुबकी मारी है, वैसा दुनिया में किसी ने भी नहीं डुबकी मारी। धर्म के मर्म को समझने में हमने जो राज खोले हैं, हमने जो रहस्य पाए हैं, वे किसी ने भी नहीं पाए। जैसे पश्चिम ने विज्ञान के राज और रहस्य पाए, ऐसे हमने धर्म के रहस्य और राज पाए।

ईसाईयत, इस्लाम और यहूदी धर्म, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। तीनों धर्मों में स्वर्ग और नर्क के पार कोई बात नहीं है। तीनों धर्म मनोवैज्ञानिक तल पर ही समाप्त हो जाते हैं। भौतिकवादी वह है जो शरीर पर समाप्त हो जाता है। और ये तीनों धर्म मन पर समाप्त हो जाते हैं।

भारत ने भी तीन बड़े धर्मों को जन्म दिया है--हिंदू, जैन और बौद्ध। तीनों के पास धारणा है मोक्ष की। स्वर्ग और नर्क की बात की है--उनके लिए, जो नासमझ हैं और अभी जो समझ न सकेंगे; जिन्हें अभी आ आम का

और ग गधे का बताना जरूरी है; जिन्हें अभी बारहखड़ी पढ़ानी है। लेकिन जो जानते हैं उनके लिए स्वर्ग और नर्कनहीं; उनके लिए--मोक्ष, निर्वाण।

मोक्ष और निर्वाण बाहर नहीं है, तुम्हारे अंतर्तम का नाम है, तुम्हारी आंतरिकता का नाम है। जिस दिन तुम मन से मुक्त हो जाओगे, उसी दिन तुम मोक्ष को पा लिए। उसी क्षण! यहीं और अभी भी पा सकते हो।

तुम कहते होः

"न स्वर्ग ही कुछ बोलता न नर्क द्वार खोलता

हर आंख में आंख डाल तस्वीर तेरी टटोलता"

वह तुम टटोलते रहो। आंख में कितनी ही टटोलो, तुम्हें अपनी ही तस्वीर दिखाई पड़ेगी। आंख तो दर्पण है, उसमें तुम्हारा ही चेहरा दिखाई पड़ेगा--जितने गौर से देखोगे, तुम्हारा ही चेहरा दिखाई पड़ेगा। और तुम्हारा चेहरा तुम नहीं हो। सच तो यह है कि तुम्हारा असली चेहरा भी तुम भूल गये हो, मुखौटे लगा रखे हैं। एक से एक मुखौटे लोगों ने पहन रखे हैं, चेहरों पर चेहरे पहन रखे हैं। और असली चेहरा भी तुम्हें दिखाई पड़ जाए, तो भी चेहरा तुम नहीं हो, तुम चेहरे के भीतर छिपे हो। जिसको दिखाई पड़ रहा है, वह तुम हो। द्रष्टा तुम हो, दृश्य तुम नहीं हो।

इस सूत्र को गांठ बांध लोः द्रष्टा हो तुम, दृश्य तुम नहीं हो। इसलिए जो भी दृश्य हो जाए, समझ लेना कि यह मैं नही हूं। नेति-नेति! यह मैं नही हूं, यह मैं नहीं हूं--कहते जाना, निषेध करते जाना, इनकार करते जाना। यूं निषेध करते करते जब वही शेष रह जाए केवल द्रष्टा, दर्शन कुछ भी न बचे, दृश्य कुछ भी न बचे, सिर्फ ज्ञाता मात्र रह जाए, साक्षीभाव मात्र रहा जाए, तब जानना, आ गये मोक्ष के द्वार पर, आ गये स्वयं के द्वार पर। और उस एक को जानते ही सब जान लिया जाता है। उस एक को जानने के कला ही ध्यान है। और उस जानने के लिए जो संकल्प है, उस जानने के लिए जो समर्पण है, उसका नाम संन्यास है।

पार्थ, अब ध्यान में डूबो! अब संन्यास में रंगो! यहां से खाली हाथ मत लौट जाना। यहां से झोली भर कर लौटो।

कहते हो तुमः

"सांसों के फासले हैं या कि दूरियां ही दूरियां

न तुम ही कुछ हो बोलते मुख से जुबां न खोलते

चलना है कब तलक मुझे यूं सबके दिल टटोलते"

जब तक तुम्हारी मर्जी हो। यह तुम्हारा निर्णय है। यह कोई दूसरा निर्णय नहीं कर सकता। मैं कहूं भी तो क्या होगा? मैं तो कहूंः अभी मुक्त हो जाओ, इसी क्षण! मगर तुम कहोगे कि जरा पत्नी से तो पूछ लूं। कि घर से पूछ कर नहीं आया। कि घर से जब चला था तो पत्नी ने कह दिया कि एक बात का ध्यान रखना कि संन्यासी होकर मत आ जाना। कि घर से जब चला था, तो मां एकदम रोने लगी थी और उसने कहा, और सब करना, मगर गैरिक वस्त्र पहन कर घर मत आ जाना। कि जब घर से चलने लगा था तो बच्चों ने कहा था, पापा, होश सम्हाल कर रहना वहां; क्योंकि कई दूसरों के पापा हैं, वे पागल होकर आ गये हैं। अपने को बचा कर आ जाना, जा तो रहे हो!

आ गये हो यहां तो कविता करते करते ही मत लौट जाना--कविता तो तुम वहीं कर ले सकते थे! और कविता प्यारी कर लेनी तो बहुत आसान है। मैं तो तुम्हें वह कला देना चाहता हूं कि तुम काव्य बन जाओ।

कविता कब तक करते रहोगे? काव्य बनो! यह तुमने जो कहा है, यह तुम्हारा साक्षात्कार हो, यह तुम्हारी अनुभूति हो। जब आ ही गये हो, तो अब यूं ही मत चले जाना, अब बहाने मत खोज लेना।

मन बहाने खोजने में बहुत कुशल है। बहुत अदभुत उसकी क्षमता है। एक से एक बहाने खोज लेता है। और ऐसे बहाने कि लगें--बड़े प्रामाणिक, बड़े सार्थक। पहले तो मन यही कहेगा कि यह संन्यास और हमारी संन्यास की प्राचीन धारणा में बड़ा भेद है।

निश्चित ही भेद है।

प्राचीन संन्यास की धारणा व्यापक नहीं हो सकी। आंखें हैं, थोड़ा खोल कर आंखें देखो। प्राचीन संन्यास की धारणा व्यापक नहीं हो सकी, क्योंकि व्यापक नहीं हो सकती थी! आखिर कितने लोग संसार को छोड़कर भागेंगे? और भागेंगे तो कहां जाएंगे? अगर सारे लोग भाग कर हिमालय पहुंच जाएंगे तो हिमालय पर भीड़ लग जाएगी जैसी यहां है। तब जिनको वहां भीड़ भाड़ से भागना है, उनको यहां भाग कर आना पड़ेगा।

अमरीका में यह घटना रोज घट रही है। अमरीका में छुट्टी के दिन सारे लोग भागते है एकांत की तलाश में। कोई पहाड़ चला, कोई समुद्र तट पर चला। और समुद्र तट पर तुम देखो! तस्वीरें तुमने देखी होंगी समुद्र तट की। अमरीकी समुद्र तट की तस्वीर देख कर ऐसा लगता है कि हे प्रभु, यह क्या हो रहा है? चलने फिरने की भी जगह नहीं हैं। इतने लोग भरे हुए हैं। इससे तो घर में ही थोड़ा एकांत था। घर में भी थोड़ी जगह थी। अपनी छत पर ही धूप-स्नान ले लेते तो भी एकांत होता; यहां उतना भी एकांत नहीं है।

स्त्रियां और पुरुष अपने अपने छाते लगाए हुए पड़े हैं। सारा समुद्र तट यूं भरा है कि क्या कोई बाजार भरा होगा! और आए थे एकांत की तलाश में! मगर सभी चले आए। अब जब सभी चले आएंगे एकांत की तलाश में, तो बस्ती खाली।

जो समझदार हैं, वे रविवार की प्रतीक्षा करते है, कि जब सब चले जाएं तो मजे से अपने घर में बैठें। एकदम एकांत ही एकांत है। बाजार में बैठे जाओ बीच, तो एकांत है। क्योंकि सब मूरख तो गये समुद्र तट। और समुद्र-तट पर जाने में लगी हैं कारें एक-दूसरे के पीछे, बंपर से बंपर। छह घंटे, आठ घंटे पहुंचने में लगेंगे--बजाते रहो हार्न, सुनते रहो हार्न! और आठ-दस घंटे लौटने में लगेंगे, और दो-तीन घंटे वहां भीड़-भाड़ में पड़े रहना, उल्टे-सीधे थोड़े से रेत में हो लेना, जितनी जगह मिल जाए उतनी करवट बदल लेना--अगर मिल जाए जगह करवट बदलने की तो! नहीं तो एक ही करवट पड़े रहना--और वही आइसक्रीम जो गांव में मिलती थी, वहां खा लेना, और वही कोकाकोला जो गांव में मिलता था, वहां पी लेना, और वही अखबार जो गांव में पढ़ते थे, वहां खरीद कर पढ़ लेना, और वही मूरख जो यहां तुम्हें मिलते थे, उनके ही दर्शन वहां कर लेना, और फिर चले घर!

जितनी दुर्घटनाएं अमरीका में छुट्टी के दिन होती हैं उतनी किसी और दिन नहीं होतीं। चार गुनी ज्यादा। क्योकि अनेक कारें टकराएंगी, अनेक लोग मरेंगे--यह अलग!

सारे लोग भाग कर अगर हिमालय जाएंगे, या सारे लोग अगर आश्रमों में रहेंगे, तो वहां भीड़ हो जाएगी!

पुराने ढंग का संन्यास सार्थक नहीं हो सकता। और फिर इन सारे संन्यासियों को पालेगा-पोसेगा कौन?

थाईलैंड की सरकार को नियम बनाना पड़ा है कि अब कोई भी सरकारी आज्ञा के बिना बौद्ध भिक्षु नहीं हो सकता। क्योंकि चार करोड़ की आबादी में अस्सी लाख बौद्ध भिक्षु हैं--करीब-करीब एक करोड़। मतलब चार आदमी में एक आदमी बौद्ध भिक्षु हो गया। उसका मतलब यह हुआ कि बाकी तीन आदमियों पर उसके भोजन, कपड़े, रहने के इंतजाम का नाहक जुम्मा आ गया। जिससे कुछ लेना-देना नहीं था। वह तुम्हारी छाती पर बैठा

है। और अगर एकाध आदमी और हो जाए तो दो आदमी दो आदमियों की छाती पर सवार हैं। मतलब हर आदमी की छाती पर एक आदमी सवार है।

इनको कौन खिलाए, कौन पिलाए? इनकी हालत बुरी हो गयी है! इनकी हालत दीन-हीन हो गयी है! जो भिक्षु का गौरव था, गरिमा थी, वह कहां रही, खाक रही! इनकी भिखमंगों से बदतर हालत है। इनको लोग देख कर एकदम दूसरी तरफ मुंह कर लेते हैं। और जब किसी देश में सरकार से आज्ञा लेनी पड़े पहले, उस देश में संन्यास का क्या अर्थ रह जाएगा।

चीन में तो कानूनी रोक है कि कोई बौद्ध भिक्षु नहीं हो सकता अब। जो थे, उनको जबरदस्ती काम में लगा दिया गया है। मुल्क भूखा मर रहा है! रूस में कानूनी रोक है। अब कोई ईसाई भिक्षु नही हो सकता कि चले आश्रम में। सब आश्रम बंद कर दिये गये हैं। यह सारी दुनिया में होगा। हिंदुस्तान में कोई पचपन लाख हिंदू संन्यासी हैं। इनके भोजन, इनके वस्त्र, इनके रहने-सहने का खर्च कौन उठाता है? और क्यों कोई उठाए? अगर तुम्हें मोक्ष जाना है तो तुम्हारे लिए दूसरे लोग मेहनत करके नर्क जाएं। चोरी करें, चपाटी करें, तस्करी करें, ब्लैकमार्केट करें, और तुम्हें मोक्ष भेजें! ऐसा तुमने उन पर कौन सा उपकार किया है? और बड़े मजे की बात यह है कि तस्करी कोई करेगा और तुम मोक्ष चले जाओगे उसका माल खा कर! वह नर्क में पड़ेगा, तुम मोक्ष जाओगे! अगर वह नंबर एक के नर्क पड़ेगा, तो तुम नंबर दो के नर्क में पड़ोगे, क्योंकि तुम उससे भी गये-बीते हो। तुम तस्कर का भी खून पी गये। और दूसरे का खून पीने में जरा ख्याल रखना।

मैंने सुना है, एक आदमी को एक मारवाड़ी का खून दिया गया। बीमार था, मर रहा था बिल्कुल; जब उसको खून दिया गया तो पुनरुज्जीवित हो उठा आदमी। उसने खुशी में उस मारवाड़ी को सौ रुपये का नोट दिया। मगर पंद्रह दिन बाद उसकी हालत फिर बिगड़ गयी। वह मारवाड़ी फिर आया। उसको सौ रुपये का लोभ लग गया था। उसने फिर उसे खून दिया। जब उस आदमी को होश आया, तो उसने सिर्फ पच्चीस ही रुपये दिये। मारवाड़ी बड़ा हैरान हुआ। मगर उसने कहा पच्चीस भी कुछ बुरे नहीं हैं, जितने दिये ठीक हैं। पच्चीस भी बहुत हैं।

पंद्रह दिन के बाद वह आदमी की हालत फिर खराब हुई, वह मारवाड़ी फिर आया। फिर उसने खून दिया। उसने पच्चीस भी नहीं दिये! उसने सिर्फ शुक्रिया कहा। मारवाड़ी ने कहा कि भई, कुछ दोगे नहीं? उसने कहा अब क्या लेना-देना? अब तो मेरा भी खून मारवाड़ी का ही है। वह पहली दफा मैं मारवाड़ी नहीं था जब सौ रुपये दे दिये। दुबारा तुम्हारा खून दौड़ रहा था, पचास से ज्यादा मेरी हिम्मत न पड़ी। किसी तरह खींच-तान कर, सोच-विचार कर मैंने पच्चीस दिये। अब तो सिर्फ धन्यवाद। और चौथी दफे जरा सोच कर खून देना।

जाहिर है कि चौथी दफे अगर खून दोगे तो तुम्हारी जेब ही काट लेगा--जब तक तुम खून दोगे, तब तक वह जेब काट लेगा। अब वह खुद ही मारवाड़ी हो गया, अब वह क्यों तुम्हें... ? जिसका तुम खून पीओगे, उसी जैसे हो जाओगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है।

पुराने संन्यास की धारणा तो सार्थक नहीं हुई। और पुराने संन्यास ने काहिल, सुस्तों, आलसियों को, बेईमानों को आकर्षित किया। मुफ्तखोरों को, कामचोरों को आकर्षित किया। असृजनात्मक लोगों को, जो किसी भी तरह से दूसरों की छाती पर बैठ कर जी लेना चाहते थे, ऐसे लोगों को आकर्षित किया। उसने सृजनात्मक और प्रतिभाशील लोगों को आकर्षित नहीं किया। इसलिए पचपन लाख हिंदू संन्यासी हैं। मगर कितने इन पचपन लाख हिंदू संन्यासियों के जीवन में तुम्हें ध्यान की ज्योति जलती हुई दिखाई देती है? इनमें से कितने के जीवन में तुम्हें ईश्वर के साक्षात्कार का बोध होता है? इनमें से कितनों के जीवन में तुम्हें क्रांति का अनुभव होता

है? कहां है वह अंगार? सब राख मालूम होते हैं। होंगे ही। ये हारे-पराजित लोग हैं। ये जिंदगी में नहीं जीत सके, तो अंगूर खट्टे हैं कह कर भाग गये हैं।

मेरे संन्यास की धारणा बिल्कुल भिन्न है, बिल्कुल नयी है, नूतन है। आने वाले मनुष्य के लिए है, भविष्य के लिए है। मैं चाहता हूं ऐसा संन्यासीम जो सृजनात्मक हो, सक्रिय हो, निर्माण करता हो, अपने पैरों पर खड़ा हो। भिखमंगा न हो, भिखारी न हो। सच में ही मालिक हो, स्वामी हो, सिर्फ कहने का स्वामी न हो। और दूसरों का स्वामी होने की चेष्टा में न लगा हो, अपना स्वामी हो। और जगत को कुछ दे जाए, कुछ दान कर जाए, जगत के सौंदर्य में कुछ जोड़ जाए।

और स्वभावतः तुम्हारे मन तो पुरानी धारणाओं से भरे होते हैं। तो तुम जब आते हो यहां, नये नये आते हो--और तुम्हारा नाम तो मैं पहली दफा देख रहा हूं पार्थ, पहली दफा आए हो, नये ही मालूम होते हो, तो तुम्हारे मन में तो सवाल उठेंगे हजार, कि यह संन्यास तो हमारा पुराना संन्यास नहीं। और पुराने के हम बड़े मोही हैं। जो जो पुराना है, सो सो खरा है! जो जो पुराना है, सो सो सोना है! जैसे सत्य कोई शराब है कि जितनी पुरानी हो उतनी अच्छी।

सत्य तो नित नूतन होता है, ताजा होता है। सत्य कोई शराब नहीं है, सत्य तो जागरण है। जैसे सुबह सुबह आंख खुली! वह जो नयी नयी ज्योति जागने की। जैसे सुबह सुबह फूल खिला। जैसे सुबह सुबह की ओस और उसकी ताजगी। जैसे नये नये बच्चे का बोध।

यह संन्यास तो बिल्कुल नया है। यह जीवन विरोधी नहीं है। यह जीवन के प्रति अपार प्रेम से भरा है। मैं तो जीवन को ही परमात्मा कहता हूं। और कहीं खोजना नहीं है--न काबा में, न काशी में, न गिरनार में, न जेरुसलम में। खोजना है अपने में, क्योंकि जीवन तुम्हारे भीतर बह रहा है। कहां खोजने जाते हो? अपने में तलाश लो! और जब मिल जाए अपने भीतर तो बांटो, लुटाओ।

मेरे संन्यासी को बांटना है, लुटाना है। आनंद लुटाना है, आशीष लुटाने हैं।

कविता ही न रह जाए बात कहीं, यह मुझे डर है। इसलिए तुम्हें चेताता हूं, पार्थ। कविता वगैरह करने में तो हमारा देश बहुत कुशल है। हम सदियों से यही काम कर रहे हैं, यही गोरख-धंधा कर रहे हैं। सुंदर से सुंदर गीत हम रच लेते हैं और जीवन?- हमारे असुंदर और कुरूप हैं। बात करानी हो हमसे तो हम आकाश की बातें करते हैं और सरकना हमें जमीन पर भी नहीं आता। हम तारों पर आंखें अटकाए रखते हैं और जमीन के गड्ढों में गिर जाते हैं। जमीन के गड्ढे हमें दिखाई नहीं पड़ते।

यूनान का एक बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी रात आकाश के तारों का अध्ययन कर रहा था और एक कुएं में गिर गया। कुएं पर पाट नहीं थी। गांव का छोटा सा कुआं था! चिल्लाया बहुत जोर से। पास में एक बुढ़िया का झोंपडा था, वह आई। बामुश्किल उस बुढ़िया ने उसे निकाला। ज्योतिषी ने बहुत धन्यवाद दिया बुढ़िया को और कहा कि तुझे शायद पता नहीं कि मैं कौन हूं। मैं राज-ज्योतिषी हूं। बड़े बड़े सम्राट दूर दूर से मुझे बुलाते हैं। हजारों रुपये मेरी फीस है लोगों का भाग्य बताने की। मगर तेरा भाग्य मैं मुफ्त बता दूंगा। तू कल मेरे घर आ जाना। यह मेरा पता रहा।

उस बुढ़िया ने कहा, बेटा, पता तू अपने पास रख! मुझे तेरे घर नहीं आना और न मुझे तुझसे अपना भाग्य दिखाना है। अरे, जिसे अपने सामने का गड्ढा नहीं दिखाई पड़ता, वह क्या खाक मेरा भविष्य बताएगा! तुझे यह पता नहीं कि यह कुआं है, तुझे यह पता नहीं कि आज तुझे कुएं में गिरना है, तू क्या मेरा कल बताएगा! और

तुझे इतनी भी अकल नहीं कि चांद-तारों पर आंखें टिकाए हुए चलेगा और गड्ढों में गिरेगा, कुओं में गिरेगा, स्वाभाविक है।

इस देश में यह घटना घटी है। हमारी आंखें आकाश पर टिकी हुई हैं, तारों पर टिकी हुई हैं। बातें तो बड़ी ऊंची। यूं हमसे उपनिषद बुलवा लो, यूं हमसे वेद की ऋचाएं दोहरवा लो, यूं हमसे गीता गवा लो, मगर हमें जीवन जीना नहीं आता। हम जीवन की कला भूल गये हैं। में पृथ्वी पर रहना नहीं आता। हम प्रेम का शास्त्र भूल गये हैं। हम ईश्वर को खोजते हैं स्वर्गों में और नर्कों में, आकाशों में, पातालों में, अपने में झांक नहीं पातें। अपने से इतने दूर हो गये हैं।

इसलिए अच्छी अच्छी बातों में मत खो जाना, पार्थ! अच्छी अच्छी बातें खूब भटका लेती हैं, भरमा लेती हैं। अच्छी बातों में बड़ा जहर है। अमृत के लेबिल लगे हैं, जहर भरा है बोतलों में। जरा सोच-समझ कर पीना।

और चूंकि मैं बात सीधी सीधी कह देता हूं, खरी-खरी कह देता हूं, इसलिए लोगों को बहुत चोट पड़ जाती है, लोग बड़े तिलमिला जाते हैं। मुझसे लोग नाराज हैं। उनका नाराज होना स्वाभाविक है, क्योंकि मैं उनकी व्यर्थ की बकवास से राजी नहीं हूं।

मैं तुम्हें भूमि पर खड़ा करना चाहता हूं, चांद-तारों की फिक्र बाद में कर लेंगे। कविताएं बाद में हो लेंगी। पहले जीवन के शास्त्र को तो हम समझ लें। बांसुरी बाद में बजेगी, पहले भीतर तो हम अपने गीत को जगा लें। फिर तो बिना पैंरों में बांधे घूंघर और बजने लगते हैं। फिर तो तुम चौंक कर पाओगे कि पैरों में मैंने घूंघर तो बांधे नहीं, फिर यह झनन-झनन, यह आवाज कहां से आ रही है! कि बांसुरी तो मैंने उठायी नहीं और ये प्यारे स्वर कैसे गूंजने लगे! कि कंठ तो मैंने खोला नहीं और ये गीत कैसे झर आए!

तुम शांत हो जाओ, शून्य हो जाओ, ध्यान में डूब जाओ, तो परमात्मा तुमसे गाए। और तब कविता का अर्थ ही और होता है। तब ही उसमें अर्थ होता है। नहीं तो बस शब्दों का श्रृंगार है। जैसे कोई मुर्दा लाश को श्रृंगार कर दे, गहने पहना दे, फूल की मालाएं लगा दे, इत्र छिड़क दे। मर जाता है आदमी तो हम खूब इत्र छिड़कते, धूप दीप जलाते, फूल बरसाते। मगर तो भी आदमी जी नहीं सकता, मर गया है। ऐसी ही हमारी कविताएं हैं--मुर्दा।

आ गये हो तुम यहां, जीवित होने की सम्भावना है। यहां एक रासायनिक प्रयोग चल रहा है जीवन-क्रांति का। उसमें भागीदार बनो। तुम्हारें भीतर जो बीज छिपा है, अंकुरित हो सकता है। आश्वासन है उसके अंकुरित होने का। मगर साहस तो तुम्हें करना पड़ेगा।

तुम पूछते हो, "कब तक भटकना होगा?"

जब तक तुम निर्णय न करोगे, संकल्प न लोगे। जब तक तुम अपने को दांव पर नहीं लगाओगे, तब तक भटकना होगा। आज लगाओ दांव पर, आज भटकाव बंद हो जाए।

दूसरा प्रश्न : भगवान,
जाने क्या तूने कही
जाने क्या मैंने सुनी
पर बात कुछ बन ही गयी!

धर्म ज्योति, बात जब बनती है, तो ऐसे ही बनती है। न तो कुछ कहने से बनती है, न कुछ सुनने से बनती है। शिष्य और गुरु के बीच कहना और सुनना तो गौण है, असली बात तो न कही जाती और न सुनी जाती। जैसे एक दीये से ज्योति दूसरे दीये में सरक जाती है, बस ऐसे ही एक दीये से ज्योति दूसरे दीये में सरक जाती है। जिस दीये से ज्योति सरकती है, उसका कुछ खोता नहीं और जिस दीये को मिल जाती है, उसे सब कुछ मिल जाता है। गुरु का कुछ खोता नहीं, शिष्य को सब मिल जाता है।

तू ठीक कहती है, धर्म ज्योति--

जाने क्या तूने कही

जाने क्या मैंने सुनी

पर बात कुछ बन ही गयी!

मैं भी देख रहा हूं कि बात बन रही है। तुझे देखता हूं तो प्रसन्न होता हूं, आनंदित होता हूं। यह बड़े सौभाग्य से बनती है, बड़ी मुश्किल से बनती है। बनाए बनाए नहीं बनती। लोग लाख उपाय करते हैं तो नहीं बनती। लेकिन अगर कोई समर्पण कर दे अपना, सब छोड़ दे, तो बन जाती है। बन रही है तेरी बात। और बनेगी, और और बनेगी। इस यात्रा का प्रारंभ तो है, अंत नहीं है। यह कली खुलती तो है, लेकित खुलती ही चली जाती है। यह फूल फिर खुलता ही चला जाता है। फिर इसमें कोई अवरोध नहीं है, फिर यह अनंत है। फिर यह विस्तार इतना लेता है जितना आकाश का है। यह फिर परमात्मा जैसा ही विराट हो जाता है। इसमें से ही उदघोषणा उठती है--अहं ब्रह्मास्मि की, अनलहक की। उठेगी वह गंध भी, उठेगा वह गीत भी, जागेगी वह ऋचा भी।

तू चल पड़ी ठीक दिशा में! अब पीछे मुड़ कर मत देखना।

तीसरा प्रश्न : भगवान, आप हर बार दर्शन के समय मुझे कहते होः "अब तुम आ ही जाओ।" मेरा यहां आने को मन भी बहुत है। फिर भी मैं हमेशा कि लिए क्यों नहीं यहां आ पाती? क्या मैं असुविधा से या नये से घबराती हूं? क्या मुझमें साहस की कमी है? क्या है जो मैं चाहते हुए भी सदा के लिए आश्रमवासी नहीं हो जाती? भगवान, मुझे मेरी कमी बताओ।

नीलम, कोई कमी हो तो मैं बताऊं! कमी कुछ भी नहीं है। रही मेरे तुझसे यह बार बार कहने की बात कि "अब तू आ ही जा", उसका राज अलग है।

स्वेट मार्डन मे अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक चित्र प्रदर्शनी को देखने गया। वहां मैंने एक अदभुत चित्र देखा, जो मेरी समझ में आए भी और न भी आए। सो मैं टकटकी लगाए उसे देखता ही रहा, देखता ही रहा। उसका चित्रकार भी पास ही था। उसने मुझे बहुत देर तक चित्र के पास खड़ा देखा तो मेरे पास आया और पूछा, आपको कुछ पूछना तो नहीं हैं? यह चित्र मैंने ही बनाया है। आप बड़ी देर से टकटकी लगाए देख रहे हैं।

स्वेट मार्डन ने कहा, जरून पूछना है। यह कुछ समझ में आता-सा लगता है, कुछ समझ में नहीं भी आता। इस चित्र का राज जानना चाहता हूं। इस चित्र को तुमने शीर्षक क्या दिया है? इस पर शीर्षक लिखा हुआ नहीं है। चित्रकार ने कहा, शीर्षक मैंने जान कर इसको दिया नहीं। लेकिन अगर तुम पूछो तो इसका शीर्षक है : समय।

स्वेट मार्डन और चौंका--यह कैसा समय का चित्र है! क्योंकि चित्र में था एक आदमी, जिसका सिर बड़ा अजीब था--पीछे से बिल्कुल गंजा, खोपड़ी बिल्कुल सपाट, सिर्फ आगे बालों की एक कतार, वह भी आगे मुंह को ढांके हुए लटकी। मुंह दिखाई ही न पड़े, बस बाल ही बाल। और पीछे सिर बिल्कुल सपाट। यह कैसे समय का चित्र है!

स्वेट मार्डन ने कहा, तुमने और उलझन में डाल दिया।

उस चित्रकार ने कहा, यह समय का चित्र इसलिए है कि समय को अगर पकड़ना हो तो आगे से पकड़ सकते हो, पीछे से नहीं। एक बार क्षण तुम्हारे सामने से गुजर गया, फिर पीछे से कितना ही पकड़ना चाहो, पकड़ने को चोटी भी हाथ नहीं लगेगी। खोपड़ी सपाट है। फिर हाथ फेरते ही रह जाओगे; हाथ मलते ही रह जाओगे। समय को पकड़ना हो तो अवसर आता उसके पहले पकड़ लेना होता है। समय के सिर पर बाल आगे की तरफ हैं, पीछे की तरफ नहीं।

यह बात मुझे भी प्रीतिकर लगी। समय को आगे से ही पकड़ना होता है।

नीलम, मुझे पता है कि तेरे आने की घड़ी करीब आ रही आ रही, आ रही,। और मैं समय को पहचानता हूं। सो मैं पहले से ही पकड़ लेना चाहता हूं। इसलिए तुझसे कहता हूं, अब तू आ ही जा! मैं पहले से ही कह रहा हूं कि अब तू आ ही जा, क्योंकि अब आने की घड़ी बिल्कुल करीब आ रही हैं, अब ज्यादा देर नहीं है। तुझमें साहस की कमी नहीं है। साहस की कमी होती तो तू संन्यासिनी बन न सकती थी। असुविधा से भी तुझे डर नहीं है। मैं तुझे भलीभांति पहचानता हूं। जिन लोगों पर मुझे भरोसा है, उन थोड़े से लोगों में तू एक है। मेरे चुने हए थोड़े से लोगों में तेरी गिनती है। कोई कमी भी नहीं है। लेकिन फिर भी हर चीज का एक समय होता। जैसे वसंत आता और फूल खिलते।

समय करीब आ रहा है तेरा। किसी भी दिन आना हो जाएगा। मेरी तरफ से मैं तुझे निमंत्रण दिये जा रहा हूं, कि तुझे ऐसा न लगे कि मैंने तुझे अभी बुलाया नहीं है। तो जब समय आए, तो मेरी तरफ से तुझे पूरा आश्वासन रहे कि मैं तो तुझे बहुत बुला चुका हूं, इसलिए मेरी तरफ से कोई बाधा नहीं मेरी, तरफ से तेरा स्वागत है।

एक बहुत बड़े अरबपति, मार्गन से किसी ने पूछा कि तुम गरीब घर में पैदा हुए और तुमने इतनी अरबों की संपत्ति इकट्ठी कैसे की? तो मार्गन ने कहा, मुझे अवसर पहचानने की कला आती है। और जब अवसर आता है तो मैं तत्क्षण उस पर सवार हो जाता हूं। पूछने वाले ने कहा, अवसर तो मैं भी पहचानता हूं, मगर जब तक मैं पहचान पाता हूं तब तक अवसर निकल जाता है। फिर कितनी ही छलांग लगाते रहो, घोड़ा तो निकल ही गया। फिर कूदते रहो वहीं के वहीं। सवाल यह है कि पहले से कैसे पता चले कि अवसर आ रहा है? कि ऐसा न हो... क्योंकि अवसर ठहरता तो नहीं। वह तो भागा जा रहा है, जैसे तेज घोड़ा रफ्तार में तुम्हारे पास से गुजर रहा हो। तुम्हें दिखाई पड़े, दिखाई पड़े, तुम तैयारी करो, धोती इत्यादि खोंसो अपनी, लंगोट इत्यादि बांधो, साफा वगैरह कसो, श्रृंगार वगैरह करो, तब तक तो घोड़ा गया!

मुल्ला नसरुद्दिन से मैंने एक दिन पूछा, बड़े मियां बिल्कुल तैयार बैठे हो, कहां जा रहे हो? कहा कि बम्बई जा रहा हूं। मगर बड़े गुस्से में कहा। मैंने कहा बात क्या है? बड़े नाराज हो! हवाई जहाज से जा रहे हो, ट्रेन से जा रहो हो, कार से जा रहे हो, काहे से जा रहे हो? कहा, हेलीकाप्टर से जा रहे हैं। मैंने कहा कि हेलीकाप्टर तो अभी यात्रियों के लिए चलते भी नहीं। मुल्ला ने कहा, चलने लगेंगे। जब तक मेरी पत्नी श्रृंगार करके तैयार होगी, चलने लगेंगे। तुम देख लेना, चलने लगेंगे। उसी लिए तो मैं भन्नाया हुआ बैठा हूं। अभी तो

साड़ी ही तय नहीं हुई कि कौन सी पहननी है। फिर पहन कर भी बदल लेती है। फिर घंटों दर्पण के सामने खड़ी रहती है।

तुम अगर यूं श्रृंगार करोगे तो समय और समय के साथ आया अवसर तो तेजी से भागा जा रहा है, वह तो एक पल ठहरता नहीं! समय तुम्हारे लिए नहीं रुकेगा।

तो मार्गन ने कहा, समय तुम्हारे लिए रुकेगा नहीं। वह तो समय आया कि तुम छलांग लगा कर सवार हो जाना। और उसने कहा, यह आप भी खूब बात करते हैं! अरे, जब तक मैं पहचानूंगा कि आ गया, छलांग लगाऊंगा, तब तक तो वह जा चुका!

हमारे पास अच्छा शब्दा है--आ गया। इसको दो ढंग से तुम लिख सकते हो। इसको अगर इकट्ठा लिखो--आगया, तो इसका मतलब होता है--आ गया। और इसको दो टुकडों में तोड़ दो--आ, गया--मामला खतम! आ, गया! यह शब्द बड़ा प्यारा है। इसमें बड़ा राज है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है कि जो इतने जल्दी अर्थ बदल ले। बस जरा सा तोड़ देना है आ को गया से। वसंत आगया, एक; और वसंत आ, गया! यूं हवा की तरह चला जाता है।

तो मार्गन ने कहा, उसका राज है। और मार्गन ने जो कहा उसे तू समझ लेगी, नीलम, तो क्यों मैं तुझसे बार बार कहता हूं; जब भी तू दर्शन करने आती है, तभी मैं तुझसे कहता हूं। अभी तू यहां है भी महीने-डेढ़ महीने से, आयी भी नहीं शायद इसी डर से नहीं आ रही है दर्शन को, क्योंकि तू आयी और मैंने कहा। और तू लाख पूछे, तू आएगी, मैं कहूंगा, फिर भी कहूंगा कि अब तू आ ही जा!

तो मार्गन ने जो उत्तर दिया था, वह तुझे समझ लेना चाहिए। मार्गन ने कहा कि इसका राज एक है उछलते ही रहो। कूदते ही रहो। तुम इसकी फिक्र ही मत करो कि अभी घोड़ा आया है कि नहीं, तुम कूदते ही रहो! जब आया तब चढ़ जाना; नहीं आया तो कूदते रहना। यूं कवायद भी होगी। आ गया तो चढ़ गया और नहीं आया तो व्यायाम कर रहे हैं।

ऐसे जब भी तू आती है, तो मैं कहता हूं अब तू आ ही जा! तू सिर्फ इतना ही समझना कि मेरी आदत कूदना है। जब आ आएगी, तभी सवार हो जाएंगे। यूं तो सवार हो ही गये हैं, थोड़ी देर-अबेर है। वह मुझे भी पता है। क्योंकि जिस दिन मुझे लगेगा कि अब समय आ गया, उस दिन यह नहीं कहूंगा कि अब तू आ ही जा--तेरे को चेताए देता हूं--उस दिन कहूंगा, अब जाना मत! मामला खतम! फिर दरवाजे के बाहर संत निकलने भी नहीं देगा। और तू ही पंजाबी नहीं हौ, संत भी पंजाबी है।

और संत कृपाण चलाने में बड़ा कुशल है।

जब पहले पहले संत आया था, तो ध्यान वगैरह करता ही नहीं था, एकदम कृपाण चलाता था। ध्यान क्या करता था, आसपान बिल्कुल मैदान साफ हो जाता था, खाली कर देता था, ऐसी कृपाण चलाता था, चारों तरफ! मुझसे लोग आकर कहते भी थे कि भई, यह किस तरह का ध्यान करता है?

मैं कहता, यह पंजाबी है। यह ध्यान कर रहा है, यही क्या कम है! करने दो। कृपाण चलाता है, चलाने दो। फिर इसका कृपाण का बेचना पुश्तैनी धंधा है। इसके बाप, बाप के बाप यही काम करते रहे हैं--कृपाण बनाना और बेचना। तभी तो उसको पहरे पर मैंने रखा है। वह हाथ से ही कृपाण चला दे, कृपाण की भी जरूरत नहीं है।

तो वह नीलम, तेरे को निकलने ही नहीं देगा। जिस दिन मैंने कहा कि बस, अब जाना मत, संत को खबर मिल जाएगी; कि फिर तू लाख उपाय कर, वह बाहर नहीं निकलने देगा। वह दोहरे काम करता है। जिसको कह

देता हूं, भीतर मत आने देना, उसको भीतर नहीं आने देता; जिसको कह देता हूं, बाहर मत निकलने देना, बाहर नहीं निकलने देता। वह मुझको ही नहीं बाहर निकलने देता और किसी को क्या निकलने देगा!

कुछ कमी नहीं है तुझमें, सिर्फ समय का... थोड़ी देर और। और ज्यादा देर भी नहीं है। जल्दी ही तू पाएगी कि मैं कहूंगा कि बस, अब खतम; अब जाना-करना नहीं। और वह मैं जानता हूं कि जिस दिन मैं कहूंगा, सब खतम, अब जाना नहीं, उस दिन संत को रोकने की जरूरत भी नहीं पड़ेगी, तू जा नहीं सकेगी, तू इंच भर नहीं हिल सकेगी। उतना भरोसा मुझे मेरे संन्यासियों पर है!

अभी जर्मनी के प्रोटेस्टेंट चर्च ने मेर खिलाफ एक किताब लिखी है। उसमें और खिलाफत में खोजने की बहुत कोशिश की है, लेकिन जिस आदमी ने लिखा है उसको मेरी सारी किताबें पढ़नी पड़ी होंगी। पढ़ते पढ़ते दिखता है वह प्रभावित हो गया। पढ़ते-पढ़ते कई बातें उसको जंच गयीं। लेकिन वह है तो प्रोटेस्टेंट चर्च की सेवा में नियुक्त। पैसे तो उसको उसके मिलने वाले थे।

तो उसने लिखी तो है किताब, मगर किताब जाहिर करती है कि वह आदमी प्रभावित हो गया है। खूब प्रभावित हो गया है! इसलिए उसने कुछ बातें जो नहीं लिखनी चाहिए थीं, वे भी लिख दी हैं--जो कि वस्तुतः मेरी निंदा नहीं करतीं, खंडन नहीं करतीं, बल्कि अनजाने रूप से प्रशंसा ही करती हैं। उसमें एक बात उसने यह भी लिखी है कि और चाहे कुछ भी हो, एक बात तो हमें इस व्यक्ति और इस व्यक्ति के साथ चलने वाले संन्यासियों से सीखनी पड़ेगी कि आज पृथ्वी पर इसके संन्सासी इस व्यक्ति को जितना प्रेम करते हैं, उतना है कोई ईसाई जीसस को प्रेम करने वाला? तो हमे यह राज खोजना पड़ेगा कि बात क्या है? आखिर क्यों इतने लोग इस व्यक्ति को प्रेम करते हैं?

उस व्यक्ती ने यह अंगीकार किया है कि ये व्यक्ती अगर जरूरत पड़े तो मर सकते हैं, जीवन अपना गंवा सकते हैं। आज कौन है जो जीसस के लिए जीवन गंवाने को तैयार हो? उसने खुद ही अंगीकार किया है और कहा है कि इस संबंध में भी हमें शोध करनी चाहिए, कि क्या बात खो गयी है?

आज महावीर को मानने वाले हैं, लेकिन कितने लोग महावीर के लिए जीवन गंवाने को राजी होंगे? और बुद्‌ध को मानने वाले हैं, कितने लोग बुद्ध के लिए जीवन गंवाने को राजी होंगे? लेकिन उसका कारण नहीं है कि बुद्ध और महावीर या जीसस में कोई कमी है। उसक कुल कारण इतना है कि जो लोग आज बुद्ध को मानते हैं, उन्होंने खुद तो माना नहीं बेचारों ने, उनके बाप-दादों ने मनवा दिया है। जो लोग जीसस को मानते हैं, उनको तो जीसस का कुछ पता नहीं, मां-बाप ने संस्कार डाल दिये हैं। मजबूरी है तो मानते हैं। औपचारिक मानना है।

तुम जो मुझे मान रहे हो, तुमने जो मुझे प्रेम दिया है, वह किसी मजबूरी में तो नहीं। सारी असुविधाओं के बावजूद दिया है। सारी मजबूरियां तुम्हें मुझसे तोड़ने के लिए हैं, मुझसे जोड़ने के लिए तो कोई मजबूरी नहीं है। मुझसे तोड़ने के लिए तो हजार कारण हैं--कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है। मुझसे जोड़ने का तो क्या कारण है--सिवाय प्रेम के?

तो मैं जिस दिन कह दूंगा, नीलम, तुझे कि अब जाना नहीं, तू खुद ही नहीं जाएगी। तू भी उस दिन की प्रतीक्षा कर रही है, वह भी मुझे मालूम है। लेकिन अभी मैं तुझसे कह रहा हूं, अब तू आ ही जा। यह तब तक कह रहा हूं जब तक मुझे लगेगा कि अभी तेरी वहां जरूरत है। जिस दिन मुझे लगेगा वहां का काम पूरा हो गया, उस दिन कह दूंगा अब जाना नहीं, अब कहीं जाना नहीं। उस दिन तेरे लिए यह संसार ही, यह गैरिक संसार ही सब कुछ होगा--तेरा संसार होगा।

और तू सौभाग्यशाली है, क्योंकि तेरे पति कुछ तुझसे कम मुझे प्रेम नहीं करते। तेरी एक ही बेटी है, वह तुझसे कुछ कम मुझे प्रेम नहीं करती।

सत्य प्रिया ने मुझसे पूछा है, ठीक तेरे ही जैसा एक परिवार सत्य प्रिया का है। सत्य प्रिया के पिता, अद्वैत बोधिसत्व मेरे संन्यासी हैं। उसकी मां, कृष्णा मेरी संन्यासी है। उनको जब मैंने कह दिया कि बस आ जाओ, वे आ गये! न्यायाधीश के बड़े पद पर थे, लात मार दी! ... उसने आज एक प्रश्न पूछा है कि मैं आपको प्रेम करती हूं, मेरे पापा आपको प्रेम करते हैं, मेरी मम्मी आपको प्रेम करती है, आप साफ साफ कहें कि हम तीनों में से कौन आपको ज्यादा प्रेम करता है?

उसने मुझे मुश्किल में डाल दिया!

सत्य प्रिया, तुम तीनों मुझे एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर प्रेम करते हो!

और वही अवस्था नीलम के परिवार की है। वहां भी वही मुश्किल होगी अगर कोई मुझसे पूछे बैठे। अगर नीलम की बेटी प्रिया मुझसे पूछे बैठे कि कौन हम तीनों में से आपको ज्यादा प्रेम करता है, तो वही मेरी मुश्किल हो जाएगी खड़ी। एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर!

तो तू जिस दिन आ जाएगी, उस दिन तेरे पति यहां होंगे, तेरी बेटी यहां होगी। ठीक समय की राह देख रहा हूं। उस दिन कह दूंगा, बस, अब जाना मत!

कमी कुछ भी नहीं है। कमी किसी में भी कुछ नहीं है। आदमी पूर्ण ही पैदा होता है। उपनिषद कहते हैः हम पूर्ण से आते हैं। और जो पूर्ण से आता है, वह पूर्ण है। और यही तो राज है कि पूर्ण से इतने पूर्ण पैदा होते हैं, फिर भी पीछे पूर्ण शेष रहता है। पूर्ण में कुछ कमी नहीं होती। पूर्ण का अर्थ ही यही होता है कि जिसमें से कितना ही निकाल लो, तो भी कुछ न निकले। और कितना ही डाल दो, तो भी कुछ न जुड़े। पूर्ण उतना ही रहता है, चाहे निकालो, चाहे जोड़ो।

हम सभी पूर्ण हैं, सिर्फ हमें होश नहीं। होश दिलाने का काम मेरा है। तुम्हें मैं पूर्ण नहीं बनाता, तुममें कोई कमी नहीं है जिसको पूरा करना है, पूरे तुम हो, सिर्फ तुम्हें पता नहीं--अपनी ही पूर्णता का तुम्हें पता नहीं।

विवेकानंद अक्सर एक कहानी कहा करते थे, वह कहानी प्रीतिकर है।

एक गर्भिणी सिंहनी ने छलांग लगायी एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर। और छलांग में कुछ ऐसा हुआ कि उसका गर्भ गिर गया। ठीक समय होगा शायद बच्चे के पैदा होने का। बच्चा पैदा हो गया। वह तो छलांग लगा कर चली भी गयी। नीचे से भेड़ों का एक झुंड गुजर रहा था, वह बच्चा भेड़ों के झुंड में गिर गया और भेड़ो ने उस बच्चे को पाल लिया। वे उसे दूध पिलाती रहीं। वह बच्चा भेड़ों में ही बड़ा हुआ। तो वह अपने को भेड़ समझता था, स्वभावतः, भेड़ों मे बड़ा हुआ, भेड़ समझा। जैसे हिंदूओं में बड़े हुए तो हिंदू और मुसलमानों में बड़े हुए तो मुसलमान और ईसाईयों में बड़े हुए तो ईसाई। ऐसा ही वह सिंह भेड़ो में बड़ा हुआ, तो अपने को भेड़ समझता था।

बड़ा हो गया, सिंह था, मगर शाकाहारी था, घास-पात चबाता। और जैसे भेड़ों के मेमने घसर-पसर बीच बीच में चलते हैं भेड़ों के डर के मारे, बड़े बुजर्गों को आसपास करके अंदर अंदर घुसे रहते हैं, ऐसे ही वह भी घुसा रहता। लगता सबसे ऊंचा, अलग दिखाई पड़ता, दूर से दिखाई पड़ता! मगर उसे क्या पता? उसे क्या होश! और न भेड़ों को कुछ दिक्कत थी, क्योंकि उन्होंने उसे धीरे धीरे बढ़ते देखा था, इसलिए पता ही नहीं चला था।

मैं एक आदमी का जानता हूं जिसके घर में भैंस का बच्चा पैदा हुआ, वह उसको रोज उठाकर टहलता। मैंने उससे पूछा, तू यह क्या करता है? उसने कहा कि तुम देखो; मैं बड़ी भैंस को उठा कर टहलना चाहता हूं, उसका अभ्यास कर रहा हूं। और उसने अभ्यास कर लिया। अब भैंस का बच्चा रोज रोज बड़ा होता चला गया और वह रोज रोज उसको लेकर टहलता गया। अभ्यास बढ़ता चला गया। उसको कभी पता चला नहीं कि बच्चा बड़ा हो रहा है। आखिर में जब बच्चा बिल्कुल भैंस हो गया, तब भी वह उठा कर घूम सकता था उसको। ऐसे तुम भैंस को न उठा सकोगे। ऐसे उसको भी भरोसा नहीं आता था कि यह सफल हो जाएगा, मगर हो गया सफल। क्रमशः जो बात घटती है, उसका पता नहीं चलता।

तो न भेड़ों को पता चला, न सिंह को पता चला। सिंह समझता मैं भेड़ हूं, भेड़ें भी समझतीं अपना बच्चा है। है जरा कुछ अजीब सा, कुछ भिन्न सा लगता हैं, मगर कभी कभी भिन्नता भी हो जाती है।

एक दिन एक सिंह ने उस भेड़ों के झुंड पर हमला किया। वह सिंह तो देख कर चौंक ही गया। उस सिंह को तो भरोसा ही नहीं आया। बूढा सिंह था, जिंदगी गुजर गयी, अपने को अनुभवी समझता था, आज पता चला कि क्या खाक अनुभवी हूं, यह क्या हो रहा है! भेड़ें भाग रही हैं, उनके बीच में एक सिंह भी घसर-पसर भागा जा रहा है! और मेमनों की तरह आवाज कर रहा है! वह सिंह तो भूल ही गया भेड़ों को पकड़ने की बात। वह तो इस सिंह को पकड़ने दौड़ा। मगर इसको पकड़ना भी बड़ा मुश्किल हुआ, क्योंकि वह सिंह भी भागा। था तो सिंह, भागा तेजी से! और जवान था! और यह बुढ़ा था। बामुश्किल पकड़ पाया। हांप गया बूढ़ा, तब पकड़ पाया। और जब पकड़ लिया तो वह बिल्कुल मेमने की तरह रोने-गिड़गिड़ाने लगा, मिमियाने लगा, कि मुझे छोड़ दो, कि मुझे मत मारो, कि देखो मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा!

उसने कहा, तेरे को कौन मार रहा है, कौन तेरे को कुछ कर रहा है? थोड़ा सुन भी तो!

वह कहे, मुछे कुछ सुनना नहीं, मुझे जाने दो। मेरे सारे संगी-साथी जा रहे हैं। मगर उस बूढ़े सिंह ने न सुना। उसे घसीट कर ले गया पास में ही एक पोखरे के पास, एस छोटी सी तलैया के किनारे और कहा कि मूरख, मेरे साथ आ! मगर वह घसिटता पीछे।

किसी तरह खींच कर उसको ले गया तलैया के पास और कहा कि देख झांक कर, हम दोनों के चेहरे झांक कर देख पानी में, यह पानी के दर्पण में देख! मजबूरी में देखा उसने। देखा तो दंग रह गया! एक जैसे चेहरे थे! और कई बार पानी में से गुजरते वक्त उसे भी शक-शुबह तो उठा था कि उसका चेहरा भेड़ों के चेहरों से भिन्न मालूम पड़ता है, रंग-ढंग भी भिन्न मालूम पड़ता है, मगर सोचता था कि होगा, क्या करोगे, प्रकृति की भूल-चूक हो गयी होगी। समझा लेता था मन को, संदेह को दबा देता था। आज बात बिल्कुल साफ हो गयी। और एक सिंहनाद उठा उसके भीतर से, प्राणों के प्राणों की गहरी से गहरी कोर से उठी आवाज, सारा जंगल दहल गया! उस बूढ़े सिंह ने कहा, अब तू समझा कि तू कौन है? उसने कहा कि मैं समझा। धन्यवाद! कितना अनुग्रह मानूं थोड़ा। न तुम मुझे घसीट कर लाते, न तुम इतना श्रम उठाते, न मैं समझ पाता। मैं भेड़ ही रहता और भेड़ ही मर जाता।

नीलम, कमी तो तुझमें भी कुछ नहीं, किसी में कुछ नहीं। तुम सब सिंह हो, मगर भेड़ों के बीच पैदा हुए हो, भेड़ों के साथ बड़े हुए हो, अपने को भेड़ ही मान कर बैठ गये हो। मेरा कुल काम इतना है कि किसी तरह घसीट कर तुम्हें दर्पणों के पास ले आऊं। तुम्हें पहचान करा दूं कि तुम कौन हो। एक बार तुम्हें होश जाए तुम कौन हो--और सिंहनाद उठेगा। और तत्क्षण जीवन बदल जाएगा। फिर कुछ ऐसा नहीं कि अभ्यास करना पड़ेगा कि अब भेड़ से हम सिंह कैसे हो जाएं। कुछ अभ्यास नहीं करना होता।

धर्म क्रांति है, अभ्यास नहीं। धर्म नया जन्म है, अभ्यास नहीं। जो अभ्यास करते हैं उनको धर्म का कभी पता ही नहीं चलता है।

इसलिए धर्म केवल सदगुरु के पास घटित होता है।

बुद्ध के पास जो थे, उनको घटित हुआ। उनको बुद्ध से ऐसा प्रेम था जैसे तुम्हारा मुझसे प्रेम है। वे बुद्ध के लिए मरते। जो जीसस के साथ थे, वे जीसस के लिए मरने के लिए तैयार थे। मगर जो ईसाई हैं आज, उनकी तो कोई जीसस से पहचान नहीं। और जो बौद्ध हैं आज, उनकी बुद्ध से कोई पहचान नहीं। जबरदस्ती के बौद्ध है, जबरदस्ती के ईसाई हैं, जबरदस्ती के जैन हैं। औपचारिक हैं, पैदाइशी हैं, संस्कारगत हैं। उनका खुद का कोई चुनाव नहीं है।

तुमने मुझे चुना है! और तुमने चुना है सारी अड़चनों के बावजूद। समाज विरोध करेगा, तुम्हें मुश्किलें उठानी पड़ेंगी, तुम्हें हजार बाधाएं झेलनी पड़ेंगी। तुम्हारा अपमान होगा, अनादर होगा, लोग हंसेंगे, निंदा उड़ाएंगे; लोग तुम्हें जितनी तकलीफ दे सकते हैं, देंगे--और जैसे जैसे मेरा काम फैलेगा, जैसे जैसे मेरे संन्यासी फैलेंगे, वैसे वैसे लोगों की तुम्हारे प्रति यातना देने की प्रक्रिया गहन होती चली जाएगी--लेकिन सारी अड़चनों के बावजूद भी तुमने निर्णय लिया है मेरे साथ रहना है। तुम में साहस है। दुस्साहस है! तभी यह प्रेम संभव हुआ है।

और कमी तो कुछ भी किसी में नहीं है। यही तो मेरी मौलिक उदघोषणा है कि तुम पूर्ण से आए हो और पूर्ण हो। वेद कहते हैंः अमृतस्य पुत्रः, कि तुम सब अमृत के पुत्र हो! वही मैं तुमसे कहता हूं, पुनःपुनः--कोई कमी नहीं है। इसलिए कुछ भराव नहीं करना है। न कोई साधना करनी है, न कोई अभ्यास करना है--सिर्फ पहचान, प्रत्यभिज्ञा। एक बार अपने से मुलाकात करनी है।

आखिरी प्रश्नः भगवान, क्या आप सच ही मारवाड़ियों की बुद्धि के कायल हैं? क्या मारवाड़ी होना सच ही में गौरव और गर्व की बात है? और क्या मैं भी मारवाड़ी हो सकता हूं?

कृष्णतीर्थ भारती, पहली तो बात यह कि जैसे कवि जन्म से कवि होते हैं, कोई कवि हो नहीं सकता, वैसे मारवाड़ी जन्म से मारवाड़ी होते हैं, कोई मारवाड़ी हो नहीं सकता। लाख उपाय करो, कच्चे रह जाओगे। किसी असली मारवाड़ी के हाथ में पड़ गये, धोखा खा जाओगे।

मारवाड़ियों को तो गैर-मारवाड़ी बनाया जा सकता है--मैंने अनेक को बना लिया है, यहां मौजूद हैं। जब मिले थे तो तो मारवाड़ी थे, अब बिल्कुल मारवाड़ी नही हैं--मगर कोई कीमिया नहीं है दुनिया में, जो गैर-मारवाड़ी को मारवाड़ी बना दे। असंभव! यह बात बड़ी मुश्किल है, जो तुम पूछ रहे हो कि क्या मैं भी मारवाड़ी हो सकता हूं। हो भी गये तो नकली रहोगे। और कोई असली तुम्हें झटका दे जाएगा।

और मारवाड़ी हैं तो खूबी के लोग! बुद्धि की तो उनकी प्रशंसा करनी ही होगी! उसमें तो कोई शक ही नहीं है। कायल तो मैं हूं। बात गौरव और गर्व की ही है।

एक मारवाड़ी के संबंध में कुछ कहूंगा--ज्यादा की कहने की बात भी नहीं। कहावत है न कि हंडिया का केवल एक चावल देख लेना पड़ता है, पक गया तो सब पक गया! तो एक मारवाड़ी को पहचान लिया तो सब मारवाड़ी पहचान लिए। क्योंकि मारवाड़ी का गणित एक, उसका हिसाब एक, उसकी किताब एक।

चंदूलाल मारवाड़ी को तुम जानते हो, उसी को एक चावल की तरह चुन लें।

चंदूलाल मारवाड़ी मुल्ला नसरुद्दिन से बोला, बड़े मियां, पांच रुपये उधार दीजिए।

नसरुद्दिन ने कहा, परंतु मैं तो तुम्हें पहचानता भी नहीं हूं।

चंदूलाल ने कहा इसलिए तो आपसे मांग रहा हूं, क्योंकि पहचान के लोग मुझे उधार देते ही नहीं!

सेठ चंदूलाल की प्रेमिका उनसे पूछ रही थी कि इसका क्या सबूत है कि तुम मुझे प्रेम करते हो? चंदूलाल ने कहा, इसका इससे बड़ा सबूत तो यही है, और इससे बड़ा क्या सबूत हो सकता है, कि जब कोई तुम्हें मूर्ख, चुड़ैल, कुतिया आदि कहता है तो मुझे एकदम क्रोध आने लगता है। और कल ही मुझे पता चला है कि बैंक में तुम्हारे दो लाख रुपये जमा हैं। अरे, अब और इससे ज्यादा क्या सबूत हो सकता है कि मुझे तुमसे प्रेम हो गया है!

मारवाड़ी की अपनी भाषा है, अपना ढंग है।

चंदूलाल गंजे हैं। नाई से बोले, मेरे सिर पर बाल तो बहुत कम हैं, तुम्हें मुझसे कम पैसे लेने चाहिए। पर नाई भी तो था मारवाड़ी, बोला, जी, मैं आपसे बाल काटने के पैसे तो लेता ही नहीं, बाल ढूंढने के पैसे ले रहा हूं।

एक दिन चंदूलाल ने मारवाड़ियों के कंजूस होने की बात सुनी तो उसे बहुत जोश आ गया। उसने तुरंत घर जाकर तिजोड़ी खोली और एक चमचमाता हुआ रुपया निकाला। मन में सोचा कि गर्मी के दिन हैं, आज इस रुपये का जूस पीता हूं। जूस की दुकान दूर थी, गर्मी बहुत थी, पर वह पैदल ही गया। भयंकर गर्मी के कारण उसके सारे शरीर से पसीना निकल रहा था। रुपये को उसने मुट्ठी में कस कर पकड़ रखा था। रुपया पसीने से भीग रहा था। जब जूस की दुकान पर जाकर उसने मुट्ठी खोली, तो रुपये पर आए पसीने को देख कर उसका हृदय पिघल गया। सारा जोश ठंडा पड़ गया। वहीं पर रोने लग गया। रुपये से बोला, तू मुझसे बिछुड़ना नहीं चाहता। अरे मेरे प्यारे, इसी कारण तो तेरे आंसू आ गये! भगवान लाख कहें, मैं इतना निर्दयी नहीं हो सकता।

वह तुरंत घर लौट आया और रुपये को वापस तिजोड़ी में बंद करके जो शांति उसे अनुभव हुई वह क्या लाख जूस पीने से अनुभव हो सकती थी! अमृत पीने से भी अनुभव नहीं हो सकती थी।

राखी के दिन एक ब्राह्मण ने चंदूलाल के हाथ पर राखी बांधी। चंदूलाल ने उसे एक पाई पकड़ा दी। ब्राह्मण ने सोचा चवन्नी दी होगी, परंतु हाथ पर घिस कर देखा तो बहुत बुरा लगा। उसने पाई वापस देते हुए कहा, पाई, पाई न पाई।

चंदूलाल किसी से कम तो नहीं। उन्होंने राखी लौटाते हुए कहा, राखी, राखी न राखी।

चंदूलाल मारवाड़ी एक दिन बड़े तैश में आकर पोस्टमास्टर के पास पहुंचा और बोला कि जनाब, कुछ दिनों से मेरे पास बहुत धमकी से भरे हुए पत्र आ रहे हैं। मैं इस विषय में कुछ करना चाहता हूं।

पोस्टमास्टर बोला, जरूर करिये, चंदूलाल जी! डाक के द्वारा किसी को भी धमकी देना गैर-कानूनी है। लेकिन क्या आप धमकी भरे पत्र भेजने वालों का पता बता सकते हैं?

क्यों नहीं, क्यों नहीं! अरे, यही हरामजादे इनकमटैक्स वाले हैं! चंदूलाल मारवाड़ी ने जवाब दिया।

चंदूलाल और उनकी पत्नी रेल से उतरे और स्टेशन के बाहर जाकर अपनी पत्नी से बोले देखो, तुम आखिर भुलक्कड़ की भुलक्कड़ ही रहीं। ये अपना छाता तो तुम वहीं डिब्बे में ही छोड़ आयी थीं। वह तो भला हो मेरा जो मुझे याद रहा, तो मैं अपने छाते के साथ साथ तुम्हारा छात भी उठा लाया।

चंदूलाल की पत्नी बोली हाय राम! पर हम दोनों तो घर से छाता लाए ही नहीं थे।

चंदूलाल क्षण भर को चौंके, फिर बोले, भला हो रामजी का, जब देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं।

चंदूलाल का पुत्र झुम्मन खुशी खुशी घर में प्रवेश हुआ और चंदूलाल से बोला कि पापा, पापा, आज मैंने बस के पीछे भाग कर घर तक का सफर पूरा किया और पूरे पचास पैसे बचाए। अब तो मान गये न आप, कि हूं मैं भी आपका ही बेटा!

चंदूलाल ने उसे एक चपत रसीद की और कहा, अरे नालायक, तू एक न एक दिन मुझे तबाह करके छोड़ेगा। अरे मूर्ख, आखिर टैक्सी के पीछे भाग कर जब तीन रुपये बचाए जा सकते थे तो तूने बस के पीछे भाग कर केवल पचास पैसे बचाए! तुझे कब अकल आएगी? मारवाड़ी बच्चा होकर शर्म नहीं आती? चुल्लू भर पानी में डूब मर!

पांच साल बाद जब जेल से चंदूलाल का पुत्र बाहर आया तो देखा कि उसके पिताजी, जो उसे लेने आए हैं, उनकी दाढ़ी बढ़ गयी है। उसने चंदूलाल से पूछा कि क्या बात है पिताजी, यह आपने दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है? चंदूलाल बोले, अबे नालायक, दाढ़ी न बढ़ाता तो और क्या करता? अरे, उस्तरा तो तू साथ ही ले गया था। भला बगैर उस्तरे के क्या कोई दाढ़ी बना सकता है?

मारवाड़ी के देखने, सोचने, परखने का अपना ढंग है। इसे तुम ऊपर से नहीं सीख नही सकते। इसे तुम अभ्यास नहीं कर सकते। कोई विश्वविद्यालय भी नहीं है, जो तुम्हें मारवाड़ी बना दे। छोटी मोटी कंजूसी तुम सीख भी जाओ, मगर जो गहरी पहुंच मारवाड़ी की होती है... उसकी कंजूसी बिल्कुल आत्मा तक पहुंची हुई होती है! यह कोई शारीरिक घटना नहीं है, आध्यात्मिक घटना है।

इसलिए, कृष्णतीर्थ भारती, तुम यह तो ख्याल छोड़ दो मारवाड़ी होने का। और यूं भी यह ख्याल कुछ अच्छा नहीं, खतरनाक है। क्योंकि अगर यह ख्याल मन में रहा और मर गये, तो मारवाड़ी होओगे। ऐसे खतरनाक ख्याल मन में रखना नहीं। क्योंकि कब मर जाओ, क्या पता! जीवन का कोई भरोसा है? आज है, कल नहीं। और मरते वक्त जो विचार रहता है, वही फलीभूत होता है। तो इस विचार को तो बिल्कुल ही उखाड़ कर फेंक दो। इसको तो कभी भीतर घुसने ही मत देना। इसको तो बिल्कुल ही बाहर रखो। इससे तो बचकर चलना।

मैं मारवाड़ियों की इसीलिए तो इतनी प्रशंसा करता हूं कि तुम्हारे भीतर मारवाड़ी होने का भाव ही न रह जाए। और तुम भी क्या समझ रहे हो! तुम समझ रहे हो कि तुम्हें भी मारवाड़ी होना है! तुम तो उलटा ही पाठ पढ़ गये! मैं क्या समझा रहा हूं और तुम क्या समझ गये। यह मारवाड़ी की जो मैं प्रशंसा कर रहा हूं, यह तो इसलिए, कि मारवाड़ी नाराज न हों, अन्यथा समझने वाले समझ ही लेंगे! जो समझदार हैं वे मारवाड़ी होना छोड़ देंगे।

और तुमने भी गजब कर दिया! तुम्हारे भीतर आकांक्षा जग रही है कि मारवाड़ी हो जाऊं! बचो इस खतरनाक विचार से।

कृपणता इस जगत में कितनी ही होशियारी की चीज हो, लेकिन गहरे में तो मुढ़तापूर्ण है। यूं दिखाई पड़ती हो बाहर बाहर बड़ी होशियारी, लेकिन आदमी अपने को गंवा देता है और धन को ठीकरे इकट्ठा कर लेता है। इकट्ठा कर लेता है और खुद को खो बैठता है, खुद को लुटा बैठता है। तिजोड़ी भर लेता है और आत्मा खाली हो जाती है। मरता है, तब खाली हाथ, खाली आत्मा। और तिजोड़ी यहां भरी रह जाती है! तिजोड़ी को कौन साथ ले जाता है!

और मारवाड़ी तो बेचारा अभागा है! वह तो भोग भी नहीं पाता, ले जाना तो बहुत दूर। वह तो यहां भी नहीं भोग पाता, यह तो सिर्फ इकट्ठा ही करना जानता है। वह तो इकट्ठा ही करता रहता है।

मेरा मारवाड़ियों से बहुत संबंध रहा है। राजस्थान में बहुत मैंने यात्राएं कीं। और भारत में भी अलग अलग कोनों में बसे मारवाड़ियों से मेरे संबंध रहे हैं। देख कर मैं चकित हुंआ हूं जिनके पास करोड़ों हैं, वे यूं जी रहें जैसे भिखमंगे हों। क्या सार तुम्हारे पास करोड़ों का? किसलिए इकट्ठे किये हो? सारी बुद्धिमानी इकट्ठी करने में निकल गयी, भोगने के लिए कुछ बची ही नहीं।

और मैं तो कहता हूंः जीवन भोगने के लिए है। सच में वे ही लोग प्रतिभाशाली हैं जो यहां भी भोगते हैं और वहां भी भोगते हैं। और दोनों तरफ भोगा जा सकता है, क्योंकि परमात्मा परम भोग है। जीवन को सब अंगों में भोगो देह में भी, मन में भी, हृदय में भी, आत्मा में भी। जीवन को उसके सब रूपों में भोगो। तभी तो सब रूपों में पहचानोगे। और तभी तो तुम्हारे जीवन में इंद्रधनुष के रंग आएंगे। तभी तो तुम्हारे जीवन में समृद्धि आएगी। समृद्धि धन के इकट्ठा करने से नहीं होती समृद्धि होती है। जीवन को जो जितनी गहराई से भोगता है। हर चीजों को भोगो! प्रत्येक क्षण को यूं भोगो कि कुछ उसमें बच न रहे; उसको पूरा पूरा भोग लो, ताकि पीछे लौट कर देखने की जरूरत भी न रह जाए। उसे बिल्कुल निचोड़ कर ही फेंक दो! क्योंकि समय जो हाथ से गया, गया, फिर लौट कर नहीं आएगा।

मैं तुम्हें भोगने की कला सिखाता हूं। और मेरे हिसाब में जो भोगने की कला जानता है, उसके ही जीवन में त्याग का फूल भी खिलता है। यह बड़ी अनूठी और बेबूझ बात है। मगर जीवन बड़ा अनूठा और बेबूझ है। जो भोगने की कला जानता है, वही त्यागने की कला जानता है।

मारवाड़ी तो इकट्ठा करने की कला जानता हे, भोग नहीं सकता, इसलिए त्याग भी नहीं सकता। भोगा ही नहीं तो त्यागेगा क्या खाक! असल में भोगने में भी तो त्यागना पड़ता है। नहीं तो तुम भोगोगे कैसे? अगर तुम एक रुपया बचाना चाहते हो, तो फिर एक रुपये को भोग नहीं सकते। अगर जूस पीना है तो जूस पी लो और रुपया बचाना है तो रुपया बचा लो।

वह चंदूलाल ले आए लौटा कर अपना रुपया घर--देखकर उसके आंसू, कि बेचारा कितना दुखी हो रहा है मुझे छोड़ने में! अरे, भाड़ में जाए ऐसा जूस! दो मील पैदल चल कर गये तो और जो जूस था, वह भी निकल गया; दो मील पैदल चल कर आया, कुछ और बचा था, वह भी निकल गया। और रुपया वापस तिजोड़ी में!

राह से चले जा रहे थे चंदूलाल, अपनी पत्नी के साथ, एकदम झपट्टा मार कर कोई चीज उठायी जमीन से और फिर एकदम जोर से फेंकी और कहा, यह अगर हरामजादा मिल जाए तो इसकी गर्दन काट लूं!"

पत्नी ने कहा, मामला क्या हैं! कौन हरामजादा? किसकी गर्दन काट रहे हो? क्या उठाया, क्या फेंका? मेरी तो कुछ समझ में नही आया। इतनी जल्दी तुम करते हो धंधा, सौदा, इशारों में हो जाता है!

उन्होंने कहा, अरे, कोई हरामजादा इस तरह खखारता है जैस अठन्नी! अगर मिल जाए मुझे, गर्दन उतार लूं इसकी!

कृष्णतीर्थ, मारवाड़ी होने की कोई जरूरत नहीं हैं। अगर थोड़ा बहुत कुछ हिस्सा तुममें मारवाड़ी हो--और जरूर होगा--वही तो फिर से पूरा मारवाड़ी हो जाना चाहता है। बीज है, पूरा वृक्ष बनना चाहता है। उसे अभी खाक कर दो। बीज को जला डालो। यह वासना रखना ही मत! इससे तो नर्क में चले जाना बेहतर है, मारवाड़ी मत हो जाना! नर्क में जिनको जगह नहीं मिलती, उनको मारवाड़ भेजते हैं। म्हारो देश मारवाड़! फिर वे एकदम मारवाड़ की तरफ आते हैं।

सावधान! अभी से सावधान! ऐसे खतरनाक विचार कभी मन में लेना मत, क्योंकि कभी कभी ऐसे विचार जड़ जमा जाएं तो अनंत काल तक भटकोगे! मनुष्य ही भटकता रहता है, फिर मारवाड़ी का तो कहना

ही क्या! मनुष्य होने में आदमी की चौरासी करोड़ योनियों में से गुजरना पड़ता है। अब तुम सोच लो मारवाड़ियों को कितनी करोड़ योनियों में नहीं गुजरना पड़ता होगा! चौरासी करोड़ तो साधारण आदमी! मारवाड़ी की योग्यता पाने के लिए तो समझ लो चार सौ अस्सी करोड़--कम से कम।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

प्रार्थना अंतिम पुरस्कार है

श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः भगवान,

चमक-चमक कर हजार आफताब डूब गये

हम अपनी शामे-अलम को सहर बना न सके

कृपया, अब बताइये क्या करें?

अब्दुल कदीर, चांद-तारे तो उगेंगे, डूबेंगे; सूरज उगेगा, डूबेगा; इससे तुम्हारी अंतरात्मा का अंधकार नहीं मिट सकता है। बाहर का कोई प्रकाश भीतर के अंधकार को मिटाने में असमर्थ है। वह भरोसा ही छोड़ दो। वह भरोसा रखोगे तो भटकोगे। और वही हम सबका भरोसा है। वहीं हम चूक रहे हैं। बाहर ही धन खोजते हैं कि भीतर की निर्धनता मिट जाए। बाहर ही पद खोजते हैं कि भीतर की दीनता मिट जाए। और बाहर की रोशनी पर ही आंखें टिकाते हैं कि भीतर का अंधेरा कट जाए। यह नहीं हो सकता। जो बाहर है बाहर है, जो भीतर भीतर है। दोनों का कोई तालमेल नहीं। दोनों एक दूसरे का रास्ता नहीं काटते।

भीतर भी तारे हैं और भीतर भी चांद हैं और सूरज हैं। और बाहर के चांद-तारों से बहुत बड़े हैं, बहुत अलौकिक हैं। पर नजरें बाहर उलझी हों तो भीतर कैसे देखोगे! नजरें बाहर उलझी होंगी तो लगेगा कि भीतर अंधेरा है। क्योंकि आंख या तो बाहर देख सकती है या भीतर। जब बाहर देखती है, तो भीतर का जगत छिप जाता है। और जब भीतर देखती है तो बाहर का जगत छिप जाता है। इसलिए तो जिन्होंने भीतर के अनुभव को पाया, उन्होंने कहा बाहर का जगत है ही नहीं। नहीं कि बाहर का जगत नहीं है। बाहर का जगत है, बहुत है, अनंत है, लेकिन भीतर जिसकी आंख मुड़ी उसे स्वभावतः बाहर का जगत ओट में हो गया, उस पर पर्दा पड़ गया।

इसलिए रहस्यवादी कहेंगे, जगत माया है, भ्रम है, मृग-मरीचिका है। उनकी बात में सत्य है भी और नहीं भी। सत्य है इसलिए कि वे जो कह रहे हैं, वह सूचना है कि अब आंख भीतर पड़ी है, तो बाहर यूं हो गया जैसे नहीं है। और सत्य नहीं है इसलिए कि तुमने आंख बंद कर कर ली बाहर से, इससे बाहर का जगत नहीं मिट जाता।

इसलिए मैं मायावादियों से राजी नहीं हूं। मैं उनके वक्तव्य के सत्य को अनुभव करता हूं, लेकिन उनके वक्तव्य को संपूर्णतः सत्य नहीं कह सकता हूं। उनका व्यक्तव्य उतना ही सत्य है जितना तुम्हारा वक्तव्य। जैसे तुम कहते हो, अब्दुल कदीरः

चमक-चमक कर हजार आ.फताब डूब गये

हम अपनी शामे-अलम को सहर बना न सके

तुम कहते हो, कितने चांद-तारे उगे, डूबे, लेकिन हमारी सांझ थी, उदास थी, अंधेरी थी, अंधेरी ही रही, उदास ही रही, हम उसमें उत्सव न ला सके; हम उसे आलोकित न कर सके; वहां कोई आनंद की धुन न बजी; वहां कोई गीत न जन्मा; वहां कोई बांसुरी न बजी, कोई कोयल न पुकारी, कोई पपीहा न पी-पी कहा। वहां

रेगिस्तान ही रहा। बाहर बहुत फूल खिले और झरे, झर झर झरे, गंध ही गंध उड़ी? और भीतर? भीतर कुछ भी न था। तुम्हारी बात में जितना सत्य है, उतना ही सत्य है मायावादियों की बात में। वे कहते हैं, हमने जब भीतर का जगत रोशन किया, जब भीतर का दीया जला, तो बाहर का जगत ही न रहा। बाहर सब अंधकार हो गया, सब झूठ हो गया।

दोनों जगत हैं। बराबर सत्य हैं। एक ही सत्य के दो पहलू हैं। जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं।

मैं इस अर्थ में अद्वैतवादी हूं, क्योंकि पहलू दो हों लेकिन सिक्का एक है। और इस अर्थ में द्वैतवादी हूं, क्योंकि सिक्का भला एक हो, पहलू दो हैं। लाख उपाय करो, एक पहलू का सिक्का तुम न बना सकोगे।

जिसको हम भौतिकवादी कहते हैं, उसकी भी चेष्टा यही है कि एक पहलू का सिक्का बना ले। हार जाता है जिंदगी भर, टूट जाता है, मगर सफल नहीं होता। और जिसको हम अध्यात्मवादी कहते हैं, उसकी चेष्टा में भी भेद नहीं है। वह भी कहता है, एक ही पहलू का सिक्का बनाऊंगा। बस, जो है भीतर, वही सत्य है, बाहर सब असत्य है।

सूफी फकीर हुई राबिया। अदभुत स्त्री थी। इस पृथ्वी पर थोड़ी ही स्त्रियों ने वह स्थान पाया है, जिसको हम बुद्ध का स्थान कहें; वह ऊंचाई पायी है जो बुद्ध की है। उन थोड़ी सी स्त्रियों में राबिया एक है। यूं तो पुरुषों के नाम भी केवल उंगलियों पर गिने जा सकते हैं, मगर स्त्रियों की संख्या तो और भी कम है। अभागी है यह बात! और जुम्मा पुरुष का है। पुरुष ने स्त्रियों को उठने न दिया, जगने न दिया। पुरुष ने स्त्रियों को वंचित रखा है। सदियों से उन्हें वेद पढ़ने की मनाही हैं। मस्जिदों में प्रवेश का अधिकार नहीं है। यहूदियों के सिनागाग में उन्हें पर्दे की ओट में ऊपर छज्जे पर बैठना होता है, दूर। पुरुषों के साथ मंदिर के प्रांगण में प्रवेश का उन्हें अधिकार नहीं है। जैन कहते हैं, स्त्रियों के पर्याय से मोक्ष नहीं उपलब्ध हो सकता। मर कर उन्हें पहले पुरुष होना होगा; क्योंकि पुरुष की ही पर्याय से मोक्ष हो सकता है।

ये सब पुरुष की अस्मिता की घोषणाएं हैं और कुछ भी नहीं। और इस सबका परिणाम हुआ कि बहुत कम स्त्रियां बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकीं। लेकिन कुछ स्त्रियां इस सबके बावजूद भी उपलब्ध हुईं। उनमें मीरा है, सहजो है, दया है, कश्मीर की लल्ला है। लल्ला ने तो वह ऊंचाई पायी कि कश्मीर के लोग कहते हैं, हम दो ही नाम जानते हैंः अल्ला और लल्ला। और उन्हीं में राबिया है।

राबिया के घर एक सूफी फकीर हसन मेहमान था। सुबह ही सुबह उठा, झोंपड़े के बाहर गया। राबिया तो आंख बंद किये मस्ती में डोलती थी। उसने बाहर सूरज को निकलते देखा। बड़ी सुंदर सुबह थी। ऐसी सुंदर जैसी उसने कभी देखी न थी। बादलों पर सूरज के रंग छितरे जा रहे थे। सब सुर्ख हो उठा था सूरज के साथ। पक्षी गीत गा रहे थे। कलियां चटक चटक कर खिल रही थीं, फूल बन रही थीं। हवाओं में गंध थी। सुबह की शीतल मंद पवन बह रही थी। उसने राबिया को आवाज दी कि राबिया, तू भीतर बैठी बैठी क्या करती है, बाहर आ, देखा परमात्मा ने कितना प्यारा जगत बनाया है! और कितनी प्यारी सुबह हुई है! और कैसे रंग आकाश में भरे हैं! और कैसे कंठों में पक्षियों के गीत डाले हैं! और कैसी फूलों में सुगंध उड़ रही है! और कैसी शीतल मंद पवन बह रही है! बाहर आ! भीतर क्या करती है!

राबिया खिलखिला कर हंसने लगी। यूं खिलखिलायी कि हसन थोड़ा हतप्रभ भी हुआ। जैसे कोई पागल हंसे। और फिर राबिया ने कहा, हसन, कब तक बाहर ही भटके रहोगे? भीतर आओ! मैं तुमसे कहती हूं कि माना कि परमात्मा ने बहुत सुंदर सुबह बनायी होगी--तुम कहते हो तो जरूर बनायी होगी, तुम कुछ झूठ न कहोगे--मगर मैं तुमसे कहती हूं कि भीतर आओ ओर क्यों नहीं उस परमात्मा को देखते जिसने सुबह का सूरज

बनाया, जिसने सुबह के फूल खिलाए, जिसने पक्षियों के कंठों में गीत डाले? कब तक सृष्टि को देखते रहोगे, सृष्टा को देखो, भीतर आओ!

हसन ने तो बात कुछ और कही थी, राबिया ने तो ढंग ही बदल दिया।

यही सदगुरु की कला है। तुम पूछो कुछ, जवाब दे कुछ। तुम्हारे प्रश्न में चाहे जान भी न हो, तो भी अपने उत्तरों में प्राण भर दे। उसके उत्तर को सुन कर तुम्हें पहचान आती है कि तुम्हारे प्रश्न में कितने प्राण थे। हसन को तो यह ख्याल ही न था, उसने तो एक बात कही थी कि बाहर आ। उसने यह न सोचा था कि बात का इतना आध्यात्मिक रूप हो जाएगा। मगर राबिया जैसे व्यक्तियों के हाथ में तो बात पड़ जाए, कंकड़-पत्थर भी पड़ जाए तो कोहिनूर हो जाए। मुर्दा हाथ में आ जाए तो जीवित हो उठे। राबिया तो गंगा जल छू दे तो शराब हो जाए, कि जो पी ले तो ऐसा मस्त हो की फिर मस्ती न टूटे। हसन ने कहा, राबिया, तूने तो बात ही बदल दी, तूने तो मुझे बहुत झेंपाया। क्षमा कर, आता हूं, भीतर आता हूं, तू ही ठीक कहती है।

और राबिया ने कहा, बाहर तो सब माया है, भ्रम है, सत्य तो भीतर है।

वहां मैं राजी नहीं हूं। बाहर भी सत्य है, भीतर भी सत्य है। तुम्हारी नजर जहां पड़ जाए। तुम बाहर को देखोगे तो भीतर के सत्य से वंचित रह जाओगे। और तुम भीतर देखोगे तो तुम बाहर के सत्य वंचित रह जाओगे। और अब तक यही हुआ। पूरब ने भीतर देखा, बाहर के सत्य से वंचित रह गया। इसलिए दीन है, दरिद्र है, भूखा है, प्यासा है, उदास है, क्षीण है। जैसे मरणशैया पर पड़ा है। क्योंकि बाहर तो सब माया है। तो फिर कौन विज्ञान को जन्म दे? कौन उलझे माया में? और कौन खोजे माया के सत्यों को? और माया में सत्य हो कैसे सकते हैं?

इस देश की दरिद्रता में तुम्हारे अध्यात्मवादियों का हाथ है। जाने न सही तो अनजाने सही, मगर हाथ तो है; उसे इनकारा नहीं जा सकता।

और पश्चिम? बाहर के सत्य पर ही अटक गया। उसने भीतर देखा ही नहीं। पश्चिम कहता है, भीतर कुछ भी नहीं हैं। भीतर जैसी कोई चीज ही नहीं है। यह सब बकवास है। जो है, बाहर है; सब बाहर है।

मगर एक बात ख्याल रखना, दोनों का तर्क एक ही है। इस तर्क में जरा भी भेद नहीं है। शंकराचार्य के तर्क में और कार्ल मार्क्स के तर्क जरा भी भेद नहीं है। शंकराचार्य कहते हैं, बाहर जो है, असत्य है, सत्य भीतर, और कार्ल मार्क्स कहता है, भीतर जो है सब असत्य है और बाहर जो है, वही सत्य है। मगर दोनों अद्वैतवादी है, यह ख्याल रखना। दोनों एक को मानते हैं। और वहीं दोनों की भ्रांति है। और वहीं दोनों की चूक है।

मैं चाहूंगा एक ऐसा मनुष्य पृथ्वी पर जो भीतर और बाहर के बीच सम्मिलिन बना सके। जो भीतर और बाहर के बीच सेतु निर्मित कर सके। जो इतना कुशल हो कि आंख बंद करे तो भीतर स्रष्टा को देखे और आंख खोले तो बाहर सृष्टि को देखे। न तो भीतर के कारण बाहर को झुठलाए, न बाहर के कारण भीतर को झुठलाए। झुठलाए ही नहीं। इनकार ही न करे। जिसका स्वीकार इतना बड़ा हो कि उसमें बाहर और भीतर दोनों समा जाएं। तो धर्म और विज्ञान का मिलन हो। तो पूरब और पश्चिम का मिलन हो।

मेरे संन्यासी से मैं वही आशा करता हूं कि उसमें दोनों मिलेंगे। उसमें भौतिकवाद और अध्यात्म का मिलन होगा। इसलिए मेरे संन्यासी को दो तरह की आलोचनाएं सहनी पड़ेंगी।

भौतिकवादी कहेगा कि तुम भी क्या अध्यात्म की बातें करते हो! कम्युनिस्ट मेरे विरोध में हैं। उनका विरोध मुझसे यह है कि मैं लोगों को ध्यान जैसी भ्रामक दिशा में गतिमान कर रहा हूं। लाखों लोगों को भीतर की तरफ ले जा रहा हूं। जबकि असली सवाल बाहर है। क्रांति बाहर होनी है। सूरज बाहर निकलना है, चांद

बाहर है, रोशनी बाहर है, और मैं लोगों को भीतर भटका रहा हूं। मैं उनको क्रांति से छीने ले रहा हूं। मैं क्रांति का दुश्मन हूं।

और अध्यात्मवादी मुझसे नाराज हैं। सारे अध्यात्मवादियों के अलग अलग फिरके मेरे खिलाफ हैं। उनकी खिलाफत का कारण? उनका कहना यह है कि मैं अपने संन्यासी को भौतिकवाद की शिक्षा दे रहा हूं। मैं उससे नहीं कि संसार को छोड़ो। मैं उससे नहीं कहता कि संसार माया है। मैं उससे कहता हूं जीओ, जी भर कर जीओ! मैं उसे भोगी बना रहा हूं। मैं उसे योग से तोड़ रहा हूं। मैं उसे भरमा रहा हूं, भटका रहा हूं; मैं उसे भ्रष्ट कर रहा हूं।

उन दोनों की आलोचनाएं मुझे सहनी पड़ेंगी। सदियों पुरानी दोनों की धारणाएं हैं।

मगर यह बड़े मजे की बात है कि दोनों कभी एक ही व्यक्ति के संबंध में राजी न हुए थे आज तक। कि दोनों ने मिल कर एक की ही आलोचना की हो। यह नयी घटना है। जिसकी आलोचना अध्यात्मवादी करते थे, उसका समर्थन भौतिकवादियों ने हमेशा किया। और जिसकी आलोचना भौतिकवादियों ने की, उसका समर्थन अध्यात्मवादियों ने हमेशा किया। मैं उनके लिए बेबूझ हुआ जा रहा हूं। उनकी भी समझ के बाहर है कि मेरे संबंध में वे दोनों राजी क्यों हैं? वे राजी इसलिए हैं कि उन दोनों का तर्क एक है। वे आधे को मानते हैं।

मुल्ला नसरुद्दिन ने अपनी पत्नी को कहा, आधा गिलास पानी ले आ! थोड़ी देर राह देखी, फिर जोर से आवाज दी कि फजलू की मां, बड़ी देर लगा रही है। अरे, आधा गिलास पानी ले आ! उसने कहा, वही तो मैं सोच रही हूं कि तुम्हारा प्रयोजन क्या हैं? आधा भरा, कि आधा खाली? पहले बात साफ करो।

यह फजलू की मां दार्शनिक रही होगी। इसने भी गजब का सवाल उठाया है कि आधा खाली कि आधा भरा? मैं क्या लाऊं? आधा भरा या आधा खाली?

आधे आधे गिलास को मानने वाले लोग पृथ्वी पर रहे हैं।

मैं चाहता हूं तुम्हारी आंखें तरल होनी चाहिए, तुम्हारी दृष्टी तरल होनी चाहिए। न अंतर्मुखी, न बहिर्मुखी। अंतर्मुखी हुए तो बाहर से टूटे। उसका फल भोगोगे। पूरब भोग रहा है फल, बुरी तरह भोग रहा है फल। और बहिर्मुखी हुए, तो भीतर से चूक जाओगे। पश्चिम उसका फल भोग रहा है, बुरी तरह फल भोग रहा है। अंतर्मुखी हुए तो दीन होओगे, दरिद्र होओगे, गुलाम होओगे। और बहिर्मुखी हुए, तो विक्षिप्त होने लगोगे। चित्त तनावग्रस्त हो जाएगा, संताप से भर जाएगा। दौड़-धूप तो बहुत होगी, आपा-धापी तो बहुत होगी, मगर कोई विराम न बचेगा जीवन में, शांति के कोई क्षण न मिलेंगे; अर्थ खो जाएगा; एक अर्थ हीनता छा जाएगी।

धन बहुत होगा, बड़े महल खड़े हो जाएंगे। राजपथ बनेंगे, विज्ञान होगा, उद्योग होगा, बड़े तकनीकी विकास होंगे, एक से एक अदभुत चीजें विज्ञान खोज कर हाथ में दे देगा, चांद-तारों पर पहुंचने की ताकत आ जाएगी, मगर भीतर दीया भी न जलेगा, मोमबत्ती भी न जलेगी, भीतर अंधेरा रहेगा। और भीतर अंधेरा हो तो तुम चांद पर भी पहुंच जाओ तो क्या करोगे? तुम तो तुम ही रहोगे। चांद पर भी पहुंचने से क्या होगा? तो भी तुम्हारे भीतर का चांद नहीं उगेगा।

अब्दुल कदीर, तुम तो कहते हो, चमक-चमक कर हजार आफताब डूब गये, तुम आफताब पर भी पहुंच जाओ तो भी कुछ न होगा, तुम्हारे भीतर का अंधेरा अछूता रहेगा।

ये दोनों परंपराएं हार गयीं, थक गयीं, टूट गयीं। इन दोनों के दिन लद गये हैं। मैं दोनों को ही अधूरा मानता हूं, इसलिए रुग्ण मानता हूं। मनुष्य को एक तरल दृष्टि चाहिए।

इस शब्द को समझने की कोशिश करो--तरल दृष्टि। अगर इस शब्द को तुम समझ लो तो मेरी भाषा तुम्हें समझ में आ जाएगी। मेरा जीवन को देखने का ढंग तुम्हारी समझ मे आ जाएगा। मैं अंतर्मुखी नहीं, बहिर्मुखी नही। और न चाहता हूं कि तुम अंतर्मुखी बनो या बहिर्मुखी बनो। मैं चाहता हूं, तुम चुनाव करना मत, तुम तरल रहो, तुम जब चाहो तब आंख बंद करो। जैसे आंख झपकते हो; जैसे रात सो जाते हो, जैसे सुबह आंख खोल लेते हो, इतनी ही तरलता चाहिए। जड़ मत हो जाओ। एक ही घेरे में आबद्ध मत हो जाओ। बाहर आना और भीतर जाना सुगम होना चाहिये। जैसे अपने घर के बाहर-भीतर आते हो। सुबह सुबह बाहर निकल आते हो, बगिया में बैठते हो, धूप सुहानी लगती है। और फिर धूप थोड़ी देर में तेज होने लगती है, पसीना बहने लगता है, फिर तुम उठे और चुपचाप घर के भीतर, घर की छाया में चले जाते हो। अब छाया प्यारी लगती है। अभी थोड़ी देर पहले धूप प्यारी लगती थी। जब तक कुनकुनी थी, प्यारी थी, अब तेज हो गयी। प्रखर हो गयी, अब आग बरसने लगी, अब छाया चाहिए, अब तुम भीतक सरक आते हो। जैसी सरलता से तुम अपने घर के बाहर-भीतर आते-जाते हो, बिना किसी अवरोध के। तुम यह, जिद्द नहीं करते कि मैं तो अतंर्मुखी हूं तो भीतर बैठूंगा, चाहे सर्दी में ठिठरूं, चाहे दांत कट-कटाएं।

मुल्ला नसरुद्दिन अपने डाक्टर के पास गया था और कहने लगा कि बड़े जोर से सर्दी लगती है; बुखार सा मालूम होता है। डाक्टर ने पूछताछ की, पूछा कि दांत भी कट-कटाते हैं कि नहीं? उसने कहा, यह मैंने देखा नहीं, क्योंकि दांत तो मैं रात में टेबल पर रख कर सो जाता हूं। पक्का नहीं, कटकटाते हों या न कट-कटाते हों! आज रात देखूंगा उठ कर।

दांत अलग ही हों तो बात अलग! टेबल पर रख कर सो जाते होओ तो बात अलग! लेकिन अगर तुमने जिद की कि मैं तो भीतर ही रहूंगा, तो दांत कट-कटाएंगे। अंधेरे में तुम जीओगे फिर। अगर तुमने बाहर ही रहने की जिद की, तो पसीने पसीने हो जाओगे; तो नाहक नर्क भोगोगे। जिद मे पड़ना मत। हठ से बचना।

हमने तो हठ को इतना आदर दिया कि हमने उसका पूरा योग बना दिया--हठ योग! हठी लोगों को हम बड़ा आदर देते हैं। जिद्दी लोंगो का हम त्यागी-तपस्वी कहते हैं। होते सिर्फ जिद्दी हैं। हठी, झंझटी, दंभी, अकड़ से भरे हुए लोग। ऐसी अकड़ से भरे हुए कि रस्सी भी जल जाए तो भी उसकी अकड़ नहीं जाए। कोई एक ही पैर पर खड़ा है वर्षों से। इसको तुम कहते हो, महायोगी! एक ही पैर पर खड़ा है! है कुल जमा यह जिद्दी किस्म का आदमी। जड़ बुद्धि होगा। क्योंकि सिर्फ जड़ बुद्धि ही हठी होते हैं।

कि कोई आदमी सिर्फ सप्ताह में एक दफा भोजन करता है। कि कोई आदमी सिर्फ दूध ही पीता है। कि कोई आदमी सिर्फ पानी ही पी कर जिंदा रहने की कोशिश करता है। कि कोई आदमी सिर के बल ही खड़ा है। कि किसी आदमी ने एक हाथ ऊपर उठा लिया है तो उसको नीचे नहीं करता। ऊपर ही किये हुए है। हाथ सूख गया है। अब तो वह नीचे करना भी चाहे तो कर नहीं सकता। मांस-पेशियों ने गतिमयता खो दी है; लोच खो दी है। इनको हम तपस्वी कहते हैं, ज्ञानी कहते हैं। इनके हम चरण धोते हैं, पानी पीते हैं उनके चरणों को धोकर। ये सिर्फ जिद्दी किस्म के लोग हैं। इनकी आंखो में झांको--न प्रतिभा होगी, न आनंद होगा, न उत्सव होगा, न परमात्मा की कोई झलक मिलेगी।

हठ मनुष्य को आग्रहपूर्ण बनाता है। और सब तरह के आग्रह खतरनाक हैं। न तो बाहर का आग्रह करना, न भीतर का। आग्रह ही मत करना। निराग्रही होना धार्मिक होना है।

मैं तो सत्याग्रही होने को भी नही कहता। क्योंकि सत्य का भी आग्रह जहां आया, वहां सत्य असत्य हो जाता है। आग्रह जहर है। वह सत्य को भी जहरीला कर देता है। सत्याग्रही भी मत होना। आग्रह ही मत रखना।

निराग्रही होना। कोई आग्रह नहीं होना चाहिए जीवन में। एक तरलता, एक सरलता, एक बहाव, एक लोच। जब जरूरत हो भीतर, जब जरूरत हो बाहर।

इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः जब समय मिल जाए आंख बंद करो, भीतर डुबकी मारो, भीतर के मोती चुगो। और जब जरूरत पड़े तो बाहर के जगत में श्रम करो। बाहर का जगत भी तुम्हारा है। वह भी परमात्मा की देन है। बाहर के चांद-सूरज भी तुम्हारे हैं। मगर भीतर के भी चांद-सूरज हैं। बाहर भी एक आकाश है और भीतर भी एक आकाश है।

पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने मनुष्य को दो कोटियों में बांटा हैः अंतर्मुखी और बहिर्मुखी। मैं मानता हूं कि पुराने मनुष्य के संबंध मे उनका यह विभाजन बिल्कुल सच है। लेकिन भविष्य के मनुष्य कें संबंध मे यह विभाजन झुठ हो जाने वाला हैं। हो जाना चहिए। इसे झूठ करने के लिए ही मेरा सारा प्रयास है। कार्ल गुस्ताव जुंग को झूठ करना ही है। एक ऐसा आदमी चाहिए, जिसको कोटियों में न बांटा जा सके। जो बाजार में हो और ध्यानी हो। जो ध्यानी हो और भीड़ में हो। जो भीड़ में भी अकेला होने में समर्थ हो। जो बाजार में भी बैठ कर आंख बंद कर ले तो हिमालय के द्वार खुल जाएं।

तुम पूछ रहे हो, अब्दुल कदीर,

"अब बताइए क्या करें?"

तुमने अपेक्षा ही गलत की थी। तुम्हारी आकांक्षा ही गलत थी। तुम सोचते थे बाहर के चांद-तारे, बाहर का सूरज तुम्हारे लिए भीतर की रोशनी बन जाएगा! वह भ्रांति थी धारणा। अभी तुमने कुछ किया ही नहीं। तुम तो इस तरह पूछ रहे हो कि जैसे तुम बहुत कर चुके, अब क्या करें? तुमने कुछ किया नहीं। तुम एक गलत धारणा में जीए। तुम्हारी आशा ही भ्रांत थी।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बैंक मैं किसी काम से गया था। झुक कर उसने कुछ उठाया और जोर से चिल्लाया कि किसी के सौ सौ के नोट सुतली में बंधे हुए गिर तो नहीं गये हैं? पांच-सात आदमी... भारत है यह तो! ... पांच-सात आदमी एकदम दौड़ पड़े और बोले, गिरे हैं, हमारे गिरे हैं, सौ सौ के नोट हैं, सुतली में बंधे हैं। मुल्ला नसरुद्दीन बोला, शांति, शांति! अभी तो मुझे केवल सुतली मिली है, अभी नोट नहीं मिले।

ये आशावादी आदमी के लक्षण हैं। सुतली क्या मिल गयी, एकदम सौ सौ के नोट की कल्पना करने लगा! और बेईमानों की तो यहां जमात है। पांच-सात दौड़ पड़े, एकाध भी नहीं!

एक आदमी के एक बस में नोट खो गये। पूरी की पूरी थैली खो गयी। उसने खड़े हो कर घोषणा की कि मेरे दस हजार रुपये थे एक थैली में, वह खो गयी है। किसी को मिली हो, तो मैं उसे हजार रुपये दूंगा और बड़ा अनुगृहीत होऊंगा। एक आदमी बस के पीछे से बोला कि मैं दो हजार दूंगा।

यहां तो बड़ी बेईमानी है। जैसे नीलामी हो रही हो।

तुमने अभी कुछ किया तो है नहीं, जो तुम पूछ रहे हो : "अब क्या करूं?"

भारत के जितने अदभुत शास्त्र हैं, वे सब एक अपूर्व शब्द से शुरू होते हैंः अथातो। जैसे ब्रह्मसूत्र भारत का अदभुत शास्त्र है। नहीं इसकी कोई तुलना है दुनिया में। ब्रह्मसूत्र शुरू होता हैः अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। अब हम ब्रह्म की जिज्ञासा करें। ऐसा ही नारद का भक्तिसूत्र है। इतना ही अपूर्व। जैसे ब्रह्म के संबंध में ब्रह्मसूत्र है, वैसा भक्ति के संबंध में नारदसूत्र है। वह भी शुरू होता हैः अथातो भक्ति जिज्ञासा। अब हम भक्ति की जिज्ञासा करें। अब यह अब इस बात की खबर देता है कि तुम बहुत कुछ कर चुके, तुम और सब कर चुके, अब आओ असली

बात करें। इसके पहले तुम्हारे सारे जीवन, अनंत-अनंत जीवन गुजर चुके और जो भी तुम कर सकते थे, तुम कर चुके हो। नहीं उससे तुमने कुछ पाया। अब आओ ठीक दिशा में प्रयाण करें, प्रस्थान करें।

तुम भी मुझसे पूछ रहे हो, अब्दुल कदीर, "अब बताइए क्या करें?"

अथातो? मगर तुमने अभी कुछ किया नहीं। सुतली भी हाथ लगा हो, इसका भी संदेह है मुझे। तुम तो सिर्फ आशा बांधे रहे। आशा यह थी कि मिल जाएगा। बाहर की रोशनी से भीतर का जगत रोशन हो उठेगा। इसलिए हताशा लगी हाथ, निराशा लगी हाथ। कसूर चांद-तारों का नहीं है, कसूर तुम्हारी आशा का, अपेक्षा का है। गलत अपेक्षा! कोई तेल निकालना चाहे रेत से, फिर न निकले तो कुछ रेत का कसूर है? खुद की भूल है। अब तक तुमने कुछ भी नहीं किया है।

इस भ्रांत धारणा को तोड़ दो, छोड़ दो। भीतर दीया जल रहा है। वही तो तुम्हारा जीवन है। तुम जीवित हो, इतना तो पक्का है। जीवित हो तो ज्योति जल रही है--बिना ज्योति के कोई जीवित कैसा होगा? जीवन ही तो ज्योति है।

तुम पूछ सकते हो प्रश्न तो तुम्हारे भीतर उत्तर भी छिपा पड़ा है। इसी प्रश्न की गहराई में कहीं उत्तर दबा है। उसी से और आगे उतरते चलोगे, थोड़ी खुदाई करोगे, तो उत्तर भी मिल जाएगा।

ध्यान करो अब! उतरो अपने भीतर! मगर एक बात ख्याल रखना, बाहर से छूट मत जाना, टूट मत जाना। बाहर पैर मजबूती से जमाए रखना। नहीं तो फिर अधूरे के अधूरे हो जाओगे। एक अधूरापन गया, दूसरा अधूरापन आ जाएगा। और मनुष्य का मन ऐसा है कि एक अति से दूसरी अति पर बड़ी सरलता से चला जाता है। एक भ्रांति से दूसरी भ्रांति में उतर जाता है।

पहले तो लोग कहते हैं, संसार सत्य है; जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या--यही नास्तिक की घोषणा है--फिर तथाकथित आस्तिक कहते हैं ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। ये दोनों अधूरे हैं। न तो नास्तिक धार्मिक है, न आस्तिक धार्मिक है। धर्म तो समग्रता का नाम है। धार्मिक व्यक्ति तो कहेगाः जगत भी सत्य, ब्रह्म भी सत्य। क्योंकि जगत ब्रह्म की ही परिधि है और ब्रह्म जगत का ही केंद्र है। जैसे तुम्हारी देह भी सत्य, तुम्हारी आत्मी भी सत्य। तुम्हारी देह तुम्हारी आत्मा की ही अभिव्यक्ति है। और तुम्हारी आत्मा तुम्हारी देह में ही विराजमान है। वह जो दीए में जल रही ज्योति है, वह उतनी ही सत्य है जितना वह मिट्टी का दीया जिसमें ज्योति जली है। जितनी ज्योति सत्य है, उतना ही दीया भी सत्य है और दोनों मिलकर ही समग्र सत्य है।

इसलिए मैं बाहर के और भीतर के बीच कोई व्यवधान खड़ा नहीं करना चाहता हूं। मैं बाहर और भीतर के बीच कोई विरोध खड़ा नहीं करना चाहता हूं। बहुत हो चुका वह विरोध। और आदमी ने बहुत गंवाया उस विरोध में। उस विरोध के कारण आदमी के भीतर एक तरह की खंडित अवस्था हो गयी पैदा। यहां तथाकथित धार्मिक भी अधूरे रहे, अधार्मिक भी अधूरे रहे। अब चाहिए एक पूरा मनुष्य और पूरे मनुष्य की एक संस्कृति, जिसमें आस्तिकता और नास्तिकता एक स्वर मे लयबद्ध हो जाएं; जिसमे आस्तिकता और नास्तिकता का संगीत संयुक्त हो उठे। कुछ महिमा नास्तिक की भी है, कुछ महिमा आस्तिकता की भी है। और दोनों जब मिलें तो परम शिखर प्रगट होता है।

मेरी आस्तिकता नास्तिकता को आत्मसात करती है, इनकार नहीं करती। तुम भीतर उतरो और बाहर भी पैर मजबूती से जमाए रखना। बाहर से हाथ हटा नहीं लेना है और भीतर पहुंचने की कला भी सीख लेनी है। इसलिए बाहर से पीठ मत मोड़ना--भगोड़े मत बनना, पलायनवादी मत बनना। मैं नहीं चाहता कि हिमालय भाग जाओ, गुफाओं में बैठ जाओ; मैं चाहता हूंः जहां हो, घर में हो, गृहस्थी में हो, परिवार में हो, वहीं।

लेकिन घड़ी-दो घड़ी अपने लिए बचा लो। चौबीस घंटों में से बाईस घंटे दे दो संसार को, पत्नी को, बच्चों को, परिवार को, जगत को--जरूरत है वह! और यूं मत देना कि शिकायत भरे दे रहे हो। आनंद से देना।

परमात्मा ने अपने को जगत को कितना दिया है!

उसके बिना दिये चल सकता है एक क्षण? वही तो श्वास है हमारी। वही तो गंध है फूलों की। वही तो रंग है। वही तो सारा विस्तार है। उसके बिना तो सब सिकुड़ जाएगा, सब मर जाएगा। अभी पतझड़ हो जाएगा। उसी से तो वसंत है, मधुमास है। उसी से तो जीवन कितने कितने रंगों और कितने कितने ढंगों में अभिव्यक्त होता है! कितनी बहुविध अभिव्यंजना है! और सारी अभिव्यंजना के बीच कैसा तारतम्य है, कैसी लयबद्धता है, कैसा समस्वर गूंज रहा है!

वैसी ही समस्वरता तुम्हारे जीवन में भी होनी चाहिए। बाईस घंटे सारे जगत को दे दो, दो घंटे अपने लिए बचा लो! उन दो घंटों मे जगत को भूल जाओ, अपने में डूब जाओ। फिर फिर लौट आओ। जैसे पानी में कोई डुबकी मारता है। डुबकी मारी, फिर निकल आता है।

तीन बच्चे स्कूल में बात कर रहे थे, बचपन से ही यह रोग सवार हो जाता है-- दंभ का, घमंड का। बचपन से ही बच्चे अपने अपने गौरव-गरिमा में मंडित होने लगते हैं। एक बच्चा कह रहा था, मेरे पिताजी डुबकी मारते हैं, पांच पांच मिनिट पानी में डूबे रहते हैं। दूसरे बच्चे ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मेरे पिता डुबकी मारते हैं तो आधा आधा घंटा। तीसरे बच्चे ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मेरे पिता ने डुबकी मारी, आज सात साल हो गये, निकले ही नहीं।

ऐसी डुबकी मारने को मैं नहीं कह रहा हूं कि फिर निकलना ही मत! डुबकी भी मारो, निकलो भी! खूब निकलो, खूब डूबकी मारो! और इन दोनों के बीच कोई विरोध न रह जाए। एक पैर भीतर, एक पैर बाहर। एक पैर समय में, एक पैर शाश्वत में। एक पैर पदार्थ पर, एक पैर परमात्मा में।

और ये दो नावें नहीं हैं। ये एक ही नाव के दो ढंग हैं। ये एक ही नाव के दो पहलू हैं, दो कक्ष हैं। ये दो घोड़े नहीं हैं, यह एक ही घोड़ा है। दो रंगा है। एक तरफ से देखो तो काला है, एक तरफ से देखो तो सफेद है।

अमरीका में एक आदमी हुआ, राबर्ट रिप्ले। उसे उल्टे-सीधे काम करने की आदत थी। उसे उल्टी-सीधी चीजों में रुचि भी बहुत थी। उसने दुनिया का सबसे बड़ा संग्रह इकट्ठा कर रखा था अजीब अजीब चीजों का, अजीब चीजों में उसे ऐसा रस था। उसने अपने संग्रह के बाबत किताबें लिखी हैं--मानो या ना मानो उन किताबों का नाम है; बिलीव इट आर नाट।

और उसने जो भी संग्रह किया है, वहां कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो एकदम से तुम मान लो। जैसे, उसके पास एक मछली है, जो उल्टी तैरती है। वह सारी दुनिया में अकेली मछली है। उसने उसके लिए बहुत पैसा खर्च किया पाने के लिए जिसके पास थी। उसके पास एक बाल है जिस पर एक प्रेम पत्र लिखा हुआ है। वह आदमी का बाल है। तुमने चावल तो देखे होंगे शायद कभी जिन पर लोग प्रेम पत्र लिखते हैं, या राम राम, राम राम लिख देते हैं, मगर आदमी का बाल, उस पर पूरा प्रेम पत्र! उसके पास सबसे पुरानी आदमी की खाल है, सात हजार वर्ष पुरानी, जिस पर एक पूरा वक्तव्य छपा हुआ है। उसके पास एक आदमी की खोपड़ी है, उसको कैसे ही फेंको, कुछ भी करो, वह हमेशा सीधी हो जाती है।

कब मरा यह आदमी?

हो गये होंगे दस-पंद्रह हजार साल, वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पंद्रह हजार साल पुरानी खोपड़ी है, मगर गजब का आदमी है, अभी तक अपनी जिद पर अड़ा है। इसको कहते हैं कि रस्सी जल गयीं, ऐंठ नहीं गयी।

क्या गजब का आदमी है! खोपड़ी अभी भी तुम उसकी उल्टी नहीं कर सकते! कुछ भी करो, कैसे ही फेंको, इधर, उधर, वह जल्दी से सीधा हो जाता है। उसकी खोपड़ी नीचे की तरफ वजनी है। जिंदगी में बड़ी मुश्किल रही होगी उस आदमी को। सिर उसका लटका ही रहता होगा। या एक नौकर-चाकर सम्हाल कर रखता होगा उसका सिर।

कभी कभी कुछ बच्चे होते हैं, छुटपन में, जिनकी खोपड़ी बड़ी होती है और शरीर छोटा होता है, तो उनका सिर ऐसा डोलता रहता है। या नीचे लटका रहता है। एक तरफ झूला खाता रहता है। इस आदमी की खोपड़ी आखीर तक ऐसी रही होगी कि उसकी नीचे की तरफ तो खोपड़ी बड़ी है और वजनी है और ऊपर की तरफ खोपड़ी हल्की है। कुछ भी करो, कैसे ही फेंको, खोपड़ी सदा सीधी हो जाती है। घबड़ाने वाली खोपड़ी हैं। थोड़ा डर भी लगे एकांत में, अंधेरे में अगर करो यह काम, कि वह खोपड़ी सीधी हो कर बैठ जाए, तुम उसको उल्टा करो और वह सीधी हो जाए। तो लगे भी कि कोई भूत-प्रेत तो नहीं बैठा इसके भीतर? अभी तक कोई आदमी इसका पीछा तो नहीं कर रहा?

उसने अपनी कार को दो रंगों में रंग छोड़ा था, रिप्ले ने, आधा काला, आधा सफेद। एक तरफ से काली और एक तरफ से सफेद। एक तरफ बिल्कुल काली कर रखी थी उसने और एक तरफ बिल्कुल सफेद। बीच से कार को दो हिस्सों में रंग छोड़ा था। उसके गाड़ी चलाने का ढंग भी बेहूदा था। अक्सर दुर्घटनाएं कर बैठता था। मगर बड़ा मजा आता था मुकदमों में, क्योंकि गवाह उल्टी गवाहियां देते थे। इस तरफ से जिनने देखी थी, वे कहते थे काली कार थी; उस तरफ से जिनने देखी थी, वे कहते थे सफेद कार थी! और वह खड़े होकर हंसता था। वह कहता, पहले ये लोग तय तो कर लें कि कार कैसी थी! यह तो बाद में पता चला कि इसने कार को दो रंगों मे रंग छोड़ा है। आधी सफेद है, आधी काली है। और जब गवाह ही उल्टी-सीधे जवाब दे रहे हों तो मामला रद्द उसी वक्त हो जाए। कोई गवाह ही राजी नहीं है। गाड़ी के रंग पर भी राजी नहीं है। इतनी बड़ी गाड़ी--उसकी बड़ी गाड़ी थी।

परमात्मा आधा बाहर, आधा भीतर। तुम्हें भी उसी के ढंग से होना होगा। जीवन को यूं जीओ! जीवन एक कला है।

यह आसान है--संसारी होना, और यह भी आसान है पुराने ढंग के संन्यासी होना। ये दोनों आसान बातें है। पुराना संन्यासी भगोड़ा होता है। नये ढंग का संन्यासी, मेरा संन्यासी भगोड़ा नहीं है। न वह संसारी है, न वह संन्यासी है। या, यूं कहो कि वह दोनों है, साथ साथ है--संन्यासी है और संसारी है। वह योगी है और भोगी है। एक साथ है। उसे भ्रष्ट करने का उपाय नहीं। उसे डिगाने का उपाय नहीं। कहां डिगाओगे? उसे ललचाने का उपाय नहीं। कैसे ललचाओगे? उसने दोनों जीवन के पहलुओं पर पैर जमा रखे हैं।

यही तुमसे कहूंगा, अब्दुल कदीर, संन्यास की यह नयी परिभाषा सीखो! धर्म का यह नया रूप समझो! जीवन को समग्रता से जीने की इस कला में प्रवेश करो। और जरूर तुम्हारी सांझ भी सुबह हो जाएगी; तुम्हारी रात भी दिन में बदल जाएगी। संध्या को प्रभात बना देना कठिन नहीं है, सरल है। इतना ही सरल है जैसे चाबी जरा घुमायी कि ताले खुल जाते हैं। लेकिन अब कोई तालों को ऐसे ही खटखटाता रहे और हथौड़ियों से ठोंकता रहे, तो और मुश्किल हो जाती है! फिर चाहे चाबी भी मिल जाए तो खोलना मुश्किल हो जाता है। चाबी तो सरलता से खोल देती है। ऐसे खटखटाने से, पत्थर मारने से, हथौड़े ठोंकने से ताले नहीं खुलते। और शायद खोलना मुश्किल हो जाए।

मैं तो जीवन को बहुत सरल पाता हूं, बहुत सुगम पाता हूं, इसमें जटिलता जरा भी नहीं है। जटिलता है तो हमारी दृष्टि में है। जरा सी दृष्टि बदलती है कि सृष्टि बदल जाती है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,

आप ज्ञान के सागर दिखते हैं। किंतु आपके तत्त्वज्ञान या शिक्षा में भक्ति का संपूर्ण अभाव दिखाई देता है। अध्यात्म में भक्ति बिना ज्ञान मनुष्य का अहंभाव ही प्रदर्शित करता है। अहंभावी व्यक्ति महान गुरु हो, यह असंभव है।

प्रेम नारायण, मैं और ज्ञान का सागर! तुमसे कुछ गलती हो गयी। ज्ञान के सागर तो आप हैं!! आपने प्रश्न थोड़े ही पूछा है, उत्तर दिया है। मैं तो अज्ञानी हूं, महा अज्ञानी, जिसको कुछ भी पता नहीं। आप जैसा ज्ञानी यहां कैसे आ गया? बड़े भाग्य जो आप पधारे, और बोध दिया और सोते को जगाया, नहीं तो हम तो सोते ही रह जाते!

गजब की बात लिखी, "आप ज्ञान के सागर दिखते हैं।"

दिखता ही होऊंगा; हूं नहीं। बूंद भी नहीं हूं, तुम सागर की बातें कर रहे हो! यहां बूंद भी नहीं बची, तुम सागर की बातें कर रहे हो!

तुम्हें सब पता है! तुमने यह प्रश्न ही क्यों पूछा! तुम जैसे बुद्ध पुरुष प्रश्न पूछते नहीं फिरते। यह तो करुणावश ही आप आ गये होंगे।

"कह रहे हो कि आपके तत्त्वज्ञान में या शिक्षा में... ।"

किसने कब कहा कि मेरा कोई तत्त्वज्ञान है? मैंने कभी कहा? मैं तो तत्त्वज्ञान की बात ही नहीं करता। अज्ञानी करे भी तत्त्वज्ञान की बात तो कैसे करेगा? मैं तो सीधी-साधी बातें करता हूं। दो और दो चार, ऐसी बातें। इनमें कहां तत्त्वज्ञान? तुम अपनी ही कल्पना को थोप कर परेशान हो रहे हो। मैं कहूं कि तत्त्वज्ञानी हूं, तो फिर तुम्हारे प्रश्न की सार्थकता है। मैं तो नहीं तत्त्वज्ञानी अपने को कहता, अज्ञानी कहता हूं।

सुकरात के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि जब वृद्ध हो गया सुकरात तो उसने कहा कि मुझे तो सिर्फ एक ही बात पता है कि मुझे कुछ भी पता नहीं। जिस दिन उसने यह बात कही कि मुझे तो बस इतना ही ज्ञान है कि मुझे कुछ ज्ञान नहीं, उस दिन यूनान में देल्फी का प्रसिद्ध मंदिर था, उस मंदिर के देवता ने घोषणा की कि सुकरात महा ज्ञानी हो गया। कुछ लोग इस घोषणा को सुन कर सुकरात को कहने आए। उन्होंने कहा कि तुमने सुना सुकरात? नाचो! उत्सव मनाओ! भोज दो मित्रों को, डुंडी पीट दो सारे एथेंस मे कि देल्फी के परमदेव ने घोषणा कर दी है कि तुम महा ज्ञानी हो!

सुकरात ने कहा, कुछ भूल हो गयी होगी देवता से। और क्यों न हो? आदमी से भूल हो सकती है तो देवता से भी हो सकती है। कुछ भूल हो गयी होगी, कुछ चूक हो गयी होगी। मैं और परमज्ञानी? मैं महा अज्ञानी हूं। तुम जाओ और देवता को कह दो कि सुकरात इनकार करता है।

वे लोग तो बहुत चोंके।

वे वापस देल्फी के मंदिर गये और उन्होंने देवता से कहा--यह देल्फी का मंदिर बड़ा प्रसिद्ध मंदिर था यूनान का और इसमें देवता की एक प्रतिमा थी जो खोखली थी और जिसके भीतर पुजारी खोखली प्रतिमा में खड़ा हो जाता था। लेकिन यह समझा जाता था की जब उस खोखली प्रतिमा में पुजारी खड़ा होता है तो वह

आविष्ट हो जाता है, वह स्वयं के भाव को खो देता है और जैसे जगत का प्राण उससे बोलने लगता है। जरूर बोलने लगता होगा। इस घटना से तो कम से कम सिद्ध होता है। क्योंकि जब ये लोग वापस पहुंचे और उन्होंने कहा कि हे परमदेव! आप कहते हैं सुकरात महा ज्ञानी है, हम उससे पूछने गये थे। उसने हमसे कहा कि कह दो देवता से कि कुछ भूल हो गयी होगी, अपने शब्द वापस ले ले। सुकरात स्वयं तो कहता है--मैं परम अज्ञानी हूं। अब आप क्या कहते हैं? और देल्फी के देवता ने घोषणा की--इसीलिए तो मैंने कहा कि वह परमज्ञानी है।

तत्त्वज्ञानी थोड़े ही तत्त्वज्ञानी होते हैं। तत्त्वज्ञानी तो शब्दज्ञानी होते हैं, शास्त्रज्ञानी होते हैं। जिनको तत्त्व का सच में ही पता चला है, वे तत्त्वज्ञानी नहीं होते, वे तो तत्त्व के साथ एकाकार हो जाते हैं। फिर कहां ज्ञान? , ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का भेद कहां? सारे भेद गिर जाते हैं।

मेरा कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, कोई मेटाफिजिक्स नहीं है, कोई फिलासफी नहीं है, कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। मैं कोई दर्शन थोड़े ही पढ़ा रहा हूं लोगों को! मैं कोई शिक्षक थोड़े ही हूं! मैं तो सिखा नहीं रहा हूं, सहायता कर रहा हूं कि जिस तरह मैं भूल गया हूं, तुम भी भूल जाओ।

रमण महर्षि को एक जर्मन दार्शनिक ने आकर कहा--बहुत प्रसिद्ध दार्शनिक था जर्मनी का; काउंट केसरलिंग। और यह बिल्कुल संयोग की ही बात है कि काउंट केसरलिंग का भतीजा यहां मौजूद है और हमारा संन्यासी है। काउंट केसरलिंग ने रमण महर्षि को कहा कि मैं दूर जर्मनी से आया हूं, आपके चरणों में बैठ कर कुछ सीखने। महर्षि रमण यूं बोलते नहीं थे ज्यादा, उस दिन इतना बोले कि फिर तुमने गलत जगह चुन ली है। फिर तुम कहीं और जाओ। सीखना हो तो कहीं और जाओ। यहां मेरे पास बैठे तो खतरा है। केसरलिंग ने पूछा, क्या खतरा है? रमण ने कहा कि यहां तो हम सिखाते नहीं, भुलाते हैं। यहां तो तुम जो सीखे हो, वह भुलाएंगे हम। भूलना हो तो यहां रुको। सीखना हो तो फिर बहुत विश्विद्यालय पड़े हैं। फिर बहुत से आचार्य हैं; जगदगुरु हैं : तत्त्वज्ञानी हैं, अध्यात्मवादी हैं; फिर वहां जाओ।

काउंट केसरलिंग क्षण भर को तो सकते में आ गया। उसने सोचा भी नहीं था। लेकिन वह कोई भारतीय नहीं था। नहीं तो सोचता, अरे, मैं भी कहां अज्ञानी के पास आ गया! यूं तो ज्ञानी दिखता है, ज्ञान का सागर दिखता है, और निकला अज्ञानी। लौट गया होता। भारतीय पंडित होता--जैसे प्रेम नारायण यहां आ गये हैं, अगर इस कोटि का व्यक्ति होता तो लौट गया होता। वहीं टिक गया।

उसने कहा कि चाहे सिखाओ, चाहे भुलाओ, तुम्हारी आंख मैंने पहचान ली। तुम्हारी गंध मुझे आ गयी। अब यहां से हटूंगा नहीं। चाहे मिटाओ तो मिटा दो! और काउंट केसरलिंग मिट कर ही लौटा। काउंट केसरलिंग जाग कर ही लौटा। जान कर नहीं; जानना तो बचकानी बातें हैं। जानने में तो भेद रह ही जाता है। जिसे तुम जानते हो, वह अन्य होता है, तुम अन्य होते हो--जानने वाले होते हो। जागना!

यह कोई तत्त्वज्ञान नहीं है जो मैं यहां सिखा रहा हूं। न तो यह तत्त्वज्ञान है और न मैं सिखा रहा हूं। यह तो जागरण की प्रक्रिया है।

मगर तुम्हारी अपनी दृष्टि होगी। तुमने सुना होगा पुरी के शंकराचार्य को, आचार्य तुलसी को; तुमने सुना होगा स्वामी अखंडानंद को; तुमने सुने होंगे रामकिंकर महराज; तुम तथाकथित ज्ञानियों से भरे हुए आ गये हो। उसी भ्रांति में तुम मुझे देख रहे हो। तुम उसी कोटि में मुझे रखना चाहते हो कहीं। मैं उस कोटि में कहीं नहीं आता। अच्छा हो तुम समझ लो कि मैं अज्ञानी हूं।

मगर लोग तो अपनी-अपनी नजर से देखते हैं।

चंदूलाल खड़े थे तीस मंजिल ऊपर बंबई के एक मकान में। नीचे झांक कर देखा, लगा कि एक रुपया चमकता हुआ पड़ा है। उतरे। लिफ्ट बंद, बिजली कट, सो सीढ़ियों से उतरना पड़ा। हांप गये दस मंजिल उतरते-उतरते। बीसवीं मंजिल से फिर गौर से देखा, एक दफा गौर से तो देख लूं कि है भी रुपया कि कोई उठा ले गया इस बीच? बड़े हैरान हुए। रुपया तो नहीं, ऐसा मालूम पड़ता है कि चांदी का कोई और बड़ा सिक्का। मगर रुपये से बड़ा सिक्का क्या होगा? लगता है चांदी का कोई गहना पड़ा हुआ है। और तेजी से भागे, भूल गये हांपना। जब दस ही मंजिल रह गये, तो प्राण बिल्कुल जाए रहे आए रहे हालत में थे--आयाराम गयाराम की अवस्था थी--एक दफा और देख लें, कोई उठा तो नहीं ले गया, नहीं तो बेकार इतनी मेहनत हो रही है! और चकित हुए, और भी बड़ा दिखाई पड़ा चांदी का चकता। ऐसा लगा कि कोई चांदी का पाट ही पड़ा है। एकदम भागे। फिर उन्होंने सोचा कि अब जीवन रहे कि जाए! नीचे जा कर देखा तो बड़े हैरान हुए। वहां कुछ भी न था। एक भिखमंगे की थाली थी। वह उसे नल पर धो-धा कर, पोंछ-पोंछ कर, रख कर सुखा रहा था। वहीं पास में ही बैठा था झाड़ के नीचे। सिर पीट लिया अपना।

लोग अपनी-अपनी धारणाओं से देखते हैं। कुछ लोग हैं जिनको रुपये ही रुपये नजर आते हैं। जहां देखते हैं वहीं रुपये नजर आते हैं।

दो ईसाई फकीर एक रास्ते से गुजर रहे थे। दूर पहाड़ी पर बने चर्च की संध्या को घंटियां बजने लगीं। एक फकीर ने दूसरे से कहा, सुनते हो ये प्यारी घंटियां! उसने कहा, क्या? कहा, सुनते हो, ये प्यारी घंटियां! ह्नदय को गुदगुदाती हैं, गदगद करती हैं। और उस दूसरे ने कहा कि यह घडियाल बंद हो, यह चर्च का घंटा बंद हो तो मैं सुनूं कि तुम क्या कह रहे हो! इस मूरख घंटे की वजह से मैं सुन ही नहीं पा रहा कि तुम क्या कह रहे हो।

अब तो कुछ कहने को बचा ही नहीं! पहले आदमी ने सोचा, अब क्या कहना! वह प्रशंसा कर रहा था चर्च की सुमधुर घंटियों की और यह कहा रहा है--यह मूरख घंटा! एकदम घंटियों को घंटा कर दिया उसने। कहां प्यारी-प्यारी घंटियां थी, स्त्रैण, और एकदम घंटा कर दिया। उसने कहा, नहीं-नहीं जाने दो। फिर भी उसने कहा, तुम क्या कह रहे थे? उसने कहा कि अब कहने का कुछ सार नहीं। मैं उन्हीं घंटियों के संबंध में कह रहा थाः सुमधुर! दूसरे ने कहा, हद हो गयी, तुम्हें क्या खाक उसमें सुमधुर सुनाई पड़ा! पहले तो इतने दूर वह चर्च है और यहां बाजार का इतना शोरगुल और इसमें तुम्हें उसकी सुमधुर घंटियां ही सुनाई पड़ीं, बड़ा संगीत सुनाई पड़ा!

उस पहले फकीर ने तत्क्षण एक रुपया अपने खीसे से निकाला और जोर से सड़क पर पटका, खन्न से आवाज हुई, कोई सौ आदमी एकदम दौड़ पड़े बाजार में, एकदम भीड़ लग गयी कि मेरा रुपया गिर गया, मेरा रुपया गिर गया! उस पहले फकीर ने कहा, देखा? बाजार में इतना शोरगुल मचा है, सांझ का वक्त है, लोग अपनी दुकानें उठा रहे हैं, फड़ाफड़ दरवाजे बंद हो रहे हैं? बैलगाड़ियां निकल रही हैं, ट्रक पर सामान लादा जा रहा है, हम्माल चिल्ला रहे हैं, जल्दी है, सांझ हुई जा रही है, सबको अपने घर लौटना है, मगर एक रुपये का गिरना और सौ आदमियों ने सुन लिया!

रुपये पर जिसकी नजर लगी हो, वह हजार शोरगुल मचा हो, रुपये की खन्न की आवाज उसे सुनाई पड़ जाएगी। हम वही सुन लेते हैं जो हमारी धारणा में बसा होता है।

तुम्हारा रस होगा तत्त्वज्ञान में, तो तुमने तत्त्वज्ञान मुझ पर आरोपित कर दिया। मेरा कोई कसूर नहीं, मेरा कुछ हाथ नहीं। तुम्हारा रस होगा ज्ञान में। मुझे दोषी न ठहराओ! ज्ञान वगैरह में मेरी कोई उत्सुकता नहीं। मेरी तो उत्सुकता है, तुम्हारे ज्ञान को कैसे पोंछ डालूं! तुम ज्ञान से भरे हो, ज्ञान कचरा है। तुम्हारी खोपड़ी में

सिवाय कचरे के कुछ भी नहीं है। भला तुमने चाहे शास्त्र कंठस्थ कर लिये हों। सो तो तोते भी कर लेते हैं, इससे ज्ञानी नहीं हो जाते, तत्त्वज्ञानी नहीं हो जाते।

जब तुम्हारे चित्त में सारे विचार समाप्त हो जाते हैं, तब तुम्हारे भीतर बोध का जन्म होता है, बुद्धत्व का जन्म होता है। लेकिन तुम अपनी धारणाएं बीच में लिए बैठे हो। उनका पर्दा बनाए बैठे हो। तो तुमने सुन लिया होगा तत्त्वज्ञान।

और शिक्षा? यहां कौन शिक्षा दे रहा है? मैं कोई शिक्षक हूं? और अगर कभी शिक्षा देता भी हूं तो मराठी भाषा के अर्थों में। अच्छी शिक्षा देता हूं। मराठी भाषा में शिक्षा बड़ा महत्वपुर्ण अर्थ रखती है--कि क्या शिक्षा दी! यहां मराठी में शिक्षा का अर्थ होता है कुटाई-पिटाई।

महाराष्ट्र में तो कुछ खूबियां हैं ही! शिक्षा का भी क्या गजब का अर्थ! एक तो महराष्ट्र ही गजब की जगह है! एक तो राष्ट्र में महाराष्ट्र, यही गजब का मामला है! यह दुनिया में कहीं नही हो सकता। तूमने बड़े बड़े जादुगर देखे होंगे, डिब्बे में से डिब्बा निकालते हैं, मगर छोटे डिब्बे में से बड़ा डिब्बा कोई निकाल दे, ये जादूगर तुमने भी नहीं देखा होगा! ऐसे तो राष्ट्र ही बीमारी है, और महाराष्ट्र, यह तो फिर महा बीमारी है! और राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र! यह चमत्कार सिर्फ भारत में हो सकता है और कहीं नहीं हो सकता। यह भारत तो जादूगरों का देश है। यहां तो सत्य साईं बाबा जगह-जगह भरे पड़े हैं। क्या धूल वगैरह निकाल रहे हो, राख वगैरह निकाल रहे हो, अरे, राष्ट्रों में से महाराष्ट्र निकल रहे हैं!

लेकिन महाराष्ट्र में कुछ खूबियां हैं! कम से कम शिक्षा का तो ठीक-ठीक अर्थं महाराष्ट्र में है। भारत में और किसी को इसका ठीक-ठीक अर्थ मालूम नहीं! तो शिक्षा अगर देता भी हूं कभी, तो महाराष्ट्र के अर्थ में देता हूं। जब तक महाराष्ट्र में हूं तो कुछ तो महाराष्ट्र से सीख लेनी चाहिए। इतनी ही सीख पाया हूं मराठी और कुछ ज्यादा आती नहीं। मगर इतने से काम चल जाता है।

कैसी शिक्षा?

और तुम कहते हो, "भक्ति का संपूर्ण अभाव दिखाई देती है।"

आंखे हैं तुम्हारे पास? कि चश्मा लगाए हुए हो? और कई लोग तो चश्मा भी क्या लगाए हैं, जैसे ईंटों से बनाए हैं चश्में। उनमें से दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई न पड़े, इसलिए लोग चश्मे लगाए हुए हैं। यहां भक्ति के सिवाय और क्या है? मगर तुम्हारी धारणा की भक्ति शायद न हो। यहां तुम्हारी धारणा का कुछ भी नहीं हो सकता। यहां तो तुम धारणाएं अगर दरवाजे पर रख आओ, तो ही तुम्हें कुछ दिखाई पड़ सकता है। नहीं तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। यहां भक्ति ही भक्ति है। लेकिन यहां भक्ति की अपनी अलग ही भंगिमा है। यहां तुम्हारी भक्ति नहीं है। न मैं जानूं अर्चन वंदन, न पूजा की रीत। वैसी भक्ति तुम्हें यहां नहीं मिलेगी। कोई थालियां नहीं उतारी जा रहीं, आरती नहीं उतारी जा रही, जय गणेश-जय गणेश नहीं हो रहा, हनुमान जी के सामने बैठे हुए हनुमान चालीसा नहीं पढ़ा जा रहा; ऐसी भक्ति-भावना यहां तुम्हें नही दिखाई पड़ेगी।

यह तो अच्छा हो कि चार्ल्स डार्विन अपने विकासवाद का सिद्धांत लिखने के पहले भारत नहीं आया। नहीं तो हनुमान जी की मूर्तियों को देख लिया होता उसने और भक्ति-भावना देख ली होती तो अपने विकासवाद के सिद्धांत में एक आधार इसको निश्चित बनाया होता कि आदमी बंदर से ही पैदा हुआ है, इसका सबसे बड़ा सबूत है हनुमान जी की पूजा और भक्ति भावना। निश्चित उसने यह निष्कर्ष निकाला होता कि हनुमान की पूजा किसी बहुत प्राचीन समय में हुए आदिम उस महापुरुष की पूजा है, उस पहले बंदर की, जो

उतरा वृक्षों से और चार हाथ-पैर से चलना छोड़ कर जो दो पैर के बल खड़ा हुआ। उस परमपिता की, परम पितामह की पूजा का सबूत इसको वह मानता। नहीं तो आदमी और बंदर की पूजा करे!

यहां तुम्हें कुछ मूर्तियां नहीं दिखाई पड़ेगी जिनके सामने लोग बैठे हैं, पूजा कर रहे, पाठ कर रहे, घंटियां बजा रहे, फूल चढ़ा रहे, धूप-दीप जलाए हुए हैं, तो लगेगा तुम्हें स्वाभाविक कि यहां तो कोई भक्ति-भाव हो ही नहीं रहा है। तुम्हारी धारणा की भक्ति यहां नहीं तुम पाओगे। लेकिन यहां भक्ति की एक अपनी अनिर्वचनीय गंगा बह रही है। यहां भक्त ही इकट्ठे हैं। लेकिन इस भक्ति का आधार और, इस भक्ति की रसधार और, यह भक्ति किसी विश्वास पर खड़ी नहीं है। जो भक्ति विशस पर खड़ी होती हैं, झूठी होती हैं, नपुंसक होती है। क्योंकि विश्वास का अर्थ ही होता है, तुम्हें जिसका पता नहीं है, उसको माने बैठे हो।

तुम जब आरती उतार रहे हो किसी मूर्ति की, तुम्हें पता है तुम क्या कर रहे हो? तुम्हें बोध है अपने कृत्य का? तुम्हारे भीतर कोई प्रमाण है ईश्वर के होने का? तुमने जाना है, पहचाना है ईश्वर को? कोई अनुभूति है? अगर अनुभूति है तो अब यह क्या भाड़ झोंक रहे हो? और अगर अनुभूति नहीं है तो फिर क्या भाड़ झोंक रहे हो? और इसको तुम भक्ति कह रहे हो! दो ही हालत में हो सकता है। या तो तुम्हें अनुभव है। अनुभव है तो इसकी कोई जरूरत नहीं रह गयी। और अगर अनुभव नहीं है, तो तुम्हारी भक्ति झूठी है, थोथी है, ऊपर-ऊपर थोपी है।

मैं भक्ति और प्रार्थना पर बल नहीं दे रहा हूं। निश्चित ही। उसके कारण हैं। क्योंकि उस तरह का बल लोगों में सिर्फ पाखंड फैलाता है। सारी पृथ्वी पाखंड़ियों से भरी है। कौन जिम्मेवार है? छोटे-छोटे बच्चों को तुम भक्ति सिखा रहे हो!

मैं छोटा था तो मुझे भी मंदिर में ले जाया जाता था। मुझे भी मेरे पिता कहते कि झुको। मैं उनसे कहता कि मैं झुकूं क्यों? मुझे कुछ दिखाई पड़ता नहीं यहां। कि माना कि ये बैठे हैं पत्थर के सुंदर भगवान, लेकिन क्यों झुकूं? इनको तो मैं खुद झुका सकता हूं। तो वे कहते, इस तरह की बात नहीं करते। और जब मंदिर में कोई भी नहीं होता, तो मैं भगवान को झुका कर देख आता; कि यह कुछ नहीं है मामला, झुक जाते हैं! इधर से धक्का देता, उधर से धक्का देता, देख लेता, इनसे कुछ बनता नहीं, कुछ करते नहीं। यह भी नहीं करते कि चीख-पुकार मचा दें कि अरे, बचाओ! कि धर्म संकट में है! कुछ नहीं कर पाते। चपत लगा आता उनको! और जब देखता वे कुछ नहीं कर रहे, तो अब इनके सामने क्या झुकना है? क्यों झुकना है? क्या प्रयोजन?

शास्त्रों के सामने झुको! मैं अपने पिता को कहा भी कि आपको मालूम नहीं है कि मैं अकेले में आकर इन शास्त्रों की कुटाई-पिटाई कर जाता हूं। अरे, बोले, इस तरह का तो कभी करना ही नहीं! तुम मंदिर आया ही मत करो! तुम्हें आने की कोई जरूरत नहीं। और मैं पूजारी को बता दूंगा की कभी एकांत में तुम्हें घुसने ना दें। मैंने कहा, पुजारी भी इधर-उधर जाता है। कोई पुजारी यहां बैठा रहता है! वह भी तभी आता है जब सुबह भक्त गण आते हैं। क्योंकि उसको उसको भी दूसरे काम हैं। और इन किताबों में कुछ भी नहीं है। आखिर स्याही ही है। अच्छे-अच्छे वचन भी लिखे हैं तो झुकने का क्या सवाल है। समझने का सवाल है। पत्थर की मूर्ति सुंदर है, प्रशंसा के योग्य है, जिनसे बनायी उसकी कला का मैं गौरव कर सकता हूं, गुणगान कर सकता हूं, लेकिन और तो मुझे कुछ दिखाई पड़ता नहीं।

जबर्दस्ती झुका दोगे छोटे-छोटे बच्चों को, फिर ये जिंदगी भर झुकते रहेंगे। और सोचेंगे, इनका झुकना भक्ति है, पूजा है, अर्चना है। और वही झूठ जो प्रथम दिन इनको जबर्दस्ती झुका दिया था, अब भी इनका पीछा कर रहा है।

यहां मैं किसी को जबर्दस्ती झुकाना नहीं चाहता। किसी भी चीज के सामने नहीं झुकाना चाहता। क्यों, जरूरत ही नहीं है किसी का जबर्दस्ती झुकाने की। अनुभूति के बाद एक अहोभाव पैदा होना शुरू होता है। वह अहोभाव भक्ति है। एक अनुग्रह शुरू होता है। एक अनुग्रहीतता की भावना पैदा होती है। वह भक्ति है। वह कोई प्रगट भक्ति नहीं है। कोई शोरगुल नहीं मचाए फिरता आदमी कि जय गणेश-जय गणेश चिल्लाता फिरे, लेकिन भीतर एक मधुर नाद बजने लगता है। जीवन प्रेमपुर्ण हो उठता है।

तुम यहां मेरे संन्यासियों का जीवन जितना प्रेमपूर्ण देखोगे, पृथ्वी पर कहीं भी तुम्हें किन्हीं का इतना जीवन प्रेमपुर्ण नहीं दिखाई पड़ेगा। लेकिन प्रेम को तो तुम भक्ति समझते ही नहीं! तुम तो थोथी चीजों को भक्ति समझते हो। और मैं प्रेम को भक्ति का आधार मानता हूं, बुनियाद मानता हूं--भय को नहीं। हालांकि तुमने भय को ही भक्ति समझा हुआ है।

सारी दुनिया की भाषा में ऐसे बेहुदे शब्द हैंः धर्मभीरु। धार्मिक व्यक्ति को कहते हैः धर्मभीरु। गाड फियरिंग। ईश्वर से डरने वाला आदमी। प्रेम में और भय? और जहां भय है वहां कहीं प्रेम हो सकता है! लेकिन तुम तो बाबा तुलसीदास को कंठस्थ किये बैठे हो! तुलसीदास कहते हैः भय बिन होय न प्रीति। इससे ज्यादा गलत बात कभी किसी आदमी ने कहीं नहीं। भय के बिना प्रीति हो नहीं सकती, तुलसीदास कहते हैं। और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, जोर से, कि जब तक भय है तब तक प्रीति हो ही नहीं सकती। भय और प्रीति? तो फिर घृणा कैसे होगी? जिसको तुम भयभीत करोगे, वह तुम्हें घृना करेगा, प्रीति नहीं कर सकता।

परमात्मा तुम्हें भयभीत नहीं कर रहा है। जरा भी भयभीत नहीं कर रहा है। अस्तित्व तुम्हें भय नहीं देता। अस्तित्व को अगर तुम समझोगे, अगर तुम अपनी नींद तोड़ोगे और तुम्हारे थोथे शब्दों का जाल तोड़ोगे, तो तुम देख पाओगे कि सारा जगत प्रेम से परिप्लावित है। यहां प्रेम ही प्रेम बह रहा है। वही वृक्षों में हरा है, वही फूलों में लाल है, वही सूरज में सुर्ख है, वही तारों में छिटका हुआ है। वही तुम्हारे प्राणों में भी मधुर नाद का गुंजन कर रहा है। वही झरनों में कलकल है। वही मोरों का नृत्य है। वही पपीहा की पुकार है। वही तुम्हारे भीतर भी छिपा पड़ा है। लेकिन प्रेम को जगाने की जरूरत है। और प्रेम को जगाने के लिए कोई विश्वास नहीं चाहिए, कोई अंधश्रद्धा नहीं चाहिए। प्रेम को जगाने के लिए ध्यान का निखार चाहिए। और वहीं प्रेम नारायण--नाम तो प्रेम नारायण है, लेकिन मैं नहीं समझाता तुम अपने नाम का अर्थ भी समझे कभी। प्रेम नारायण का अर्थ होता हैः प्रेम ही परमात्मा है। उसके अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है।

ध्यान तुम्हारे भीतर से उस सारे उपद्रव को काट देता है जिसने प्रेम के बहने में अड़चनें डाल रखी हैं। मैं यहां ध्यान सिखाता हूं, भक्ति नहीं। भक्ति तो फल है। मैं यहां बीज बोता हूं। और अगर तुम किसी को बीज बोते देखोगे तो तुम शायद सोचोगे, यह आदमी क्या कर रहा है? हम तो सोचते थे कि यह फूल बोता होगा, यह तो बीज बो रहा है। फूल कहां बो रहा है? हम तो सोचते थे यह फल बोता होगा और यह तो बीज बो रहा है। अब कहां बीज और कहां फल और कहां फूल! कितना फासला है! बड़ा फासला है। मगर जिसको फल चाहिए और फूल चाहिए, उसे बीज ही बोने पड़ते हैं। मैं बीज बो रहा हूं। उसके लिए जरा आंखें चाहिए देखने की। इन्हीं बीजों से फिर फल भी आते हैं, फूल भी आते हैं, गंध भी आती है।

ध्यान बीज है, प्रार्थना फल है। शुरुआत ध्यान से होगी, अंत प्रार्थना में होगा। प्रार्थना अंतिम परिणति है, अंतिम पुरस्कार है। ध्यान साधना है, प्रार्थना परमात्मा का प्रसाद है। तुम प्रार्थना नहीं कर सकते। तुम करोगे तो झूठ होगी। इसलिए मैं तुमसे प्रार्थना करने को कहता ही नहीं। कहूं भी क्यों, क्योंकि मैं जानता हूं, अगर तुमने ध्यान की साधना की, तो प्रार्थना एक दिन अपने से आएगी। और जब अपने से आए तो उसका सौंदर्य और,

उसका रस और, उसका आनंद और। फिर वह हिंदू नहीं होती, मुसलमान नहीं होती, ईसाई नहीं होती, बौद्ध नहीं होती, जैन नहीं होती, सिर्फ प्रार्थना होती है। और ध्यान तो ईसाई, जैन, बौद्ध होता ही नहीं; हिंदू, मुसलमान होता ही नहीं; ध्यान तो वैज्ञानिक होता है। ये दो बातें तुम ख्याल में रख लो।

ध्यान वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तुम जब चिकित्सक के पास जाते हो, तो तुम यह नहीं कहते कि मैं हिंदू हूं, मुझको हिंदू दवा देना। वह कहेगा, बाहर निकल जाओ! कभी दोबारा यहां आना मत! दवाएं हिंदू नहीं होती हैं! न बीमारियां हिंदू होती हैं! बीमारियां बीमारियां है, दवाएं दवाएं हैं। और तुम चाहे हिंदू होओ तो भी तुम्हारी टी.बी. के लिए वही पेनिसिलिन काम आएगी, और चाहे तुम मुसलमान होओ तो भी वही पेनिसिलिन काम आएगी। चिकित्सक को पूछने की जरूरत नहीं होती कि तुम पहले यह तो बताओ कि तुम हिंदू हो कि मुसलमान? फिर मैं तय करूं कि दवा क्या देनी है। चिकित्सक को निदान करना होता है बीमारी का।

तुम्हारी बीमारी क्या है? मन तुम्हारी बीमारी है। पांडित्य तुम्हारी बीमारी है। ज्ञान तुम्हारी बीमारी है। शास्त्र तुम्हारी बीमारी है। हां, शास्त्र हिंदू होते हैं। ज्ञान हिंदू होता है, मुसलमान होता है, जैन होता है, ईसाई होता है। मैं तत्त्वज्ञानी नहीं हूं। इसलिए मैं यहां किसी को हिंदू नहीं बनाता, मुसलमान नहीं बनाता। यहां तो हिंदू आएगा तो धीरे धीरे आदमी हो जाएगा, मुसलमान आएगा तो आदमी हो जाएगा, इसाई आएगा तो आदमी हो जाएगा। ये रोग गये। आदमी हो जाना पर्याप्त है।

मैं तुम्हें तुम्हारे जाल से मुक्त होने की सिर्फ एक कीमिया देता हूं। उस कीमिया का नाम ध्यान है। ध्यान का इतना ही अर्थ है कि कैसे तुम्हारे भीतर मौन हो जाए, चुप्पी हो जाए। मन कैसे बिल्कुल शांत हो जाए। जब मन शांत हो जाता है, तो तुम भीतर की आवाज को सुन पाते हो। वही आवाज प्रार्थना है। वही आवाज अर्चना है। वही आवाज वंदना है। फिर उसकी कोई रीति नहीं होती, कोई विधि-विधान नहीं होता, यज्ञ-हवन नहीं होता, पंडित-पुरोहित नहीं होते। वह तो फिर उठने लगती है तुम्हारे भीतर से। जैसे दीये से ज्योति झरती है, ऐसे ध्यान से प्रार्थना झरती है। तब एक भक्ति होती है, जो सिर्फ आंख वाले को ही पहचान में आएगी। तुमको पहचान में नहीं आ सकती। तुम तो अपने आग्रह लिए बैठे हो।

आग्रहों के कारण बड़ी मुसीबत है। क्योंकि आग्रह वाला व्यक्ति देखता ही इस ढंग से है कि उसके देखने में ही चूक हो जाती है।

ढब्बू जी अपने डाक्टर के पास गये और कहा, डाक्टर साहब, मेरे कान में गेहूं उग रहे हैं। डाक्टर थोड़ा हैरान हुआ, उसने कहा, क्या इसी कारण तुम्हें बेचैनी रहती है? ढब्बू जी ने कहा, जी नहीं, इस कारण बिल्कुल नहीं रहती। डाक्टर और भी हैरान हुआ। तो उसने कहा, फिर तुम आए किसलिए हो? उसने कहा, बैचैनी का कारण यह है, ढब्बू जी बोले, कि मैंने चावले बोए थे।

अव चावल बोए हों और गेहूं उग आएं, तो बेचैनी तो होगी न!

तुम एक धारणा ले कर आते हो। तुमने कुछ बो रखा है पहले से। और तुम यहां कुछ और देखते हो। मैं तुम्हारी धारणा के अनुकूल नहीं हूं। इसलिए तुम्हें अड़चन होती है।

एक महिला ने अपने पति से भिखारियों की शिकायत करते हुए कहा, आज के भिखारी बड़े धोखेबाज हो गये हैं। मैंने कल एक अंधे भिखारी को एक रुपया दिया, तो वह कहने लगा, भगवान आपकी सुंदरता कायम रखे। पति ने मुस्कुरा कर कहा, तब तो तुम्हें उसके अंधे होने पर संदेह नहीं करना चाहिए। मैं तो सोचता था मैं ही अंधा हूं, दुनिया में दो अंधे हैं, एक मैं और एक वह भिखारी। मुझे भी यही भ्रांति हुई थी।

मां ने बेटी ने पूछा, तुम्हें भाषण प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला, यह सुन कर तुम्हारे पिताजी क्या बोले? बेटी ने जवाब दिया, कुछ उदास हो गये और बोले, तू भी अपनी मां पर जा रही है।

धारणाएं मजबूत हैं, तो आदमी उन्हीं धारणाओं से सुनेगा न!

जज साहब ने अभियुक्त से पूछा, तुमने फिर चोरी करनी शुरू कर दी? बीच के दो माह में क्या करते रहे? अभियुक्त ने जवाब दिया, जी, बीमार पड़ गया था।

जज बोला, ऐसा छोटा-मोटा झगड़ा तो तुम लोग अदालत के बाहर ही निपटा सकते थे।

हुजूर, हम यही तो कर रहे थे कि यह सिपाही पकड़ कर हमें यहां ले आया।

एक सुनिश्चित धारणा तुम्हारी है, उस धारणा के कारण तुम कुछ का कुछ देख रहे हो, प्रेम नारायण! जो यहां है ही नहीं, वह तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। जो है, वह दिखाई नहीं पड़ रहा। लेकिन तुम्हारा भी क्या कसूर? सभी व्यक्ति धारणाओं में बड़े होते हैं। और सभी व्यक्ति अपनी धाराणाओं को ऐसे पकड़ते हैं जैसे बड़ी संपदाएं हैं वे। मरने-मारने को उतारू रहते हैं। किसी धारणा को जरा चोट पहुंच जाए कि एकदम मरने-मारने के लिए तैयार हो जाता है। जैसे धारणा उसके जीवन से भी बहुमूल्य है।

ढब्बू जी एक दिन नसरुद्दीन से पूछ रहे थे, नसरुद्दीन, तुम हमेशा हजामत बनवाते समय नाई से मौसम के बारे में ही बातें क्यों करते रहते हो? नसरुद्दीन ने उत्तर दिया, तो क्या तुम्हारा मतलब है कि जो आदमी मेरी गर्दन पर उस्तरा टिकाए हो, उससे राजनीति या धर्म पर बहस करूं?

ठीक कहता है नसरुद्दीन! जो आदमी उस्तरा बिल्कुल गर्दन पर रखे बैठा है, उससे झगड़ा करना, राजनीति या धर्म पर कोई बात उठाना, फैसला ही कर दे वह एक सेकेंड में! उससे तो मौसम की ही बात करनी ठीक रहती है। उसमें कोई झगड़ा नहीं है। कि आज बड़ी बारिश हो रही है। हो ही रही है। कि आज क्या सूरज निकला है! भई, निकला ही हुआ है, इसमें कोई झगड़ा नहीं।

अंग्रेज, पूरी जाति मौसम के संबंध में बातचीत करती है, और किसी संबंध में बातचीत नहीं करती। उसका कारण यह है कि अंग्रेज इसको अशिष्टाचार मानते हैं किसी बात पर विवाद करना। और विवाद न करना हो तो निर्विवाद विषय तो एक ही है--मौसम! दो अंग्रेज मिलेंगे तो मौसम के संबंध में घंटों बातें करेंगे। अब क्या है मौसम में बातें करने को! तुम भी देख रहे हो कि सूरज निकला है, हम भी देख रहे हैं कि सूरज निकला है।

लाओत्सु के जीवन में उल्लेख है कि वह घूमने जाता था, तो उसका एक पड़ोसी भी उसके साथ जाता था। पड़ोसी के घर एक दिन एक आदमी मेहमान हुआ। उस मेहमान ने कहा, मैं भी आ जाऊं? उसने कहा, भई, मैं लाओत्सु से पूछ लूं। क्योंकि वह पसंद नहीं करता; कुछ बातचीत नहीं करना बिल्कुल। कोई बातचीत नहीं करना। उसने कहा, मैं वायदा करता हूं, बातचीत बिल्कुल नहीं करूंगा। तो उसने कहा फिर ठीक है, आ जाओ।

तीनों चले। घंटा भर हो गया। सुंदर पहाड़ी, सूरज निकलने लगा, उस आदमी ने कुछ बात की भी नहीं थी, अपने को किसी तरह सम्हाले था--संयमी आदमी रहा होगा। मगर कब तक संयम साधोगे? और फिर यह बात कोई खास बात न थी, उसने सिर्फ इतना कहा कि बड़ी सुंदर पहाड़ी है और क्या सुंदर सूरज निकल रहा है! लाओत्सु वहीं रुक गया। उसने कहा, भई, इस आदमी को विदा करो, यह बहुत बकवासी है।

वह आदमी भी बड़ा चौंका और जिसका मेहमान था, उसने भी कहा, बकवासी? यह सिर्फ एक शब्द बोला घंटे भर में। उसने कहा कि इसने मुझे अंधा समझा है--लाओत्सु ने कहा। अब मुझे भी दिखाई पड़ रहा है कि पहाड़ी सुंदर है, इसको भी दिखाई पड़ रहा है और तुमको भी दिखाई पड़ रहा है; सूरज निकल रहा है, तीनों

को दिखाई पड़ रहा है इसमें कहना क्या है? इसको विदा करो! और कल से तुम भी मत आना। क्योंकि अगर तुम कहते हो कि यह बकवासी नहीं है, तो तुम भी किसी दिन बोलोगे। क्षमा चाहता हूं। ऐसी बात ही क्या करनी?

अब एक तो यह लाओत्सु है, जो कहता है, कि हमें भी दिखायी पड़ रहा है, तुमने हमे अंधा समझा है? यह अगर इंग्लैंड में जाता तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाता। वहां जो आदमी मिलेगा वही बात करेगा--मौसम। और दूसरी बात नहीं छेड़ते लोग। शिष्टाचार के कारण।

लेकिन मैं तो यहां जो बातें छेड़ रहा हूं, वे बातें मौसम की नहीं हैं। मैं किसी शिष्टाचार को मानता नहीं। मैं तो वे बातें छेड़ रहा हूं जो जीवन के लिए रुपांतरित करने वाली हैं।

तुम्हें अड़चन हुई होगी।

तुम कहते हो, "आपके तत्त्वज्ञान या शिक्षा में भक्ति का संपूर्ण अभाव दिखाई देते है।"

चौंका दिया तुमने मुझे! और यहां मेरे पास जितने लोग हैं वे भी चौंक गये होंगे। क्या कह रहे हो? कुछ पते की तो बात करो! चिंदी भी हो और तुम सांप बनाओ तो भी ठीक। पर चिंदी भी नहीं है और तुमने सांप बना लिया। जरा पुनर्विचार करो, जरा आंखों को मींड़ कर, ठंडे पानी के थोड़े छींटे दे कर फिर से देखो। यहां भक्ति ही भक्ति है। यहां प्रेम ही प्रेम है। यह तो प्रेमियों का और मतवालों का समूह है, दीवानों की दुनिया है। यह तो मस्तों की मधुशाला है। यहां तो हम प्रेम की ही शराब पीते हैं और पिलाते हैं। ज्ञान वगैरह से किसको लेना देना है!

और तुम कहते हो, "अध्यात्म में भक्ति बिना ज्ञान मनुष्य का अहंभाव ही प्रदर्शित करता है।"

बड़ी पते की बात कह रहे हो! तुम्हें सब कुछ तो मालूम है, तुम यहां आ कैसे गये! तुममें कमी क्या है? नाहक कष्ट किया। अरे, खबर भेज देते, हम खुद ही हाजिर होते! वहीं सेवा करते आपकी! शिक्षा ग्रहण करते!

ठीक कह रहे हो, अगर भक्ति नहीं है तो अहंभाव ही है। और कुछ हो भी कैसे सकता है? लेकिन यहां भक्ति ही भक्ति है। यहां कहां अहंभाव? मगर तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। तुम्हारे भीतर कहीं गांठ है। तुम पीलिया के मरीज हो। तुम्हें सब पीला पीला सूझ रहा है। कहते हैं सावन के अंधे को हरा ही हरा दिखाई पड़ता है। सावन में जो अंधा हो जाएगा, उनको याददाश्त हरे ही हरे की रहती है। अंधा सावन में हुआ, जब सब हरा था, फिर सब सूख भी जाए तो भी बेचारा वह तो अपनी स्मृति में जीता है, उसको हरा ही हरा दिखाई पड़ता रहता है। उसको जिंदगी भर हरा ही हरा दिखाई पड़ता रहता है।

तुम अपने अहंकार से भरे होओगे। अहंकारी को कहीं भी अहंकार दिखाई पड़ेगा। अहंकारियों को मंसूर में अहंकार दिखाई पड़ गया। क्यों? क्योंकि मंसूर ने घोषणा कर दी अनलहक की, कि मैं सत्य हूं। बस, उनको लगा कि यह अहंकार की बात हो गयी। मैं सत्य! प्रेम नारायण को अगर मिल जाएं उपनिषदों के ऋषि कहीं भूल-चूक से और वे कहें, अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं ब्रह्म हूं, तो प्रेम नारायण कहेंगे, बस, यह तो अहंकार की बात हो गयी!

तुम्हारे भीतर अहंकार पड़ा है, उसका तुम प्रक्षेपण कर रहे हो। तुम्हें वही दिखाई पड़ रहा है। नहीं तो जिसने कहा, अहं ब्रह्मास्मि, वह तो कह ही इसीलिए रहा है कि अब मैं नहीं बचा, इसलिए जो बचा है वह परमात्मा है। लेकिन क्या करे? मजबूरी है, तुम्हारी भाषा का उपयोग करना पड़ता है।

मैं भी तुम्हारी भाषा का उपयोग कर रहा हूं। इसलिए बहुत सोच-समझ कर जिन शब्दों का मैं उपयोग करता हूं उनको ग्रहण करना। नहीं तो तुम्हें अड़चन हो ही जाएगी। जिसने कहा, अहं ब्रह्मास्मि, उसने यह भी कह दिया कि तुम भी ब्रह्म हो। तत्वमसि भी तो उसने कहा। लेकिन बड़े मजे की बात है!

मैं बीस वर्ष तक भारत के गांव-गांव में घूमता रहा। उन बीस वर्षों में मैंने लाखों लोगों से लाखों बार यह कहा, कि आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, और एक व्यक्ति ने भी एतराज न उठाया। एक व्यक्ति ने भी एतराज न उठाया। बल्कि लोग मुझसे कहते थे कि जब आप कहते हैं कि मैं आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, तो हमारा हृदय गदगद हो जाता है, हमारी आंखों से आंसू झरने लगते हैं।

फिर मैंने कहा, बीस साल काफी हो गये कहते-कहते, फिर एक दिन मैंने कहा, अहंब्रह्मास्मि! और वे लोग बहुत चौंके। और मैंने उनसे कहा कि अब मेरे भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करो! उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? यह तो अहंकार की बात हो गयी।

बीस साल से अहंकार की बात नहीं थी। जब तक मैं उनसे कह रहा था तुम्हारे भीतर भगवान विराजमान हैं, तब तक मैं विनम्र था। और जब मैंने कहा कि मेरे भीतर भगवान विराजमान है, तो मैं अहंकारी हो गया। तुम्हारे अहंकार को भरूं तो हृदय गदगद होता है, आंखों में आंसू आते हैं। जब मैंने घोषणा की अनलहक की, तो तुम्हारे अहंकार को चोट पड़नी शुरू हो गयी।

हालांकि मैं वही कह रहा हूं जो तब कह रहा था। तुम्हारे भीतर भी वही बैठा है, मेरे भीतर भी वही बैठा है, सबके भीतर वही बैठा है। उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। लेकिन जिनकी आंखें गदगद हो जाती थीं और जिनके हृदय एकदम भर आते थे, वे सब नदारद हो गये--जब मैने अपने भगवत्ता की घोषणा की, वे सब भाग खड़े हुए; उनका पता नहीं रहा। उनको बड़ी चोट लग गयी कि यह आदमी अहंकारी हो गया।

बीस साल से मैं उनके भगवत्ता की घोषणा कर रहा था और अहंकारी नहीं था। कैसा मजा है! किसी ने भी न पूछा था।

जरा सोचना, प्रेम नारायण! यहां कहां अहंकार! मैं हूं ही नहीं, भगवान ही है। न तुम हो, भगवान ही है। लेकिन तुम्हें अभी ख्याल है कि तुम हो। तुम्हें अभी पकड़ है तुम्हारे होने की। और तुम वही देख सकते हो जो तुमने अपनी सीमा बना रखी है। तुम अपने ही ढंग से सोच सकते हो। दर्पण के सामने आओगे तो तुम्हें क्या दिखाई पड़ेगा? बंदर दर्पण के सामने आएगा तो क्या सोचते हो उसको एकदम देवता दिखाई पड़ेंगे दर्पण में? बंदर ही दिखाई पड़ेगा। और बंदर अगर खिसियाएगा, तो दर्पण में भी दिखाई में भी दिखाई पड़ेगा कि उधर का भीतर का बंदर भी खिसिया रहा है।

एक राजमहल में एक बार एक कुत्ता भीतर खो गया रात, निकल न पाया, दरवाजे बंद हो गये। उस राजमहल में दर्पण ही दर्पण थे। दर्पण से ही बना था। कांच महल था। सारी दीवालों पर दर्पण ही दर्पण थे। वह कुत्ता सुबह मरा हुआ पाया गया। रात भर उस महल के पड़ोस में रहने वाले लोगों ने कुत्ते की चीख-पुकार सुनी, ऐसी जैसी कभी किसी कुत्ते की न सुनी थी। हुआ यूं कि उस कुत्ते ने देखा, जहां देखा वहीं कुत्ते दिखाई पड़े। और कुत्ता देखे कुत्तों को तो भौंके। भौंके तो वे कुत्ते भौंकें। झपटे तो वे कुत्ते झपटें। ऐसे टकराता रहा दर्पणों से। सुबह उसकी लाश पड़ी मिली। और सारे दर्पणों पर खून के दाग पड़े हुए मिले। और वहां कोई भी न था। वह अकेला था।

मैं तो सिर्फ एक दर्पण हूं, इससे ज्यादा नहीं। अगर तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता हो, तो पहले तो यह सोचना कि तुम्हारे भीतर तो नहीं पड़ा है? तुम्हारे भीतर पड़ा है तो वही दिखाई पड़ेगा। तुम भी अगर शून्य हो कर मेरे पास बैठोगे, तो तुम्हें मेरे भीतर शून्य दिखाई पड़ेगा। जो संन्यस्त हो कर मेरे पास बैठे हैं, जिन्होंने अपने अहंकार को सरका कर एक तरफ रख दिया है, जैसे कोई जूते उतार आता है ऐसे अपने अहंकार को उतार दिया है, उन्हें कोई अहंकार दिखाई नहीं पड़ता।

मगर तुम नये-नये हो, स्वाभाविक। दर्पणों के इस महल में खो जाओगे। जरा सोच-समझ कर, नहीं तो नाहक भौंकोगे और परेशान होओगे।

तुम कहते हो, "अहंभावी व्यक्ति महान गुरु हो, यह असंभव है।"

कहा किसने कि अहंभावी व्यक्ति गुरु हो सकता है? गुरु का अर्थ ही यही होता है। गुरु शब्द बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ होता हैः जिसके भीतर प्रकाश हो गया। और इतना ही नहीं, जिसके भीतर का प्रकाश दूसरों के भीतर प्रकाश को जगाने में समर्थ है। जिसकी ज्योति जल गयी और जिसमें भी साहस हो अपनी बुझी ज्योति को उसके पास ले आए, उसकी ज्योति भी जल जाएगी। मगर जिस ढंग से तुमने प्रश्न पूछा है, वह पास आने का ढंग नहीं है, दूर जाने का ढंग है। दीवाल खड़ी करने का ढंग है। आए भी, चूकोगे। आए भी खाली हाथ, जाओगे भी खाली हाथ।

और मैंने ये जो बातें कहीं, इनसे तुम्हें चोट पड़ सकती है, बेचैनी हो सकती है। क्योंकि मैं दो-टूक बातें कहना पसंद करता हूं। चोट पड़नी हो तो जरूर पड़नी चाहिए। चोट पड़ेगी तो ही शायद तुम तिलमिलाओ और जागो। शायद बेचैनी होगी, शायद आज दिन भर तुम परेशान रहोगे, रात सो न सकोगे। ईश्वर करे नींद तुम्हारी सदा के लिए टूट जाए! तुम सदा के लिए जग जाओ! बेचैनी ऐसी हो जाए कि जब तक चैन न मिले, मिटे ही न। यहां जो मेरे पास आना चाहते हैं, उन्हें इतना साहस ले कर आना चाहिए।

और अपनी धारणाओं से मुझे मत देखो, थोड़ा सुनो, थोड़ा समझो, थोड़ा गुनो, थोड़ा पास बैठो, थोड़ा पास सरको। दीवालें मत बनाओ, सेतु बनाओ। सिद्धांतों को बीच में मत लाओ, प्रेम को फैलाओ। थोड़ा इस उत्सव में सम्मिलित होओ। थोड़ी इस मदिरा को पीओ। यह कोई मंदिर नहीं है, मयखाना है; मयकदा है। यह पियक्कड़ों की जमात है। यहां रिंद इकट्ठे हुए हैं। यहां तुम ज्ञान चर्चा मत छेड़ो! यहां तुम शास्त्रों को मत बीच में लाओ! यहां शब्दों की ओट से मत मुझे देखने की चेष्टा करो! क्योंकि वे सब बचने के उपाय हैं। यहां तो नाचो! पैरों में घुंघरू बांधो! ढोल पर थाप दो! मृदंग बजाओ! गीत गाओ! उत्सव में सम्मिलित होओ! यह तो महोत्सव है! यहां तो हर रोज होली है, हर रोज दीवाली है!

आखिरी प्रश्न : भगवान,

क्या प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण, क्राइस्ट या बुद्ध हो सकता है?

सुखदेव सिंह, न तो प्रत्येक व्यक्ति को बुद्ध होने की जरूरत है, न कृष्ण होने की, न क्राइस्ट होने की। और होना भी चाहे तो हो नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होना है। क्यों कोई क्राइस्ट हो? क्यों कोई उधार हो? क्यों कोई अभिनय में पड़े? और अभिनय तुम करोगे तो ऊपर ही ऊपर रहेगा, भीतर न पहुंच सकेगा। लाख रामलीला के राम बनो, रामलीला के ही राम रहोगे। बिल्कुल धनुष-बाण लिये चलो, सीता मैया पीछे चल रही हैं, हनुमान जी साथ हैं, लक्ष्मण जी चले आ रहे हैं, कुछ भी नहीं होगा! रामलीला के राम रामलीला के ही राम रहोगे।

असल में इस अस्तित्व में दो व्यक्ति एक जैसे न कभी पैदा हुए हैं, न हो सकते हैं। तुमने सुना, कितना समय हो गया बुद्ध को हुए, ढाई हजार साल हो गये, कोई दूसरा व्यक्ति बुद्ध हो सका? यूं नहीं हो सका? क्या कुछ लोगों ने कम कोशिश की? क्या कम लोगों ने कोशिश की? लाखों लोगों ने प्रयास किया, जीवन लगा दिये, सब दांव पर लगा दिया, मगर कोई दूसरा व्यक्ति बुद्ध नहीं हो सका। हो ही नहीं सकता। यह ऐसा ही पागलपन है जैसे गुलाब जुही होना चाहे, जुही चंपा होना चाहे, चंपा केवड़ा होना चाहे, केवड़ा कमल होना चाहे। पागल हो जाएंगे सब। पूरा जंगल पागल हो जाएगा। लेकिन जंगल पागल नहीं होता, जुही जुही रहती है, चंपा चंपा

रहती है। किसको पड़ी है? जुही जरा भी फिक्र नहीं करती कि चंपा हो जाए। न चंपा फिक्र करती कि रातरानी हो जाए। न रातरानी को चिंता है कि नरगिस हो जाए।

ये सब पागलपन आदमी को सवार होते हैं। और तब आदमी झंझट में पड़ जाता है। कोई ईसा बनने की कोशिश में लगा है। ईसाई बन कर रह जाता है बेचारा, ईसा नहीं बन पाता। और ईसाई बनना, कार्बन कापी! राम बनने की चेष्टा में हिंदू बन कर रह जाता है, राम नहीं बन पाता। और बुद्ध बनने की चेष्टा में बौद्ध बन कर रह जाता है, बुद्ध नहीं बन पाता।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने ठीक कहा है कि प्रथम और अंतिम ईसाई दो हजार साल पहले सूली पर मर गया। प्रथम और अंतिम--ध्यान रखना! ठीक कहा है उसने! वह आदमी थोड़ा झक्की था, लेकिन बात कभी-कभी झक्की पते की कह जाते हैं। ठीक पते की बात कह दी।

असल में किसी दूसरे की जिंदगी तुम्हारी जिंदगी कैसे हो सकती है? जरूरत भी नहीं है। दुनिया बड़ी बे-रौनक हो जाएगी। जरा सोचो तो, यहां जगह-जगह धनुर्धारी राम दिखाई पड़ें, जहां जाओ वहीं रामचंद्र जी चले जा रहे हैं, एक-एक हनुमान जी को साथ लिए एक-एक सीता मैया, पीछे लक्ष्मण जी चले आ रहे हैं, जहां देखो वहीं, घबड़ा जाओगे एकदम! सिर ठोंक लोगे कि यह क्या हो गया? जीवन का वैविध्य खो जाएगा। जीवन का सौंदर्य खो जाएगा। जहां देखो वहीं कृष्ण-कन्हैया खड़े हैं। बांसुरी लिए, पैर पर पैर नृत्य की मुद्रा में टिकाए, बांसुरी बजा रहे हैं; रुक्मिणी बैठी घर में रो रही हैं, और न-मालूम किसकी राधा उनके आसपास नाच रही है; उपद्रव हो जाएगा! एक कृष्ण पर्याप्त हैं।

सुखदेव सिंह, तुम सुखदेव सिंह ही बनो! परमात्मा ने तुम्हें एक विशिष्टता दी है, तुम्हें एक व्यक्तित्व दिया है। इन झूठों में मत पड़ो।

मैंने सुना है, एक बार अकबर ने अपने दरबार में कहा, अपने नवरत्नों को बुला कर कि अब मैं बूढ़ा हुआ, इधर मैं बहुत प्रशंसा सुनता हूं इस देश में रामायण की, तो मैं कोई राम से छोटा राजा तो नहीं हूं, क्या मेरे जीवन पर रामायण नहीं लिखी जा सकती? आठ रत्न तो चुप ही रहे! क्या कहें? यह भी कोई बात है? अकबर कितने ही बड़े सम्राट हों, मगर रामायण कैसे इनके ऊपर लिखी जा सकती है? एक रत्न बोले, बीरबल, वे रत्न कम थे, रतन ज्यादा थे। महारतन!

उन्होंने कहा कि लिखी जा सकती है। क्यों नहीं लिखी जा सकती? आपमें क्या कमी है? अरे, राम का राज्य आपसे छोटा ही था। आपका राज्य तो और भी बड़ा है, आप तो शहंशाहों के शहंशाह हैं। वे तो राजा राम थे केवल। लिख दूंगा, मैं लिख दूंगा। पर काम मेहनत का है, शास्त्र बड़ा है, एक लाख अशर्फी पेशगी और एक साल का समय। अकबर ने कहा, करो, कोई फिक्र नहीं, इसी समय एक लाख, जो पेशगी मांगते हो ले जाओ। साल भर की छुट्टी।

वे एक लाख अशर्फियां ले कर साल भर बीरबल गुलछर्रे उड़ाते रहे। न तो कोई किताब लिखी--लिखनी-विखनी थी ही नहीं, वह तो महारतन थे! अकबर बीच-बीच में खबर लेता रहा कि क्या हुआ? कहा कि लिखी जा रही है, बस अब लिखी जा रही है, जैसे ही साल पूरा हुआ कि हाजिर कर दूंगा।

साल पूरा हुआ, बीरबल आए, किताब वगैरह कुछ भी न लाए। अकबर ने पूछा, किताब कहां है? बीरबल ने कहा कि और सब पूरा हो गया है, सिर्फ एक ब्यौरे की बात रह गयी है जो आपके बिना कोई बता नहीं सकता; उसके बिना रामायण पूरी नहीं होगी। हमारे राम की सीता को रावण चुरा कर ले गया था। आपकी

बेगम को कौन रावण चुरा कर ले गया? उसका पता दो; उसका नाम बताओ। वह कौन हरामजादा है, कौन गुंडा है?

अकबर तो गुस्से में आ गया, उसने तलवार खींच ली कि तुम पागल हो गये हो? मेरी बेगम पर कोई आंख तो उठाए! आंखें निकलवा लूं! कोई जबान तो खोले! जबान कटवा दूं! तुम कैसी बातें करते हो, जी?

बीरबल ने कहा, महाराज, फिर रामायण नहीं लिखी जा सकती। क्योंकि हमारे राम की सीता को तो रावण चुरा कर ले गया था। और तीन साल तक अशोकवाटिका में लंका में बंद रहीं सीता जी। फिर उनको छुड़ा कर लाया। बिना इसके तो रामायण बनेगी नहीं, मजा ही नही आएगा। असली बात ही निकल गयी, जान ही निकल गयी।

अकबर ने कहा, अगर ये झंझट करनी है, तो हमें रामायण लिखवानी ही नहीं। भाड़ में जाए रामायण! बीरबल ने कहा, जैसी मर्जी, मगर मेहनत साल भर गयी मेरी फिजूल! तो फिर आप कहो तो महाभारत लिख दूं। अकबर ने कहा कि महाभारत का भी नाम बहुत सुना है। यह तो और भी बड़ी किताब है। दो लाख अशर्फियां लगेंगी, पेशगी, बीरबल ने कहा। अकबर ने कहा, वे तो मिल जाएंगी, मगर मैं यह पहले पूछ लूं कि इसमें यह रावण वगैरह तो नहीं आता? सीता की चोरी तो नहीं होगी? कभी नहीं। रावण आता ही नहीं! सीता की चोरी भी नहीं होती, तुम फिक्र ही न करो! इसमें यह झंझट नहीं है। उसने कहा, तू पहले ही कहता। साल भर भी खराब गयी, एक लाख अशर्फियां भी गयीं। कोई बात नहीं, लेकिन जो हुआ हुआ। ये ले दो लाख अशर्फियां।

साल भर फिर उसने गुलछर्रे किये। अब दो लाख अशर्फियां, मजा ही मजा लूटा। बीच-बीच में खबर पहुंचाता रहा कि बस बन रही है, बन रही है, बन रही है, बन रही है। आखिरी दिन आ गया, आ गया खाली हाथ फिर। कहां, किताब कहां है? महाभारत कहां है? उसने कहा कि महाराज, एक ब्यौरे की बात आपके बिना कोई नहीं बता सकेगा, उसके बिना किताब अधूरी रह जाएगी, मजा ही नहीं आएगा। द्रौपदी के पांच पति थे, आपकी बेगम के आप तो एक पति हो, बाकी चार बदमाश कौन हैं? उनके नाम बताओ!

पहली बार तो अकबर ने सिर्फ म्यान पर हाथ ही रखा था, इस बार तो तलवार निकाल ली! कहा, तू ठहर, बीरबल के बच्चे! तूने समझा क्या है? तू मुझे समझता क्या है? मेरे रहते, मेरे जिंदा रहते! बीरबल ने कहा, महाराज, मैं क्या कर सकता हूं? आप तलवार अंदर रखो। आप ही कहते हो, लिखो किताब, लिखता हूं तो उसमें अड़चनें आती हैं। तो फिर कहो तो वेद ही लिख दूं! उसने कहा, हमें लिखवाना ही नहीं। एक बात समझ में आ गयी कि कोई दूसरे की कहानी किसी दूसरे पर चस्पां नहीं की जा सकती। उसने कहा कि आपको जल्दी समझ में आ गयी। कई तो ऐसे नासमझ हैं कि जन्म-जन्म समझ में नहीं आती।

किसी दूसरे की कहानी किसी और पर चस्पां नहीं की जा सकती। न तुम्हें कृष्ण होना है, न राम होना है, न बुद्ध होना है, न क्राइस्ट होना है, तुम तो तुम ही हो जाओ, बस उतना काफी है। तुम्हारा फूल खिले, तुम्हारी सुगंध उड़े, तुम्हारा दीया जले! जरूर तुम जब खिलोगे तो तुम्हारे भीतर भी वही महिमा होगी जो कृष्ण की है, और वही महिमा होगी जो बुद्ध की है, मगर कहानी वही नहीं होगी। रस वही होगा, रंग वही नहीं होगा। अनुभूति वही होगी, अभिव्यक्ति वही नहीं होगी। वाद्य वही होगा, लेकिन धुन तुम पर तुम्हारी बजेगी, गीत तुम पर तुम्हारा उठेगा।

और धन्यवाद करो प्रभु का कि उसने तुम्हें झूठे बनने का कोई अवसर नहीं छोड़ा है। तुम बन ही नहीं सकते, लाख कोशिश करो। तुम सिर्फ वही बन सकते हो जो तुम हो, जो तुम वस्तुतः हो। जो तुम जन्म के साथ ही स्वभाव लेकर आए हो, उसकी ही अभिव्यक्ति होनी है।

नकल में मत पड़ना। नकल में बहुत लोग भटक गये हैं।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

बोध क्रांति है

17 जुलाई 1980; श्री रजनीश आश्रम; पूना

पहला प्रश्नः भगवान,

खामोश नजर टूटे दिल से हम अपनी कहानी कहते हैं :

बहते हैं आंसू बहते हैं!

कल तक इन सूनी आंखों में शबनम थी चांद-सितारे थे

ख्वाबों की गमकती कलियां थीं दिलकश रंगीन नजारे थे

पर अब हमको मालूम नहीं हम किस दुनिया में रहते हैं।

कृपा कर पता बताएं।

दीपक शर्मा, जीवन दो ढंग से जीआ जा सकता है। एक ढंग तो है नींद का। वहां मीठे सपने हैं। पर सपने ही सपने हैं, जो टूटेंगे ही टूटेंगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर की बात है। और जब टूटेंगे तो गहन उदासी छोड़ जाएंगे। जब टूटेंगे तो पतझड़ छा जाएगा। जीवन हाथ से गया सपनों में और मौत द्वार पर खड़ी हो जाएगी।

एक और भी जीवन को जीने का ढंग है। वही वास्तविक ढंग है। वह है, जाग कर जीना। सपनों से मुक्त होकर जीना। फिर आनंद की वर्षा है। फिर अमृत की बूंदा-बांदी है। फिर फूल खिलते हैं और खिलते ही चले जाते हैं। हाथ ही नहीं भरते, प्राणों का आकाश भी फूलों से भर जाता है।

अधिकतर लोग सोए-सोए ही जीते हैं। इसलिए तुम जिस कहानी की बात कह रहे हो, वह सबकी कहानी है। आकांक्षाएं, अपेक्षाएं, वासनाएं, ऐसा कर लूं, वैसा कर लूं--हार ही होने वाली है। पराजय ही हाथ लगेगी। क्योंकि जीवन का शाश्वत नियम ही तुम नहीं समझे कि तुम अलग नहीं हो, इस अस्तित्व के साथ एक हो। इस अस्तित्व के ही साथ बहो। तुम्हारे सपने तुम्हें अलग तोड़ते हैं। तुम्हारे सपने तुम्हें पृथक होने की भ्रांति देते हैं। ऐसा लगता है, मुझे कुछ करना है, मुझे कुछ होना है। और ध्यान रहे, लहर स्वयं क्या होगी? कैसे होगी? सागर के साथ रहे तो सब कुछ है। अलग-थलग माने कि, फिर हाथ पीड़ा ही लगेगी, संताप ही लगेगा। नदी तो जाती हो पूरब की तरफ और नदी की एक लहर कल्पना करने लगे पश्चिम की तरफ जाने की, नदी के विपरीत जाने की, तो हारेगी। इसमें कसूर नदी का नहीं है। इसमें भ्रांति है लहर की, कि मैं अलग हूं।

संन्यास का अर्थ इतना ही है कि मैं नदी के साथ बहूंगा। अब मेरी कोई अलग योजना नही, कोई लक्ष्य नहीं। जो इस समष्टि का लक्ष्य है, वही मेरा लक्ष्य है, अगर कोई लक्ष्य हो तो ठीक, न हो तो ठीक। यह विराट जहां जा रहा है--अगर जा रहा हो कहीं तो ठीक, न जा रहा हो तो ठीक। मैं चिंता क्यों सिर लूं? ये दो क्षण जीवन के मिले हैं, नाचूं, गुनगुनाऊं, बांसुरी उठाऊं, पैरों में घंघरू बांधूं। यह अहोभाग्य मिला। ये आंखें मिली हैं, सौंदर्य से भर लूं; यह हृदय मिला है, प्रीति से आंदोलित हो लूं; यह संभावना मिली है, इसको सत्य बना लूं, न सपनों में खोया रहूं।

और सपने भी हम क्या देखेंगे? हमारे सपने हमसे बड़े तो नहीं हो सकते, हमसे छोटे ही होंगे।

एक बिल्ली एक वृक्ष पर चढ़ी सपना देख रही थी। दोपहर है, वृक्ष की घनी छाया है। नीचे एक कुत्ता लेटा हुआ था वृक्ष के, वह देख रहा था कि बिल्ली सोयी है और बड़ी मग्न हो रही है। बिल्ली की मुस्कुराहट साफ दिखायी पड़ रही थी। जरूर कुछ मजा ले रही है!

कुत्ता जरा खांसा, खंखारा, भौंका, बिल्ली की नींद टूटी; बिल्ली ने कहा, क्या शोरगुल मचा दिया? कम से कम दोपहर तो चुप रहा करो! क्या मजे का सपना देख रही थी, तोड़ दिया! कुत्ते ने कहा, इससे ही तो खांसा-खंखारा। क्या सपना देख रही हो? मैं भी तो सुनूं!

बिल्ली ने कहा, सपना देख रही थी कि वर्षा हो रही है और चूहे ही चूहे गिर रहे हैं, पानी नहीं। कुत्ते ने कहा, धत तेरे की, अरे मूरख, शास्त्र पढ़े हैं? ! शास्त्रों में साफ जिखा है कि जब वर्षा होती है तो हड्डियां बरसती हैं, चूहे नहीं। कुत्तों के शास्त्र में तो यही लिखा है कि हड्डियां बरसती हैं। बिल्ली ने कहा, तुम किन शास्त्रों की बात कर रहे हो? अरे, हमारे शास्त्रों में साफ लिखा हैः जब परमात्मा देता है तो चूहे ही चूहे बरसते हैं। और हमारे ही शास्त्रों में नही लिखा है, आदमी तक कहते हैंः मूसलाधार वर्षा। आदमी भी हमसे राजी हैं।

कुत्तों के अपने सपने होंगे। कुत्तों से भिन्न नहीं होंगे। हड्डियां ही बरसेंगी। बिल्लियों के अपने सपने होंगे। बिल्लियों से भिन्न नहीं होंगे। चूहे ही बरसेंगे।

तुम सपने क्या देखोगे? वही तो न, जो तुम अपने अंधेरे में, अपने अज्ञान में, अपनी मूर्छा में देख सकते हो। तुम्हारे सपने तुमसे बड़े नहीं हो सकते।

तुम कहते हो, दीपक शर्मा--

"खामोश नजर टूटे दिल से हम अपनी कहानी कहते हैं।"

सभी को एक दिन ऐसी ही कहानी कहनी पड़ती है। दिल टूटा होता है--तार-तार टूटे होते हैं; हृदय क साज टूट गया, फूट गया होता है। आंखें धुंधला गयी होती हैं, सपने देखते-देखते अंधी हो गयी होती हैं। अंधेरे में रहते-रहते प्रकाश को देखने की क्षमता खो चुकी होती हैं। शब्द भी नहीं सूझते कि कैसे कहें, क्या कहें? लेकिन खामोश नजरें सब कह देती हैं। कहते हो--

"बहते हैं आंसू बहते हैं"

और कुछ बचता ही नहीं फिर पास। खामोश नजरें। उदास नजरें, उदासीन चेहरे, जीवन भर के टूटे सपनों के ढेर, खंडहर ही खंडहर। और ध्यार रहे, जो हारते हैं वे हारते ही हैं, इस जगत में जो जीतते हुए मालूम पड़ते हैं वे भी हार जाते हैं। यहां कोई जीतता ही नहीं, सिर्फ उन थोड़े-से लोगों को छोड़कर जो समय रहते जाग जाते हैं। हमने उन्हें यूं ही तो बुद्ध नहीं कहा। बुद्ध का अर्थ होता हैः जागा हुआ। हमने उन्हें यूं ही तो जिन नहीं कहा। जिन का अर्थ होता हैः जीता हुआ। हम तो हारे हुए हैं और हम तो सोए हुए हैं; न बुद्ध, न जिन। हम तो बुद्धों को भी मानते हैं तो सिर्फ मानते हैं--नींद में ही पूजा भी कर लेते हैं, प्रार्थना भी कर लेते हैं, अर्चना भी कर लेते हैं। जिन को भी मानते हैं तो जिन नहीं होते, जैन हो जाते है! जिन होओ--जागो, जीओ, जीतो! जैन हो गये अर्थात चूक गये। आते-आते हाथ सूत्र, लगते-लगते हाथ चूक गये। मुड़ते थे ठीक मोड़ पर, मगर फिर भटक गये। फिर क्षुद्र बातें ही हाथ में रह जाती हैं।

एक मित्र, जिनेश्वर ने पूछा है :

भगवान, थोड़े दिन पहले जैन मंदिर की प्रतिमा से पानी टपक रहा था। जैन कहते हैं कि अमृत झर रहा हैं, अब आनंद ही आनंद होगा। तथाकथित धर्म स्थानों में ऐसा चमत्कार होता ही रहता है। यह प्रतिमा मानव

जीवन की रुग्णता देखकर आंसू बहाती है अथवा अमृत वर्षा करती है--यह कैसे पता चले? कृपया, समझाने की कृपा करें।

न तो अमृत झर रहा है, न आंसू झर रहे हैं। प्रतिमा तो पत्थर है, रोएगी भी क्या, करुणा भी क्या करेगी? लेकिन बड़े चालबाजों के हाथ में धर्म पड़ गया है। ऐसे पत्थर होते हैं जो पानी सोख लेते हैं। ऐसे पत्थर हैं--अफ्रीका में भी होते, हैं, कश्मीर में भी होते है--जो हवा से भाप को सोख लेते हैं। और वही भाप ठंढक पाकर पानी के बूंद बन कर प्रतिमा पर जम जाती है। और तब बुद्धुओं की जमात एक से एक बातें कहेगी। ये तरकीबें पंडित-पुरोहित सदियों से काम में लाते रहे हैं लोगों को अंधा करने के लिए।

मगर कभी तुम यह तो सोचो, जब खुद महावीर जिंदा थे तब भी आनंद आनंद नहीं हुआ, अमृत नहीं बरसा, अब क्या खाक पत्थर की प्रतिमा से बरसेगा? जब महावीर मौजूद थे स्वयं, तब कितना आनंद बरसा? कितने जीवन आंदोलित हुए? और तुमने महावीर के साथ क्या किया? कानों में खीले ठोंके, सताया, मारा, एक गांव से दूसरे गांव भगाया, पागल कुत्ते महावीर के पीछे छोड़े, खूंख्वार कुत्ते महावीर के पीछे लगाए। क्योंकि महावीर की नग्नता तुम्हें सालती थी, अखरती थी। महावीर की नग्नता उनकी सरलता की उदघोषण थी; जैसे छोटा बच्चा। लेकिन उनकी नग्नता तुम्हें अड़चन देती थी। उनकी नग्नता तुम्हें भी खबर देती थी कि हो तो तुम भी नग्न, वस्त्रों में कितना ही अपने को छिपाओ, सचाई छिपेगी नहीं छिपाने से, उघड़ो। तुम्हें बेचैनी होती थी, घबड़ाहट होती थी। तुम समझते थे यह आदमी हमें भ्रष्ट कर रहा है, हमारे बच्चों को भ्रष्ट कर रहा है। गांव में टिकने नहीं देते थे महावीर को।

महावीर जब जीवित थे तब आनंद ही आनंद नहीं बरसा, अमृत नहीं बरसा, अब किसी पत्थर की प्रतिमा पर पानी की बूंदें जम जाएंगी और आनंद ही आनंद हो जाएगा! कुछ तो गणित भी याद करो! ये तो सीधे-से गणित हैं।

लोग कहते हैं कि जब धर्म की हानि होती है तो भगवान का अवतार होता है। कृष्ण के वचन का लोग उद्धरण करते हैंः संभवामि युगे युगे, आऊंगा, युग-युग में आऊंगा; यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः, जब भी ग्लानि होगी धर्म की, आऊंगा। मगर तब आए थे, तब कौन से धर्म की पुनर्स्थापना हो सकी? महाभारत हुआ, धर्म की कोई पुनर्स्थापना तो नहीं हुई। हिंदुओं के हिसाब के कोई एक अरब आदमी महाभारत के युद्ध में मरे, कटे। धर्म का कोई अवतरण तो नहीं हो गया।

सच तो यह है कि महाभारत में भारत की जो रीढ़ टूटी, वह फिर आज तक ठीक नहीं हुई। महाभारत में जो भारत की आत्मा मरी, वह अब तक पुनरुज्जीवित नहीं हो सकी। महाभारत के बाद भारत फिर उठ नहीं पाया, अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाया। फिर टूटता ही गया, बिखरता ही गया, खंडित ही होता गया।

ईसाई कहते हैं कि जीसस का अवतरण हुआ था मनुष्य के उद्धार के लिए। वे आए ही इसलिए थे, परमात्मा ने भेजा ही इसलिए था... एकमात्र बेटे हैं वे परमात्मा के, इकलौते पुत्र! अपने इकलौते बेटे को परमात्मा ने भेजा कि जाओ, अब मनुष्य का उद्धार करो। ये तो सब बातें ठीक, मगर मनुष्य का उद्धार कहा हुआ! यह तो कोई देखता ही नहीं, यह तो कोई पूछता ही नहीं। मनुष्य का तो उद्धार नहीं हुआ है, जीसस को सूली लग गयी। यही अगर मनुष्य का उद्धार है तो बात अलग। और ईसाइयत भी फैल गयी दुनिया में तो कोई मनुष्य का उद्धार हो गया!

लेकिन लोग इसी तरह की व्यर्थ की बातें फैलाते फिरते हैं। और आश्चर्य तो यह है कि हम सदियों-सदियों से इन्हीं घन-चक्करों के चक्कर में पड़े रहते हैं। हमें होश भी नहीं आता। हम फिर-फिर उन्हीं मूढ़ताओं में पड़ जाते हैं।

न तो कोई चमत्कार है इसमें, न कुछ विशिष्टता है। जरा उस पत्थर की परीक्षा करवा लेना पत्थर के विशेषज्ञों से और तुम्हें पता चल जाएगा कि वह पोरस पत्थर है। उसमें छोटे-छोटे छेद हैं, जिन छेदों से वाष्प भीतर प्रवेश कर जाती है। और जब भी ठंडक मिलती है, तो स्वभावतः वाष्प पानी में बदल जाती है। पानी में बदली तो छिद्रों के बाहर आकर बहने लगती है। अब तुम्हारी जो मर्जी हो आरोपित करने की, गरीब पत्थर पर आरोपित कर दो। और अगर अमृत है यह, तो चाट क्यों नहीं जाते? तो कम से कम जैन अमर हो जाएं। और ज्यादा जैन भी नहीं हैं, कोई पैंतीस लाख हैं ही, मुल्क में इतनी मूर्तियां हैं, चाट जाओ सारी मूर्तियां को! कम से कम तुम्हीं अमर हो जाओ। जब अमृत ही मिल रहा है तो क्यों चूक रहे हो?

और ये तो हर साल घटनाएं घटती हैं। और आनंद तो कहीं दिखायी पड़ता नहीं, बस सपने ही सपने हैं। इन सपनों में ही अपने को भुलाए रखोगे तो आज नहीं कल रोओगे, जार-जार रोओगे। फिर आंसू ही आंसू बहेंगे।

इसमें कसूर किसका है, दीपक शर्मा!

कहते हो--

"कल तक इन सूनी आंखों में शबनम थी चांद-सितारे थे"

सब झूठे! अगर सच्चे होते तो आज भी होते। कल ही क्यों? झूठ होते हैं तो कल होते हैं तो आज नहीं होते, आज होते हैं तो कल नहीं होते। इस जगत में जो झूठ है, वह बदलता रहता है; जो सत्य है, वह शाश्वत है। लेकिन हम झूठ में खूब उलझ जाते हैं। हम झूठ से बहुत प्रभावित होते हैं। सच तो यह है, हम बदलाहट से ही आकर्षित होते हैं।

देखा तुमने किसी कुत्ते को बैठे हुए? बैठा है चुपचाप। कोई चीज हिलती-डुलती नहीं, तो चुपचाप बैठ रहेगा। फिर जरा सा कोई चीज को हिला-डुला दो, एक पत्थर में धागा बांधकर उसे जरा खींच दो दूर बैठकर और कुत्ता एकदम चौंककर खड़ा हो जाएगा। जब तक पत्थर जगह पर पड़ा था एक, कुत्ता निश्चिंत था। पत्थर हिला कि कुत्ता जागा, कि भौंका, कि आकर्षित हुआ कि मामला क्या है?

यह कुत्ते का ही नहीं लक्षण है, यह सारे मन का लक्षण है। इसलिए जो चीज बदलती नहीं, वह दिखायी नहीं पड़ती। तुम अपनी पत्नी को देखते हो? वह तुम्हें दिखायी नहीं पड़ती। वह बदलती ही नहीं। वह वही की वही पत्नी--कल भी थी और आज भी है, कल भी होगी। लेकिन पड़ोसी की पत्नी, पड़ोसियों की पत्नियां, उन्हें तुम टकटकी लगाकर देखते हो। तुम्हें अपना घर दिखायी पड़ता है? कुछ दिखायी नहीं पड़ता। तुम परिचित हो। सब चीजें अपनी जगह होती हैं तो कुछ दिखायी नहीं पड़ता। हां, कोई अदल-बदल हो जाए, रात कोई चोर घर में घुस जाए, सामान इधर का उधर कर दे; कुर्सी सरकी मिले, दरवाजा खुला मिले, ताला टूटा मिले, तो तुम चौंकते हो। परिवर्तन आकर्षित करता है। अगर चीजें थिर हों, तो आकर्षित नहीं करतीं।

इसीलिए तो फैशन रोज-रोज बदलने पड़ते हैं। कारण साफ है। क्योंकि फैशन का मतलब ही यह होता है, जो चीज आकर्षित करे। अगर बदलो मत, तो आकर्षण खो जाता है। इसलिए नयी-नयी साड़ियां चाहिए, नये-नये ढंग के बार्डर चाहिए, नये-नये ढंग की छपाई चाहिए, नये-नये ढंग के वस्त्र चाहिए। फिर-फिर लौट आते हैं कुछ दिनों बाद वही पुराने वस्त्र, लेकिन तब वे नये हो जाते हैं। चीजें फिर-फिर लौट आती हैं फैशन में; एक दस-पंद्रह साल फैशन में नहीं रही तो लोग भूल चुके होते हैं, फिर नयी हो गयीं, फिर लौट आती हैं। स्त्रियों ने फिर

कान छिदाने शुरू कर दिये, फिर कान में बाले आ गये। फिर नाक छिदने लगीं। फिर गुदने गूदे जाने लगे। चले गये थे, बाहर हो गे थे फैशन के, अब फैशन में वापस लौटने लगे। फिर वापस चले जाएंगे। यूं ही चलता रहता है। बदलाहट चाहिए।

जिस चीज के तुम आदी हो जाते हो, उसमें रस खो जाता है। रोज-रोज वही भोजन, रस खो जाएगा। नया-नया भोजन चाहिए। रोज-रोज नयी-नयी फैशन चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन की दिली आकांक्षा थी कि वह अपनी पत्नी को ऐसा कुछ करिश्मा दिखाए कि वह हैरान हो जाए। विस्मय-विमुग्ध हो जाए। एक दिन उन्होंने सोचा कि मैं अपनी लंबी दाढ़ी कटवा कर घर जाऊं तो शायद मेरी पत्नी चौंक जाएगी। ऐसा सोच उन्होंने अपनी दाढ़ी-मूंछ साफ करवायी और घर जा पहुंचे। रात का समय, नौकर ने दरवाजा खोला, मुल्ला सीधे बेड रूम में जाकर सो गया। थोड़ी देर बाद जब गुलजान की नींद खुली तो उसने मुल्ला के चिकने गालों पर हाथ फेरते हुए कहा कि अब तुम जाओ चंदूलाल, मेरे पति के घर आने का समय हो गया होगा।

वही दाढ़ी होती तो चल जाता। लेकिन ये चिकने-चिकने गाल और चंदूलाल तो बिल्कुल सफाचट है--इसीलिए तो चंदूलाल उनका नाम है!

यहां तो चीजें दिखायी ही तब पड़ती हैं जब बदलाहट होती रहे। स्त्रियां क्यों इतना रस लेती हैं श्रृंगार में? ताकि वे ताजी होकर निकलें, नयीं होकर निकलें, ताकि लोगों की आंखें टिकी रह जाएं। दुनिया बड़ी अजीब है यह! स्त्रियां चाहती हैं कि लोग टकटकी लगाकर देखें! और फिर कोई टकटकी लगाकर देखे तो कहती हैं--लुच्चा है। लुच्चा का मतलब ही होता हैः जो टकटकी लगाकर देखे।

लुच्चा शब्द बनता है लोचन से। लोचन यानी आंख। लुच्चा का वही मतलब होता है जो आलोचक का होता है; दोनों में कुछ भेद नहीं है। आलोचक भी लोचक से ही बनता है और लुच्चा भी लोचन से। लुच्चा का मतलब है, देखे ही जाए, देखे ही जाए, आंख गड़ाए रहे। और पूरी घटों मेहनत की इसी बिचारे के लिए है। और अब जब देख रहा है तो दिल नाराज होता है।

मैं एक कालेज में अध्यापक था। एक दिन बैठा था प्रिंसिपल के कमरे में, कुछ बात चल रही थी। वह कुछ ऊंची-ऊंची बातों में रस लेते थे; तो कभी-कभी मुझे बुला लेते थे। उनको रस्ते लगाने के लिए मैं कभी-कभी पहुंच भी जाता था। तभी एक युवती आयी। बहुत सजी-धजी। काजल वगैरह लगाए हुए। बाल सजाए हुए, इत्र छिड़के हुए। और उसने कहा कि ये फलां लड़के ने कंकड़ मारा है। और चिट्ठियां लिखता है, और दीवालों पर मेरा नाम लिखता है। मेरे बर्दाश्त के बाहर है।

उन्होंने मुझसे कहा कि आप कुछ समझाइए इस लड़के को बुलाकर। इसकी बहुत शिकायतें आ रहा हैं। यह पहला मौका नहीं है। और भी लड़कियों ने यह शिकायत की है। मैंने कहा, इस लड़के को पीछे देखेंगे, अब यह लड़की आ गयी है, पहले इससे निपट लें।

वह लड़की थोड़ी चौंकी। उसने कहा, मैंने तो कोई कसूर नहीं किया। मैंने कहा, कसूर नहीं किया, यह काजल किसलिए लगाया हुआ है? ये बाल इतने क्यों संवारे हुए हैं? ये इत्र किसलिए छिड़का हुआ है--किसके लिए छिड़का हुआ है? यहां कोई तुम्हारा स्वयंवर रचा जा रहा है? और वह बेचारा तुम्हारे श्रम को सार्थक कर रहा है; तो नाराजगी क्या है? उसका कसूर क्या है? उसका नंबर दो कसूर है। वह सिर्फ मूरख है और कुछ भी नहीं। वह तुम्हारा चाल में आ गया। मैंने कहा, बुलाओ उस लड़के को, मै उसको देखूं, वह मूरख होना ही

चाहिए। नहीं तो कौन तुम्हारी चाल में आएगा? कितना ही काजल लगाओ, ये गोल-मटोल तेरी आंखें मछली जैसी नहीं बन सकतीं! वह कौन नालायक है, उसको बुलाओ!

वह लड़की जो नदारद हुई सो लौटी ही नहीं। मैंने प्रिंसिपल को कहा कि बुलवाओ उस लड़की को। चपरासी भिजवाया। वह लड़की तो घर ही भाग गयी। उसने तो यह सोचा ही नहीं था।

कसूर... लेकिन बड़े अजीब हैं, आदमी के तर्क बड़े अजीब हैं! और स्त्रियों का तर्क तो और भी अजीब है! उनका हिसाब ही अजीब है। धक्का न मारो, तो उनकी जिंदगी बेकार गयी। धक्का मारो, तो वह पुलिस में रिपोर्ट करवाने को हाजिर हैं। और घर से पूरी तैयारी करके निकलेंगी कि कोई धक्का मारे। जब तक तुम धक्का न मारो, उनकी तैयारी बेकार गयी। वह घंटों जो मेहनत की, कोई सार्थक करे। और जिसने सार्थक की, वह फंसा। वह फिर जीवन भर रोएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मक्खियां मार रहा था। पत्नी ने पूछा, कितनी मार चुके? कहा, अभी तक तो केवल तीन मार पाया हूं। एक नर, दो मादाएं। पत्नी ने कहा, हद कर दी तुमने! तुम कैसे पहचाने कि मक्खी में कौन नर है, कौन मादा? उसने कहा, जो नर थी मक्खी, वह अखबार पर बैठी थी। और ये दो मादाएं दो घंटे से दर्पण पर ही बैठी हैं! जाहिर है कि कौन नर है, कौन मादा है, इसमें कोई बहुत बड़ा हिसाब लगाने की आवश्यकता नहीं है। ये दो घंटे से दर्पण पर क्या कर रही हैं!

फैशन बदलता है। सपने बदलते रहते हैं, यही उनकी खूबी है। सत्य शाश्वत है। जैसे का तैसा है। संतों ने कहा है, ज्यूं का त्यूं ठहराया। जिस दिन तुम उसमें अपने मन को लगा लोगे, जो जैसा है वैसा ही है, जस का तस, जरा भी बदलता नहीं। मगर उसमें तुम्हारा रस नहीं है। रस बदलाहट में है। और इसलिए एक दिन जीवन में दुख आएगा, विषाद आएगा।

खुदा के हुस्न ने इक दिन यह सवाल किया
क्यों न मुझे जहां में तूने ला.जवाल किया

सौंदर्य ने एक दिन परमात्मा से पूछा कि तूने मुझे शाश्वतता क्यों न दी? क्षण भंगुरता क्यों दी? मुझे जहां में तूने लाजवाल क्यों न किया?

सदा ठहरनेवाला क्यूं न बनाया?

यह प्रश्न सार्थक मालूम होता है। सौंदर्य जैसी चीज बनायी... गुलाब का फूल खिला, सुबह खिला और सांझ पखुड़िया झर गयीं, यह भी क्या बात हुई! इससे तो हमारे वैज्ञानिक ज्यादा होशियार हैं। प्लास्टिक का फूल बनाते हैं, बना दिया एक दफे सो बना दिया। टिका ही रहता है। जब चाहो तब धो, नहलाओ, साबुन से साफ करो, फिर ताजा का ताजा! प्लास्टिक में जो शाश्वतता है, इतनी भी शाश्वतता नहीं है गुलाब के फूल में, क्या परमात्मा ने फूल बनाया! पूछा होगा सौंदर्य ने।

खुदा के हुस्न ने इक दिन यह सवाल किया
क्यों न मुझे जहां में तूने लाजवाल किया

बनाया भी मुझे, इतनी मेहनत से बनाया, तो सदा के लिए बना दिया होता। जवानी दी थी तो दे ही दी होती, फिर लेनी क्या? फिर क्या बुढ़ापा?

मिला जवाब : तस्वीरखाना है दुनिया
शबे-दरा.जे अज्म का फसाना है दुनिया

यह दुनिया तो एक चित्रशाला है। यहां रंग बदलते रहने चाहिए। तो ही यहां आकर्षण है। इसकी रचना ही मिटने वाले रंगों से हुई है। अगर रंग ठहरे ही रहें, ठहरे ही रहें, तो कौन देखेगा उन्हें? लोग उदास हो जाएंगे; लोग बोर हो जाएंगे। इसलिए हर चीज बदलती हुई है। प्रतिपल बदलती हुई है। सब क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है।

मिला जवाब : तस्वीरखाना है दुनिया

शबे-दरा.जे अज्म का फसाना है दुनिया

हुई है रंगे-तगय्युले से नमूद इसकी

हसीं वही है, हकीकत है .जवाल जिसकी

मिट जाने वाला जो है, वही यहां मालूम सौंदर्य मालूम होता है, वही यहां सौंदर्य है। जितनी जल्दी मिट जाने वाला है, उतना ज्यादा सुंदर मालूम होता है। उतना ही जल्दी लोग उसे पकड़ रखना चाहते हैं; उतना ही ठहरा लेना चाहते हैं। ठहरता नहीं, इसलिए। इसलिए लोग यहां उन चीजों में उत्सुक होते हैं जो जल्दी बदल जाने वाली हैं।

आत्मा में किसकी उत्सुकता है? आत्मा बदलती ही नहीं। तो कहते हैं, आज नहीं कल खोज लेंगे, कल नहीं परसों, इस जन्म नहीं तो अगले जन्म; चौरासी करोड़ योनियां पड़ी हैं, जल्दी क्या है? मगर फिल्म तो आज लगी है उसका क्या ठिकाना, कल रहे न रहे, उसे तो देख आएं। मंदिर तो सदा है, गीता तो कल भी पढ़ लेंगे, अखबार जो आज का है वह कल पुराना पड़ जाएगा। गीता तो कल भी पुरानी है, आज भी पुरानी है--पुरानी ही पुरानी है, वही की वही है।

लोग सुबह से अखबार पढ़ते हैं, गीता और कुरान नहीं। अखबार को जल्दी पढ़ लेना चाहते हैं। क्यों? दोपहर होते-होते तो कचरा हो जाएगा। दोपहर को तो दोपहर के संस्करण आ जाएंगे। सांझ को सांझ के संस्करण आ जाएंगे। इतनी जल्दी बदल जानेवाली चीज है कि पढ़ लो तो पढ़ लो, नहीं तो चूक गये। गीता में क्या जल्दी है? है, आज नहीं कल, कल नहीं परसों।

हसीं वही है, हकीकत है .जवाल जिसकी

सौंदर्य के लिए लोग इसीलिए तो इतने दीवाने हैं। सपनों के लिए लोग इसीलिए इतने पागल हैं।

कहीं करीब था, ये गुफ्तगू"कमर" ने सुनी

चांद ने यह बात सुन ली--सौंदर्य जब परमात्मा से पूछ रहा था। रहा होगा कहीं करीब।

.फलक पर आम हुई, अख्तरे-सहर ने सुनी

चांद ने सुनी तो सारे आकाश को खबर कर दी। आकाश के द्वारा सूर्य की पहली किरणों को पता चल गयी।

.फलक पर आम हुई, अख्तरे-सहर ने सुनी

सितारे से सुनकर सुनाई शबनम को

तारों को पता चला तो तारे जाते-जाते ओस की बूंदों को कह गये कि सुन लो, यहां वही सुंदर है जो सदा नहीं। इसीलिए तो ओस की बूंद इतनी सुंदर मालूम पड़ती है। अभी है, अभी गयी। जरा-सी सूरज की किरणें आईं, धूप पड़ी, ओस की बूंद उड़ गयी। महावीर ने तो जीवन को कहा ही हैः घास की पत्ती पर टिकी हुई ओस की बूंद। जरा हवा को झोंका आया, यह सरका, वह सरका, देर नहीं लगती।

इसीलिए तो हम जीवन को इतने जोर से पकड़ते हैं। लाख हमसे कहते हैं बुद्ध पुरुष, भीतर जाओ, हम कहते हैं, जाएंगे, लेकिन बाहर का सारा खेल-तमाशा तो देख लें। यहां एक से एक चमत्कार हो रहे हैं बाहर, एक से एक खिलौने ईजाद किए जा रहे हैं। और भीतर की दुनिया तो सदा वही हैं, इतनी जल्दी क्या है वहां जाने की? बुढ़ापे में देखेंगे, मरते वक्त देखेंगे; पहले यह सारी रंगीन दुनिया पहचान लें।

इसलिए हिंदुओं ने तो व्यवस्था कर रखी थी कि संन्यास लेना ही चौथी अवस्था में, पचहत्तर साल के बाद। बेटा, न बचोगे न संन्यास लेना पड़ेगा! झंझट ही मिटी अब भारत में तो औसत ही उम्र कोई छत्तीस साल है। और वैज्ञानिकों ने बहुत खोजबीन की है, पांच हजार साल तक की जो लाशें मिली हैं भारत में, जो हड्डियां मिली हैं उनसे एक अजीब बात सिद्ध होती है कि कोई हड्डी चालीस साल की उम्र से ज्यादा पुरानी नहीं है। मतलब चालीस साल से ज्यादा कोई आदमी पांच हजार साल पहले जिंदा नहीं रहता था। लाख तुम कहो कि हमारे ऋषि-मुनि बड़ी लंबी आयु वाले होते थे, मगर एक भी हड्डी गवाही नहीं देती। हड्डियां तो चालीस साल की गवाही देती हैं। मगर लंबे लगते रहे होंगे समय, क्योंकि रफ्तार चीजों की धीमी थी। रफ्तार जब धीमी होती है तो चीजें बड़ी लंबी होती हैं। अभी भी देहात में लोग गिनती ही नहीं जानते। तुम किसीसे पूछो, कितनी उम्र? तो नहीं बता सकते वे। चालीस साल भी बहुत लंबे मालूम होते है। और यहां जिंदगी रफ्तार इतनी बढ़ गयी है तेजी से कि यहां चालीस साल तो आनन-फानन चले जाते हैं।

पश्चिम में तो और तेजी से भाग-दौड़ है। तो चीजें और जल्दी बदल जाती हैं। कोई आदमी तीन साल से ज्यादा एक मकान में पश्चिम में नही रहता। न तीन साल से ज्यादा एक नौकरी में टिकता है। न कोई शादी तीन साल से ज्यादा टिकती है। तीन साल आखिरी सीमा मालूम पड़ती है बर्दाश्त की। एक-एक आदमी जिंदगी में आठ-आठ, दस-दस शादियां कर लेता है।

एक हालीवुड की अभिनेत्री के बाबत तो पता चला कि जब उसने इक्कीसवीं शादी की, तो शादी के चौथे दिन बाद पता चला कि यह आदमी एक बार पहले भी उसका पति रह चुका है। अब इक्कीस पति रह चुके, कौन ठिकाना रखेगा! जमाना बीत चुका होगा जब कभी यह पति रहा होगा। वर्षों बीत गये होंगे। हो सकता है, बीस-पच्चीस साल पहले रहा होगा। अब बीस-पच्चीस साल पहले की किसको याद! इस बीच कितना गंगा का पानी बह गया! यह तो तीन-चार दिन बाद कुछ-कुछ शक उसे हुआ, कि यह आदमी तो कुछ जाना-पहचाना लगता है। जैसे किसी जन्म में, किसी अतीत काल में कोई परिचय रहा हो। जैसे जाति-स्मरण हुआ हो। दे जा वू। शायद, इसको कभी देखा है, कहीं देखा है!

उस आदमी को भी थोड़ा शक हुआ कि यह औरत यूं तो बहुत बदल गयी, मगर कुछ-कुछ पहचानी मालूम पड़ती है। नाम भी सुना हुआ मालूम पड़ता है। दोनों ने अपनी कथा-व्यथा कही, तब पता चला कि ये तो पहले भी पति-पत्नी रह चुके हैं। सिर ठोंक लिया। वहीं समाप्त हो गयी बात। समाप्त होने में देर लगती। जरा-सी बात में समाप्त हो सकती है।

एक दूसरी घटना मैंने सुनी है कि एक अभिनेत्री और एक अभिनेता विवाह रजिस्टर करने वाले दफ्तर में गये और दस्तखत कर रहे थे कि दस्तखत करने के बाद ही अभिनेत्री ने कहा कि मुझे तलाक देना है। दस्तखत किये हैं रजिस्टर में अभी, अभी स्याही भी नहीं सूखी और विवाह सूख गया। कि मुझे तलाक देना है। वह मजिस्ट्रेट भी बहुत चौंका। उसने बहुत तलाक देखे थे जिंदगी में, मगर इतने आनन-फानन! अभी सुहागरात भी नहीं हुई। अभी कुछ हुआ ही नहीं; सुहागरात तो दूर, अभी गले भी नहीं मिले, हाथ भी नहीं मिलाया; अभी आलिंगन-चुंबन कुछ भी नहीं हुआ; अभी तो सिर्फ रजिस्टर में दस्तखत हुए हैं।

उसने पूछा कि मैं थोड़ा हैरान हूं, अगर ऐसा ही तलाक करना था तो विवाह किसलिए किया? क्या कारण है तलाक की इतनी जल्दी का? उस स्त्री ने कहा, नहीं यह आदमी मुझे जंचता ही नहीं; इससे मेरी टिकेगी नहीं, एक दिन नहीं टिकेगी। फिर भी, उसने कहा, मैं कारण तो सुन लूं; तलाक लेना हो तो लो, लेकिन कारण क्या है? उसने कहा, कारण यह है कि देखो, दस्तखत देखो इसके। इतने बड़े-बड़े अक्षरों में किए है! और मैंने इतने छोटे-छोटे अक्षरों में। यह अभी से अपनी हेंकड दिखा रहा है। यह नहीं चलेगा, यह हेंकड़पन नहीं चलेगा! यह बात शुरू हो, इसके पहले ही बंद कर देना बेहतर है। इसने जान कर यह हरकत की है।

और जरूर, जब देखा मजिस्ट्रेट ने तो वह भी हैरान हुआ। हस्ताक्षर क्या किये थे, उसने पूरा पन्ना भर दिया था। इतने बड़े-बड़े अक्षर बनाए थे कि पहली कक्षा का विद्यार्थी भी इतने बड़े-बड़े अक्षर नहीं लिखता। टक्कर शुरू हो गयी अहंकारों की।

यहां हमारी उत्सुकता भाग-दौड़ के जीवन में है। और उसका कारण ही कुल इतना है कि मन आकर्षित ही होता है परिवर्तन में।

सितारे ने सुनकर सुनाई शबनम को

.फलक की बात कह दी .जमीं के महरम को

और ओस की बूंद आकाश का जो रहस्य था, वह जमीन को बता दिया। यूं बात फैलती गयी, फैलती गयी।

भर आए फूल के आंसू पयामे शबनम से

संदेश जो सुना शबनम का--कह तो रही थी जमीन से, लेकिन फूल ने सुन लिया, उसकी आंखों में आंसू भर आए।

नन्हा-सा दिल खूं हो गया कली का .गम से

रोता हुआ चमन से मौसमे बहार गया

और जब वसंत ने सुना, मधुमास ने सुना, तो आया तो था हंसते हुए...

रोता हुआ चमन से मौसमे बहार गया

शबाब सैर को निकला था, सोगवार गया

... आए तो थे मस्ती को, यौवन का आनंद मनाने, लेकिन गये उदास। यूं सभी को जाना पड़ता है।

दीपक शर्मा, सपनों में जीओगे, क्षणभंगुर में जीओगे, तो फिर आंसू ही आंसू हाथ लगेंगे। फिर मोती हाथ नहीं लग सकते। मोती चाहिए तो जीवन में एक रूपांतरण करना होगा। उसकी पूरी शैली बदलनी होगी।

मुझसे अगर पूछो तो संसार की मैं परिभाषा करता हूंः क्षणभंगुर मैं जीनेवाला मन अर्थात संसार। और शाश्वत में जीनेवाला मन अर्थात संन्यास।

तुम कहते हो--

"ख्वाबों की गमकती कलियां थीं दिलकश रंगीन नजारे थे

कल तक इन सूनी आंखों में शबनम थी चांद-सितारे थे

पर अब हमको मालूम नहीं हम किस दुनिया में रहते हैं।"

अभी भी हो। अभी भी देर नहीं हो गयी। सुबह का भूला भी सांझ घर लौट आए तो भूला नहीं कहाता है। और भूलकर ही तो कोई आता है! भूलकर ही तो कोई लौटता है! भटककर ही तो कोई सीखता है! अब भी सीख लो, देर नहीं हो गई है। अब मन से हटो, ध्यान में जगो! अब संसार से रस को खींच लो वापस। बहुत डाला,

व्यर्थ गया; अब इस रस को अपने पर बरसाओ। यही ऊर्जा जो बाहर की भागदौड़ में लगी है, इसे भीतर की तरफ मोड़ो। थोड़े अंतर्मुखी बनो!

तीन सीढियां हैंः बहिर्मुखता, अंतर्मुखता और अतिक्रमण। जो बहिर्मुखी है, उसे पहले अंतर्मुखी होना होता है। संसार से संन्यास; मन से ध्यान। और जब ध्यान आ जाए, संन्यास आ जाए, तो उसके भी पार जाना है। वहां भी रुक नहीं जाना है, वह इलाज था। बीमारी चली गयी, तब तक औषधि का उपयोग है; जिस दिन बीमारी न बची, उस दिन औषधि को ढोने का कोई प्रयोजन नहीं। फिर बोतलें लटकाए हुए मत घूमते फिरना! जब तक मन है तब तक ध्यान का उपयोग है। जब मन गया, तो ध्यान का उपयोग गया।

जिस दिन तुम मन से मुक्त हुए, पहली क्रांति; और जिस दिन तुम ध्यान से भी मुक्त हो गये, उस दिन दूसरी क्रांति। बस, दो ही क्रांतिया हैं। उसके बाद मंदिर के द्वार खुले हैं।

क्या तुम जानते हो कि दक्षिण अफ्रीका का राष्ट्रपति कौन है? -- नसरुद्दिन ने अपने दोस्त

ढब्बूजी से पूछा।

जवाब मिला--नहीं।

यह सुनकर मुल्ला ने कहा--तुम वाकई में बिल्कुल ढब्बू ही हो। जोरू के गुलाम जो ठहरे। दिन भर घर में घुसे रहते हो, दुनिया की कुछ खोज-खबर नही। चूडियां क्यों नहीं पहन लेते, नामर्द! क्या तुम्हें पता है कि जिमी कार्टर कहां का प्रेसीडेंड है?"

ढब्बूजी कुछ समझे नहीं, हड़बड़ा कर बोले--प्रेसीडेंड को कहां काट खाया?

नसरद्दिन ने अपना सिर ठोंक लिया। इसका मतलब यह कि तुमने जिमी कार्टर का नाम भी कभी अभी सुना नहीं। हद्द हो गयी। अच्छा यही बता दो कि अपने शहर के रोटरी क्लब का अध्यक्ष कौन है?"

ढब्बूजी बेचारे चुप रह गये।

मुल्ला ने डांटते हुए कहा--शर्म आनी चाहिए। यार, जरा सुबह-शाम यहां वहां घूमते फिरते क्यों नहीं? घर में रहते हो दिन भर! क्या जिंदगी ऐसे ही गंवा देनी है? कुछ देखो, कुछ सुनो, कुछ परखो, कुछ पहचानो! अरे, संसार में आए हो, तो कुछ कर जाओ!

ढब्बूजी ने बात बदलते हुए पूछा--क्या तुम सरदार विचित्तरसिंह के संबंध में कुछ जानते हो?

नसरुद्दीन बोला--नहीं तो। क्यों, क्या कोई खास बात है?

ढब्बूजी ने गंभीरता से जवाब दिया--बेटाराम, तुम तो दिन भर यहां वहां घूमते हो और यह लफंगा दिन भर तुम्हारे घर में घुसा रहता है।

मुल्ला ने तैश में आकर पूछा--ऐसी बात है! उसकी हड्डियां चकनाचूर कर दूंगा। जरा, यह तो बताओ कि इस हरामजादे की शक्ल कैसी है?

ढब्बूजी बोले--शक्ल? अरे, शक्ल और कैसी होगी, बिल्कुल तुम्हारे बेटे फजलू से मिलती है।

अब एक बहिर्मुखी व्यक्ति है जो बाहर-बाहर जिसका भटकाव है, फैलाव है। एक अंतर्मुखी व्यक्तित्व है, जो भीतर सिकुड़ जाता है।

कार्ल गुस्ताव जुंग ने दो ही तरह के व्यक्ती माने हैः बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। एक तीसरे तरह का व्यक्ति है जो दोनों नहीं है। जो दोनों के पार है। जो आंख खोलता है तो बाहर देखता है, आंख बंद करता है तो भीतर देखता है। लेकिन ऐसे किसीसे बंधा नहीं है--न बाहर से, न भीतर से।

बहिर्मुखता के कांटे को निकालना हो तो अंतर्मुखता के कांटे से निकालो। और जब दोनों कांटे हाथ में आ जाएं तो दोनों को फेंक देना। नहीं तो खतरा है, कुछ ऐसे नासमझ हैं कि एक कांटे को दूसरे कांटे से निकाल लेंगे तो फिर दूसरे कांटे से उनका इतना मोह हो जाएगा कि यह कितना गजब का कांटा है, इसने पहले कांटे से हमें मुक्ति दिला दी, तो अब इस कांटे को पिछले घाव में रख लें।

बात वही की वही रही। फिर बंध गये।

कुछ लोग संसार से छूटकर संन्यास से बंध जाते हैं। और बंधना नहीं है, मुक्त होना है--संसार से भी, संन्यास से भी। संन्यास तो केवल सेतु है; कांटा है जिससे संसार का कांटा निकाल दो, फिर तुम दोनों से मुक्त होओ, फिर इससे मत बंध जाना।

बुद्ध कहते थे, कुछ मूर्खों ने एक बार नदी नाव में पार की। और फिर नाव को सिर पर लिये बाजार में पहुंच गये। लोगों ने पूछा, यह क्या माजरा है? तुम यह नाव सिर पर क्यों लिये हो? उन्होंने कहा कि हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे; अगर यह नाव हमें इस पार न लाती नदी के तो रात हो गयी थी, उस पार हमें जंगली जानवर खा जाते। यह इसी नाव की कृपा से हम बचे हैं! यह जीवन अब इसी नाव की सेवा में लगा देंगे।

तो बुद्ध ने कहा, बचे न बचे बराबर। बुद्धू के बुद्धू रहे! अब जिंदगी इस नाव को ढोते रहोगे!

ध्यान रहे, साधनों को पकड़ मत लेना! उनकी उपयोगिता है, मगर वे साध्य नहीं हैं। और यह भ्रांति हो जाती है बहुत लोगों से। भोग छोड़ा, योग पकड़ा। फिर ऐसा कसके पकड़ते हैं जितना कसके भोग को पकड़ा था। मगर पकड़ नहीं जाती। धन छोड़ देते हैं तो निर्धनता पकड़ लेते हैं।

मगर पकड़ वही पुरानी की पुरानी। संसार से बंधे थे, फिर संन्यास से बंध गये। मगर बंधने में कुछ ऐसी आदत हो गयी है कि कुछ न कुछ बंधन चाहिए ही चाहिए। बिना बंधे नहीं रह सकते। फांसी कुछ न कुछ होनी ही चाहिए।

दीपक शर्मा, तुम पूछते हो, "कृपा कर पता बताएं।"

पता तो चलेगा अतिक्रमण से। मेरे बताने से नहीं। हां, राह बता देता हूं, राह सुझा देता हूं, चलना तो तुम्हें पड़ेगा। अभी बहिर्मुखी रहे हो। बहिर्मुखता उस जगह ले आयी जहां हाथों में आंसू ही आंसू हैं और भीतर उदासी ही उदासी है। अब अंतर्मुखता सीखो; ध्यान सीखो, संन्यास सीखो। अब यह नयी कला सीखो। मगर स्मरण तुम्हें दिलाना चाहता हूं पुनः पुनः, उससे भी बंध मत जाना। जब मन से छुटकारा हो जाए तो ध्यान को भी धन्यवाद देना, अलविदा कहना। जब ध्यान की भी जरूरत न रह जाए, तभी जानना कि आत्मनिष्ठ हुए, समाधि में प्रवेश हुआ।

समाधि में ध्यान की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। समाधिस्थ व्यक्ति ध्यान नहीं करता। करने का कोई सवाल नही, बात खतम हो गयी। न मन रहा, न मन को मिटाने का उपाय करने का प्रयोजन रहा। जब समाधि है, तब पता चलता है उसका जो शाश्वत है। जो सदा है। जस का तस। ज्यूं का त्यूं ठहराया। और वहीं पहुंचकर जानोगे कौन हो, क्या हो। और इतना ही नहीं कि अपने को जान लोगे, अपने को जाना कि सबको जाना। क्योंकि वह अंतर्तम तो सबका एक है। वहां कोई द्वैत नहीं, वहां तो अद्वैत है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,

क्या जीवन भर की आदतों को सरलता से छोड़ा जा सकता है?

हरि कृष्ण, आदत आदत ही है, स्वभाव नहीं। स्वभाव को नहीं छोड़ा जा सकता। आदत पकड़ी जाती है, छोड़ी जा सकती है। और आदत तुम्हें नहीं पकड़ती, तुम्हीं आदत को पकड़ते हो। इसलिए जब चाहो तब छोड़ सकते हो! और ध्यान रहे, आदत सरलता से ही छोड़ी जा सकती है। अगर आदत को कठीनाई से छोड़ा, तो छूटेगी नहीं; पीछे के दरवाजे से वापस आ जाएगी। सिगरेट पीना छोड़ दोगे, हुक्का गुड़गुड़ाओगे। हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ोगे, तंबाकू फांकने लगोगे। तंबाकू छोड़ दोगे तो कुछ और उपद्रव करोगे। उपद्रव से बचना बहुत मुश्किल है।

इसलिए मुश्किल है कि तुम आदत की जड़ में नहीं जाते। आदत को छोड़ने में ज्यादा उत्सुकता लेते हो, समझने में कम। समझ लो तो आदत को छोड़ना सरल है। मगर समझने की फुर्सत किसे है? समझना कौन चाहता है? छोड़ने की फिकर है। और यहां लोग हैं चारों तरफ समझाने वाले, बताने वाले--यह छोड़ो, यह बुरा है, वह बुरा है। तुम जो भी करो, उसको छुड़ाने वाले लोग मिल जाएंगे। तुम्हारा जीना हराम कर देंगे, अगर तुम सारे लोगों की बातें सुनो तो जीना बिल्कुल हराम कर देंगे।

मैंने सुना है, एक बाप और बेटा अपने गधे को बेचने बाजार की तरफ गये। रात थी, पूरे चांद की रात थी। दोनों पैदल चले जा रहे थे। कुछ लोग रास्ते पर मिले, उन्होंने कहा, अरे देखो! ये गधे देखो। दो गधे एक गधे को लिए जा रहे हैं; तीनों गधे हैं। बूढ़े ने पूछा, तुम्हारा मतलब? उन्होंने कहा, जब गधा साथ है, तो पैदल क्यों चल रहे हो? इतनी भी अकल नहीं है! बात तो ठीक ही थी, ऐसा लगा दोनों को, सो दोनों गधे पर चढ़ गये।

थोड़ी देर बाद फिर कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, ये गधे देखो! जान ले लेंगे बिचारे की! दो-दो चढ़े बैठे हैं, एक गधे पर! अरे, उतरो, नालायको! शर्म भी नहीं खाते? उस गधे की हालत देख रहे हो? गिरा-गिरा हुआ जा रहा है! मारना है? सो घबड़ाकर दोनों उतर गये। कि भई, ठीक कहते हैं, ये भी ठीक कहते हैं!

थोड़ी देर बाद फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने पूछा कि जब गधा साथ है, तो यह बूढ़े आदमी को तो कम से कम बिठाल दो--जवान बेटे को कहा कि यह बूढ़े को तो न घसीटो! तू तो जवान है, चल सकता है, मगर बूढ़े आदमी की तो गधे पर बिठाल दे। यह बात भी जंची।

थोड़ी दूर आगे फिर कुछ लोग मिले। लोगों की कोई कमी है! तुम न भी मिलना चाहो तो क्या, लोग तो मिलेंगे ही! लोग ही लोग तो भरे हैं चारों तरफ! उन्होंने कहा, यह भी मजा देखो! बाप तो चढ़ा बैठा है और बेचारे बेटे को पैदल चला रहा है! अरे, शर्म भी आनी चाहिए! बुजुर्ग होकर इतनी अकल तो होनी चाहिए! बाप घबड़ाकर नीचे उतर गया, बेटे को चढ़ा दिया।

फिर कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, यह देखो मजा! आ गया कलियुग! बेटा चढ़ा बैठा है, बूढ़ा बाप पैदल चल रहा है! अरे हरामजादे, बूढ़े को पैदल घसीट रहा है और खुद चढ़ा बैठा है गधे पर! शर्म नहीं आती! चुल्लू भर पानी में डूब मर।

घबड़ाकर बेटा उतर गया।

उन्होंने सोचा, अब करना क्या है? मतलब सब तो किया जा सकता था, कर चुके। अब तो एक ही उपाय बचा, उन दोनों ने सोचा कि अब हम दोनों गधे को ढोएं। और तो कुछ बचा नहीं करने को। और तो सब गणित हो चुके।

सो उन्होंने एक डंडे में गधे को बांधा, उलटा उलकाया--और गधा तड़फड़ाए, क्योंकि गधा जिंदा; कोई मरा गधा तो है नहीं कि तुम उसको ऐसा उलटा लटका कर... और गधा फड़फड़ाए और चिल्लाए! मगर वे भी हिम्मतवर लोग थे, उन्होंने कहा कि अब कोई बुद्धू थोड़े ही बनना है। इतने लोग मिले, जितने मिले सभी ने कुछ ना कुछ समझाया, ठीक ही बताया--अरे, सब हितेच्छु ही थे! और गधा फड़फड़ाए और रेंके! सो भीड़ इकट्ठी

हो गयी, भीड़ चलने लगी हंसती हुई कि यह भी एक खूब मजा है! दुनिया में बहुत तरह के लोग देखे मगर... आदमियों को गधों पर सवार देखा, गधों को आदमी पर सवार देखा नहीं! यह पहला ही चमत्कार हो रहा है!

मगर अब लड़के और बाप ने भी कहा कि अब तक ऐसे ही सुनते रहेंगे! अब तो कुछ बचा ही नहीं करने को। अब यही एक आखिरी काम था, सो करके दिखा दें।

एक पुल पर से गुजर रहे थे--और भीड़ इतनी इकट्ठी हो गयी और लड़के शोरगुल मचाने लगे और हु-हल्ला इतना मचा और गधा ऐसा तड़फा और फड़का कि वह नदी में गिर गया। वह मर ही गया बेचारा!

गये थे बेचने, खाली हाथ घर लौट आए!

तुम अगर लोगों की सुनोगे तो हर तरह की सलाह देने वाले लोग मिल जाएंगे। अगर आलू खाते हो, कोई मिल जाएगा--आलू मत खाना! क्यों, भाई? आलू खाना पाप है, आलू खाए कि नरक गये!

जैन आलू नहीं खाते। या जो भ्रष्ट हो गये हैं, वे खाते हों तो बात अलग है। उनको धर्म का कुछ पता नहीं। जो चीज जमीन के नीचे पैदा होती है, जिसको सूरज की रोशनी नहीं मिलती, उसको खाने से तामस बढ़ेगा। बात तो बड़ी गजब की! अंधेरे में पैदा होगी, अंधेरा भरा होगा भीतर उसके। खाओ, तामसी हो जाओगे! अब मारे गये, आलू चिप्स भी नहीं खा सकते! खाओ आलू चिप्स! सड़ोगे नरक में! फिर एक-एक चिप्स का बदला चुकाना पड़ेगा! ऐसा ही छील-छील कर चिपें निकाली जाएंगी और वहां कड़ाहों में चढ़ाए जाओगे, कि और खाओ बेटा आलू चिप्स! अरे, जरा अपनी जबान पर कुछ काबू करो! जिह्वा पर वश करो! जैन मुनि समझाते हैंः जिह्वा पर वश करो! क्या आलू में उलझ हो!

और अभी अखबारों में खबरें आ रही हैं कि जो आलू खाता है, उसको पेट का केंसर नहीं होता। अब बड़ी मुश्किल हो गयी। आलू न खाया, पेट का केंसर हो जाए। मरोगे पेट के केंसर से। नरक वगैरह तो होगा जब होगा, मगर पेट का केंसर हो जाएगा अगर आलू नहीं खाया। अब जरा सोचना पड़ेगा, करना क्या? नरक में मरना, कि केंसर में सड़ना? और नरक है कि नहीं, पता नहीं? और होगा भी तो इतनी भीड़ होगी वहां कि तुमको जगह कहां मिलेगी? क्यू में खड़े रहोगे जन्मों तक तो। और भीतर भी प्रवेश पा लिया तो भी कड़ाहे कितने होंगे, वे भी कभी के कम पड़ चुके होंगे। कितने अनंत लोग पैदा हो चुके और आलू खा चुके और नरक जा चुके! तुम्हारी क्या गणना होगी!

उमर खैय्याम ने कहा है कि इतने-इतने बड़े पापी हो गये कि मुझ गरीब को वहां पूछेगा कौन? अरे, यही कोई छोटे-मोटे पाप-गुनाह किये, हम गरीबों की कहां कदर होगी! हमें कौन पूछेगा? वहां नादिरशाह, तैमूरलंग, चंगेज खां, एक से एक पहुंचे हुए पुरुष बैठे हैं, अडोल्फ हिटलर, जोसेफ स्टेलिन, वे लोग आगे खड़े होंगे--झंडा ऊंचा रहे हमारा! तुम्हें कौन पूछेगा? तुम घुमाते रहना अपना लंगोटी, मगर कोई पूछेगा नहीं! तुम खूब चिल्लाना जिंदाबाद इत्यादि, मगर कोई नहीं पूछेगा! तुमको डांटकर लोग कह देंगे, तुम चुप रहो। बाहर बैठो! भीतर न आओ! यहां बड़े-बड़ों की तो पहुंच नहीं है, तुम कहां घुसे आ रहे हो! तुम कहोगे, भई, मैंने आलू खाए थे! तुम बाहर रहो! कुल जमा आलू खाए और बड़े पहुंचे हुए हो गये! यहां ये दादा इदी अमीन, आदमी खा गये हैं, वे बैठे हैं!

इदी अमीन कहते हैं कि आदमी के मांस से ज्यादा स्वादिष्ट कोई भोजन ही नहीं है। और जब इदी अमीन भागे युगांडा से तो उनके रेफ्रिजरेटर में छोटे बच्चों का मांस मिला। कई बच्चों का मांस, फ्री.ज किया हुआ रखा था। अब कहते हैं तो अनुभवी हैं वे, अब अनुभवियों से कौन झंझट मोल ले, कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे,

क्योंकि मैंने तो कभी चखा नहीं। इसलिए अब कुछ कह भी नहीं सकते। वे कहते हैं कि इससे स्वादिष्ट कोई भोजन ही नहीं है।

युगांडा में बच्चे नदारद हो जाते थे, जब तक इदी अमीन हुकूमत में रहे। और लोग सोचते थे कि कौन ले जाता है? शैतान, चोर, बदमाश? थे राष्ट्रपति।

राष्ट्रपतियों की कुछ न पूछो।

क्या-क्या आदमी पड़े हैं दुनिया में! अफ्रीका में अभी भी ऐसा जातियां हैं जो आदमी को खाती हैं। और मानती हैं कि आदमी के मांस से स्वादिष्ट कोई मांस नहीं होता। सच तो यह है कि दुनिया के अनेक बड़े हाटल हैं, जहां आदमी का मांस चलता है। बच्चे चारी जाते हैं। छोटे बच्चों का मांस ज्यादा स्वादिष्ट होता है। ये जो बच्चे चारी चले जाते हैं, ये कहां खो जाते हैं? ये फाइव स्टार हाटलों में खो जाते हैं। और तुम्हें शायद पता भी न हो कि तुम मांसाहार कर रहे हो, वह किसका कर रहे हो? अब ऐसे पहुंचे हुए पुरुषों के सामने तुम अपना बटाटा बड़ा, कि हम बटाटा बड़ा खाते रहे! तो खाते रहे खाते रहे! जाओ और खाओ दस-पच्चीस जन्म, फिर आना!

मगर लोग हैं कि किसी भी चीज के पीछे पड़े हैं। कोई तंबाकू चबा रहा है, वह सोचता है कि मारे गये, पाप कर रहे हैं। क्या खाक पाप कर रहे हो! तंबाकू न चबाओगे, बकवास करोगे। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, तंबाकू चबाना, पान चबाना, सुपारी चबाना, अमरीका में चिविंग गम--गाद को ही चबा रहे हैं। इसके पीछे कुछ राज है। यह इतना चबान जो चलती है दुनिया में--चर्वण--इसके पीछे कुछ कारण है। और उसका कारण यह है कि अगर नहीं चबाओगे तो फिर बातचीत करनी पड़ेगी। मुंह चलेगा। मुंह चलना ही चाहिए। इससे तो बेहतर है, भैया, तंबाकू ही चबाओ, नहीं तो किसीकी खोपड़ी खाओगे।

तो लोग अपना बैठे हैं, तंबाकू बना रहे हैं, कुछ समय उसमें निकला; कुछ चबाने में निकला, कुछ पिचकारी चलाने में निकला।

मैं भोपाल में एक वकील के घर मेहमान था, दीवाल पर तख्ती लगी देखी कि फर्श पर थूकना मना है। मैंने कहा, मामला क्या है, कोई फर्श पर थूकेगा ही क्यों? अरे, उन्होंने कहा, आप भी क्या बातें कर रहे हैं? यह भोपाल है! यहां तो लोग कहीं भी पिचकारी चला देते हैं। वे देखते ही नहीं कि फर्श है, कि फर्श बिछा है।

मैंने कहा कि तुमने कहानी सुनी है एक प्रसिद्ध दार्शनिक की। कि वह एक घर में गयां जहां लिखा हुआ था--फर्श पर थूकना मना है। सो उसने निशाना लगाकर ऊपर छप्पर पर थूक दिया। अब क्या करो, जब फर्श पर थूकना मना है, तो छप्पर पर थूका। सो छप्पर पर भी गया, दीवारों पर भी गया, फर्श पर भी आया। उसने कहा, मेरा कसूर नहीं है इसमें। अब अगर छप्पर से फर्श पर आए, तो खुदा मालिक। अरे, जब देता है तो छप्पर फोड़कर देता है, उसमें कोई क्या कर सकता है?

आदतें क्या हैं तुम्हारी, हरि कृष्ण?

तुम पूछते हो कि "क्या जीवन भर की आदतों को सरलता से छोड़ा जा सकता है?"

पहले तो पक्का होना चाहिए कि आदत क्या है तुम्हारी? सौ में निन्यानबे आदतें तो बिल्कुल ही निर्दोष हैं। जिनको नाहक साधुओं ने, महात्माओं ने शोरगुल मचा रखा है। कोई चाय पी रहा है, वह बेचारा समझ रहा है कि बड़ा पाप कर रहे हैं। क्या खाक पाप कर रहे हो! अपनी चाय की चुस्कियां ले रहे हो, किसीका कुछ बिगाड़ रहो हो? और वह बिल्कुल शाकाहारी है चाय। इसमें कुछ दर्जा नहीं, जरा भी। थोड़ा-सा निकोटिन है इसमें, उसमें भी कोई पाप नहीं। थोड़े शरीर में गर्मी आ जाती है, थोड़ा जोश आ जाता है, सो कुछ बुराई नहीं है, थोड़ा जोश रहे तो कुछ अच्छा ही है; थोड़ा काम-धाम में तबियत लगती है। मगर नहीं, महात्मा गांधी के

आश्रम में चाय पाप थी--सिर्फ एक व्यक्ति को छोड़कर, राजाजी को भर चाय पीने का हक था। क्योंकि वह समधी थे। अब समधी पर तो नियम लागू हो नहीं सकते। समधी के साथ समधियाना निभाना पड़ना है। सो उनके लिए छुट्टी थी। बाकी सबके लिए चाय पाप थी।

एक दफा एक युवक पकड़ लिया गया चाय पीते--छिपकर बना रहा होगा चाय--आश्रम में वह भद्द उड़ी। गांधीजी ने तीन दिन का उपवास कर दिया। आत्मशुद्धि के लिए। वह चाय पीए, ये आत्मशुद्धि करें! मगर यह उनकी तरकीब थी लोगों को सताने की, यह हिंसा का ढंग था उनका। इसको मैं अहिंसा नहीं मानता, हिंसा मानता हूं। यह भी खूब हुआ सताने का ढंग कि उस आदमी को अब तुमने बुरी तरह और बेइज्जत किया। अब सारा आश्रम उसकी लानत-मलामत कर रहा है कि अरे दुष्ट, अरे पापी, महापापी, चाय के पीछे तूने बेचारे महात्माजी को तीन दिन उपवास करवा दिया। अब वह ग्लानि में मरा जा रहा है। वह रो रहा है, महात्मा जी के पैर पकड़ रहा है कि आप कृपा करें, अब कभी नहीं पीऊंगा--कभी! अरे, इस जन्म में क्या किसी जन्म में नही पीऊंगा चाय। आप मगर उपवास तोड दें। मगर वे! कि नहीं, मैं तेरे लिए थोड़े ही कर रहा हूं, मैं तो अपनी आत्मशुद्धि के लिए कर रहा हूं। तो आप अपनी आत्मशुद्धि के लिए क्यों कर रहे हैं, चाय तो मैंने पी? तो इसलिए कर रहा हूं कि अगर मैं सच्चा गुरु होता, तो कैसे मेरा कोई शिष्य चाय पी सकता था? गजब! तो मैं तो अपनी आत्मशुद्धि कर रहा हूं। तेरा इससे कुछ मामला नहीं।

यह सताने की तो खूब तरकीब रही। अहिंसा के नाम पर बड़ी गहन हिंसा हो गयी। दूसरा मेरे अनुसार चले, इसकी इतनी प्रबल आकांक्षा ही हिंसा है।

और इसलिए मैं कुछ भेद नहीं देखता, सरहदी गांधी का कल फिर मैंने वक्तव्य देखा। किसीने पूछा उनसे कि आप क्या कहते हैं, भारत में इतना व्यभिचार हो रहा है, बलात्कार हो रहा है! तो उन्होंने कहा, एक-एक को पकड़ कर गोली मार देनी चाहिए। गोली से उड़ा दो! और कोई भारतीय गांधीवादी नहीं कहेगा कि यह क्या बात कर रहे हो?

मगर मैं इसमें कुछ विरोध नहीं देखता, महात्मा गांधी में और सीमांत गांधी में कुछ विरोध नहीं है। यह आदमी सीधा-साधा है, बस इतना मामला है! इतना तिरछा नहीं है, यह हिंदू नहीं है कि जरा इरछा-तिरछा और तात्विक विश्लेषण में जाए और घूम-फिरके काम करे। यह पठान है--पख्तून! कि उठाओ लट्ठ, करो फैसला; साफ-सीधा सामना करो; गोली मार दो! वह तो ऊंची बात कर रहा है गोली मार दो, मगर गोली कौन मारेगा? वह जो गोली मारने वाला है, वही तो बलात्कार कर रहा है। उसको जो गोली मारेगा, वह बलात्कार करेगा। यूं बलात्कार नहीं मिटाया जा सकता गोली मारने से। जिसके हाथ में बंदूक होगी, वह बलात्कार करेगा। जिसके हाथ में बंदूक रही, उसने हमेशा बलात्कार किया। यह कोई नयी बात है? कोई आज की बात है?

राजाओं की हजारों रानियां हुआ करती थीं। यह बलात्कार नहीं था तो क्या था? और अतीत में ही नहीं, अभी, आज से पचास साल पहले निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां थीं। सिर्फ पचास साल पहले, इसी सदी में, बीसवीं सदी में पांच सौ रानियां! लोग मुझसे पूछा करते थे कि यह हम मान नहीं सकते कि कृष्ण की सोलह हजार रानियां रही हों। मैं उनसे कहता, क्या अड़चन है? अगर बीसवीं सदी में पांच सौ रानियां हो सकती हैं, तो बत्तीस का ही गुणा करना है, कोई बहुत बड़ा मामला नहीं, पांच हजार साल पहले सोलह हजार हो सकती थीं। जिसके हाथ में लाठी थी उसकी भैंस। अपनी भैंस नहीं, बाकी सबकी भैंसें भी ले आए। अपनी भैंस तो अपनी है ही, उसका कोई सवाल नहीं है, मगर औरों की भैंसें भी छीन लाए।

गोली कौन मारेगा? गोली मारने से कुछ भी होने वाला नहीं है। और यही तुम्हें सिखाया गया है, या तो दूसरे को गोली मारो सुधारने के लिए और या अपने को गोली मारो सुधारने के लिए। समझ की कोई बात नहीं।

आदत? पहले तो यह समझने की फिकर करो--कौन सी आदत? छोटी-मोटी आदतों पर समय ही मत गंवाना। अगर कोई आदमी गोंद चबाता है, चबाने दो! इसमें क्या पाप है! कोई आदमी सिगरेट पीता है, पीने दो। धुआं ही उड़ाता है। एक तरह का प्राणायाम है। थोड़ा नालायक है आदमी और कुछ नहीं, कोई पापी नहीं है; शुद्ध हवा न लेकर धुआं पहले पैदा करता है फिर हवा लेता है। और सच तो यह है, बंबई, न्यूयार्क और लंदन जैसे नगरों में सिगरेट पीना बिल्कुल बेकार है--हवा में इतना धुआं वैसे ही अब। कारें और रेलवे के इंजन और हवाई जहाज और कारखानें इतना धुआं छोड़ रहे हैं कि न्यूयार्क में वैज्ञानिक चकित हैं कि इतना धुआं आदमी पचा कैसे ले रहा है? तो थोड़ा-बहुत तुमने अपने ही भीतर व्यक्तिगत धुआं भी पैदा करके भीतर ले गये, बाहर लाए--कोई हर्जा नहीं!

छोटी-मोटी बातों में पड़ो मत। क्योंकि जिंदगी को छोटी-छोटी बातों में उलझाने से समय ही व्यर्थ होता है। हां, समझने की जरूर कोशिश करो कि क्या कारण होगा कि तुम इस तरह की आदत के गुलाम हो? और अगर समझ आ जाए उसके मूल कारण की, तो एक बड़े रहस्य की बात हाथ लग जाती हैः जैसे किसी वृक्ष को उखाड़ लो उसकी जड़ें पकड़ कर, देख लो ठीक से, वृक्ष मर गया। ऐसे ही किसी आदत की जड़ें अगर तुम देख लो, तो उसका निदान पूरा होते-होते ही उसका उपचार भी हो जाता है। और तब सरलता से ही छूट जाती हैं। लेकिन लोग उलटे-सीधे काम करके आदतें छोड़ना चाहते हैं, तो नयी आदतें फंस जाएंगी। एक से निकले--कुआं से निकले खाई में गिरे। कठिन तो है, तब कठिन है, बहुत कठिन है।

एक अध्यापक की हुई शादी
सुहाग रात को
दुल्हन का घूंघट उठाते ही
उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी--
"तुम्हारा नाम? चम्पा है या चमेली
कौन-कौन थीं तुम्हारी सहेली?
सहेलियों की और अपनी
सही-सही उम्र बताओ
तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं?
कितने छोटे हैं? कितने बड़े हैं?
कौन-कौन घर में बेकार पड़े हैं?
कौन-कौन अपने-अपने पांवों पर खड़े हैं?
जन्म से विवाह तक
देखी हुई फिल्मों के नाम गिनाओ
कौन-सी फिल्म किसके साथ देखी? जोड़े बनाओ
अपने मकान का भूगोल हमें समझाओ
संक्षेप में परिवार का इतिहास भी बताओ... "
सुनकर ये ढेर सारे सवाल

दुल्हन का तो हो गया बुरा हाल
तभी उसका बढ़ाते हुए हौसला
अध्यापक बोला--
"घबराओ मत, धीरे-धीरे सोच-समझकर
किन्ही पांच प्रश्नों के दो उत्तर"

पुरानी आदत! वह बिचारे और कुछ जाने ही नहीं तो करें भी क्या? अध्यापक थे सो अध्यापक थे।

मैं अपने गणित के एक अध्यापक को जानता हूं। वे ज्यामिति पढ़ाते थे। उनको छः महीने की सजा हो गयी। कुछ दंगा-फसाद हो गया, मार-पीट हो गयी--जरा तेज तर्रार आदमी थे, राजपूत थे, तो लट्ठ मार दिया--छः महीने की सजा हो गयी। मुझसे उनका बड़ा लगाव था। आदमी सीधे-साफ थे। सौ मैं उन्हें लेने गया, जब वे निकले जेल से सो मैं दरवाजे पर उनका स्वागत करने गया। मैंने उनसे पूछा कि सब ठीक-ठाक तो रहा, और कोई गड़बड़ तो नहीं हुई। उन्होंने कहा, और सब तो ठीक था, लेकिन जिस कोठरी में मुझे रखा उसमें बड़ी बेचैनी रही। मैंने कहा, क्या तकलीफ थी? बहुत छोटी थी? अंधेरा था? उन्होंने कहा, अंधेरा और छोटी-मोटी से मुझे कुछ मतलब नहीं, लेकिन उसके कोने नब्बे के अंश के नहीं थे। इरछे-तिरछे थे। उसने मेरी जान ले ली! छः महीने बस एक ही बात मेरे दिल में खटाखट, मेरी खोपड़ी में खटाखट लगे, कि किस मूरख ने इस कोठरी को बनाया है! अरे, नब्बे का कोण तो नब्बे का होना चाहिए।

वे ज्यामिति के अध्यापक थे, तो उनको वह बात अखरी होगी। मेरी भी समझ में आया कि उनको बहुत कष्ट रहा होगा। उनका बस चलता तो वे ठीक-ठाक कर देते कोठरी को तोड़ कर। मगर वे वहां कुछ भी नहीं सकते थे, हथकड़ियां पड़ी हुई थीं, तो और मुश्किल थी। और छः महीने उसी कोठरी में रहना, और दिन-रात वे ही गलत कोने देखना--इरछे-तिरछे--वह उनके बस के बाहर था। मैं जानता था उनको ही अगर उनकी कक्षा में कोई जरा भी ज्यामिति में गड़बड़ करके ले जाए, तो उसमें वे गलत-सही का निशाना नहीं लगाते थे, वह एकदम पन्ना ही फाड़ देते थे। राजपूत थे! गलत चीज को वहीं मिटाकर साफ कर देते थे!

मैंने कहा, मैं आपकी तकलीफ समझता हूं। उन्होंने कहा, अंधेरे-वंधेरे की मुझे कोई फिकर नहीं। अरे, अंधेरा कितना ही रहता, मैं गुजार लेता! अंधेरा होता तो अच्छा ही था, बिल्कुल दिखायी न पड़ता तो अच्छा था! मगर वे कोने, ऐसे छाती में ठक-ठक! और चौबीस घंटे! आंख खोलो तब! लाख उपाय करो, कहीं भी देखो चारों कोने गड़बड़ थे। इधर देखो तो यह कोना गड़बड़, उधर देखो तो वह कोना गड़बड़। और कब तक दीवाल ही दीवाल देखते रहो! और दीवाल भी देखते रहो तो पता तो है क्यों दीवाल देख रहे हो! वह कोनों से बचने के लिए देख रहे हो!

कठिन तो होगा।

गाड़ी में यात्रा करते हुए एक महाशय बड़ी देर से अपनी छींक को रोक रहे थे। छींक आने को होती तो वे अजीब शकल बनाकर उसे रोकते। अब छींक को रोकना कोई आसान बात नहीं है! कोई महायोगी ही रोक सकता है। एक सहयात्री आखिर पूछ ही बैठा--आप यह क्या कर रहे हैं? आखिर आप छींक को रोक क्यों रहे हैं? आ क्यों नहीं जाने देते? कितना कष्ट उठा रहे हैं? कैसा-कैसा चेहरा बना रहे हैं कि मुझे डर लगता है, कि पता नही अब आगे आप क्या करेंगे? सब तरह के योगासन साध रहे हैं। निकल जाने दो, छींक ही है, क्या खो जाएगा? इसमें कौन-सा व्यभिचार हुआ जा रहा है?

उन महाशन ने कहा, आपको पता नहीं। मेरी बीबी का कहना है कि जब भी छींक आए तो समझ लो कि मैंने याद किया है। और तुरंत आपको मेरे पास आ जाना चाहिए।"

सहयात्री बोला, आपकी बीबी है कहां?

उन महाशय ने कहा, यह मत पूछो। यह याद मत दिलाओ। कब्र में है। मर गयी है, मगर घबड़ाहट छोड़ गयी है। छींक तब से मैंने ली ही नहीं जब से बीबी मरी है। क्योंकि वह कहती थी, जब भी छींक आए तो समझ लेना कि मैंने याद किया है, और जहां भी होओ, तत्क्षण मेरे पास आ जाना। प्राण निकल जाएं मगर मैं छींक नहीं लूंगा। पहले प्राण निकल लेंगे, फिर छींक निकलेंगी।

इस तरह अगर मुसीबत के काम करोगे, तो निश्चित ही बहुत कठिन हो जाएगा।

एक शिकारी ने खूब ऊंचे उड़ते हुए बगुले को गोली से मार गिराया। पास ही खड़े चंदूलाल मारवाड़ी यह देख रहे थे; वह देखकर शिकारी से बोले तुमने यह गोली यूं ही बेकार कर दी।

कैसे? शिकारी का प्रश्न था।

चंदूलाल बोले अरे, इतनी ऊंचाई से गिर कर तो बगुला अपने आप ही मर गया होता। इसमें गोली क्यों खराब की?

मारवाड़ी बुद्धि! वह अपना हिसाब बिठा रही है! कि नाहक एक गोली खराब हो गयी! अरे, इतनी ऊंचाई से तो अपने आप ही मर जाता--गिरता भर! इसमें कौन सा तुमने गजब कर दिया?

मुल्ला नसरुद्दीन एक बार शिकार को गये थे। पत्नी न मानी, क्योंकि पत्नी को भरोसा नहीं था, कि ये शिकार को जा रहे हैं, कि किसी और शिकार को जा रहे हैं? उसने कहा मैं साथ आऊंगी। अरे, मुल्ला ने बहुत कहा कि यह शिकार का मामला है, मेरा ही तो पजामा ढीला हो जाता है, तू वहां क्या करेगी? मगर पत्नी ने कहा कि वही पजामा ढीला होने का तो मुझे डर है! कि कहीं और ढीला न हो जाए! तुमने पजामा की बात उठाकर और संदेह पैदा कर दिया! मैं नजर रखूंगी, पजामा ठीला नहीं होने दूंगी। मैं आती हूं।

अब नहीं मानी बीबी तो ले जाना पड़ा। बीबी को बिठा दिया एक झोंपड़े में और खुद बाहर जाकर शिकार करने को निकले। पीछे-पीछे एक आदमी दौड़ते हुआ आया, उसने कहा कि बड़े मियां, कहां जाते हो? एक चीता झोपड़े में घुस गया है, तुम्हारी बीबी अकेली है, कुछ करो! नसरुद्दीन ने कहा, भैया, अब मैं क्या कर सकता हूं। अब चीता खुद ही अपने हाथ से मुश्किल में पड़ा हैं, अब बेटा अपने को बचाए खुद ही! अरे, हमें कौन बचाने आया? जब बीस साल हम फंसे रहे, कोई माई का लाल नहीं आया, तो अब चीता जाने और चीता का भाग्य जाने! अब जो होगा सो होगा।

वह आदमी तो चौंककर ही खड़ा रह गया। उसकी कुछ समझ ही में न आया कि बात क्या हो रही है!

उसको नसरुद्दीन के अनुभव का पता नहीं कि वह बीबी ऐसी है नसरुद्दीन की कि चीता के छक्के छुड़ा देगी!

आदमी अपने अनुभव से जीता है। तुम अगर पचास साल जी चुके हो, हरि कृष्ण, तो तुम हो क्या? तुम्हारा मन क्या है? पचास साल का संचित अनुभव। तुम्हारी आदतें भी उस अनुभव से निकली हैं। अगर तुम उनको जबर्दस्ती बदलना चाहो, तो मुश्किल होगा। उनकी जड़े पचास साल के अनुभव में फैली हुई हैं। आज ऊपर-ऊपर अंकुर दिखायी पड़ रहे हैं तो बहुत गहरी गई हुई हैं। तुम ऊपर से अंकुर काट दोगे, फिर नये अंकुर निकल आएंगे। जड़ें तो मौजूद रहेंगी। इसलिए आदतों को बदलना कठिन मालूम होता है, क्योंकि तुम केवल पत्ते काटते हो, शाखाएं काटते हो और जड़ों का तुम्हें कुछ पता नहीं है।

मेरा तुमसे निवेदन है कि पहली तो बात छोटी-छोटी आदतों को काटने में पड़ना मत। क्योंकि उनको काट भी लिया तो कुछ बड़ा सार नहीं है। और जीवन में निन्यानबे प्रतिशत तो ऐसी ही छोटी-मोटी आदतें हैं जिनको व्यर्थ ही तुम बढ़ा चढ़ाकर देख रहे हो। और तुम्हारे महात्मागण उन्हीं पर रोज-रोज हमला बोलते रहते हैं। और नाहक तुम्हें परेशान किये हुए हैं। निर्दोष हैं तुम्हारी आदतें। अब अगर तुम्हें भोजन स्वादिष्ट अच्छा लगता है, तो कोई पाप नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हारे महात्मा कहेंगे कि यह बात ठीक नहीं। तुम जिह्वा के गुलाम! नमक छोड़ दो! बिना नमक के भोजन करो! अब बिना नमक के भोजन करोगे, मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि नमक शरीर की जरुरत है। नमक बड़ी अपरिहार्य जरूरत है। वह कोई आदत नहीं है। और जो तुम्हारे महात्मा तुम्हें समझाते हैं कि आदत है, वे गलत समझाते हैं। और जो तुम्हें समझाते हैं कि बिना नमक का भोजन करो, यह महात्याग है, वे मूर्खतापूर्ण बात समझा रहे हैं। तुम्हारे शरीर को नमक की जरूरत है। तुम्हारे शरीर में अस्सी प्रतिशत समुद्र के पानी का ही अंश है और उसमें उतना ही नमक चाहिए जितना समुद्र के पानी में होता है। तो ही तुम स्वस्थ रह सकते हो। अन्यथा नमक के बिना तुम एकदम शिथिल हो जाओगे। नमक के बिना तुम्हारी जीवन ऊर्जा क्षीण हो जाएगी। तुम्हारी तेजस्विता खो जाएगी।

इसीलिए तो कहा जाता है कि उस आदमी की जिंदगी में बड़ा नमक है। या जीसस का प्रसिद्ध वचन है कि जागे हुए ही इस पृथ्वी के नमक हैं। उसका मतलब, इस मुहावरे का मतलब कि उन्हीं के कारण इस जगत में थोड़ी रौनक है, थोड़ा जीवन हैं, थोड़ी ऊर्जा है, थोड़ी चमक है, दमक है, थोड़े दीये जलते हैं, थोड़ी रोशनी है।

लेकिन तुम्हारे महात्मा तुम्हें समझा रहे हैं, बेहूदी बातें--नमक छोड़ दो। कोई कहता है, घी छोड़ दो। कोई कहता है, शक्कर मत खाना। कोई कहता है, मिठाई छोड़ दो। ये सब जरूरतें हैं। हां, जरूरत से ज्यादा तुम लेते होओ, तो नुकसान की बातें हैं। तो जरूरत से ज्यादा पानी भी पीआगे तो नुकसान की बात है। इसमें कोई नमक और घी और शक्कर का सवाल नहीं है।

होशपूर्वक जीओ, छोड़ा-छाड़ी में मत पड़ो। जो जरूरत है। अब तुम्हारे महात्मागण तुम्हें समझाते हैं कि ज्यादा साने से तामस बढ़ जाएगा। तो कितने घंटे सोने की आज्ञा है उनकी तरफ से? उनसे पूछो तो वे कहते हैं, कम करते जाओ। बस, दो घंटे सो लिये तो बहुत है। मगर अगर तुम दो घंटे सोओगे तो दिन भर आलस में रहोगे। और तब महात्मा की बात बिल्कुल ठीक जंचेगी। वह कहेगा कि तुम तामसी हो। नींद कम करो, और कम करो। और असली कारण यह है कि तुम नींद कम कर रहे हो इसलिए तामस बढ़ रहा है। जवान आदमी को छः और आठ घंटे के बीच सोना ही चाहिए। हां, बूढ़े के लिए, अपने आप नींद कम हो जाती है। चार से पांच घंटे हो जाती है। और बूढ़ा हो गया तो तीन ही घंटे रह जाती है।

बच्चे मां के पेट में चौबीस घंटे सोते हैं। क्या तुम सोचते हो तामसी हैं, इसलिए? चौबीस घंटे सोते हैं, इसीलिए बढ़ते हैं। नौ महीने में जो बढ़ाव होता हैं, वह फिर जिंदगी में कभी भी नहीं होगा। बढ़ने के लिए नींद जरूरी है। फिर पैदा होने के बाद तेईस घंटे सोएंगे, बाईस घंटे सोएंगे, बीस घंटे सोएंगे, अट्ठारह घंटे सोएंगे। धीरे-धीरे नींद अपने आप कम होती जाएगी। जितनी जरूरत है, उतनी रह जाएगी।

न कम सोओ, न ज्यादा सोओ, तब तुम्हारे जीवन में संतुलन होगा।

और कोई दूसरा तय नहीं कर सकता कि कितना सोओ। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की जरूरत अलग होगी। जो आदमी मजदूरी कर रहा है, उसको ज्यादा नींद की जरूरत पड़ेगी। और जो आदमी टेबल-कुर्सी पर बैठकर काम कर रहा है, उसको कम नींद की जरूरत पड़ेगी। बुद्धिजीवियों को कम नींद जरूरत पड़ेगी, श्रमजीवियों को ज्यादा नींद की जरूरत पड़ेगी।

फिर प्रत्येक के शरीर पर निर्भर होगा। क्योंकि जितना ज्यादा भोजन तुम्हारा शरीर पचाएगा, उतनी ही ज्यादा नींद की जरूरत पड़ेगी। जितना तुम्हारे लिए कम भोजन शरीर पचा सकता है, उतनी ही कम नींद की जरूरत पड़ेगी। भोजन के अनुसार नींद में फर्क पड़ता जाएगा। श्रम, भोजन, तुम्हारे जीवन का कार्य।

अब तुम्हारे महात्मागण अगर कम सोते हों, तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। काम ही कुछ नहीं करेंगे तो नींद कम अपने आप हो जाएगी। इसमें कुछ महात्मापन नहीं है।

अपने जीवन के निर्णायक तुम खुद होओ, दूसरों की सलाहों पर मत चलना। इसलिए मुझे पता नहीं कि तुम किन आदतों की बातें कर रहे हो, इतना तुमसे कह सकता हूं कि निन्यानबे प्रतिशत आदतें तो तुम्हारी निर्दोष हैं, उनके लिए नाहक परेशानी में मत पड़ना। हां, एक प्रतिशत आदत ऐसी हो सकती है जो कि छोड़ने जैसी हो। जैसे कोई मांसाहार करता हो। यह घातक है। किसीके जीवन का अंत करना, सिर्फ भोजन के लिए, जबकि सुस्वादु भोजन उपलब्ध हैं--स्वादिष्ट फल उपलब्ध हैं, सब्जियां उपलब्ध हैं, मेवे उपलब्ध हैं--तब क्यों किसीका जीवन नष्ट करना? और जीवन जैसा तुम्हें प्यारा हैं, किसी और को भी प्यारा है।

तो ऐसी कोई आदत हो तो जरूर छोड़नी चाहिए। मगर वह भी छोड़नी चाहिए समझ से। जबर्दस्ती नहीं, चेष्टा से नहीं, बोध से। इसलिए मेरा जोर उसको भी छोड़ने पर कम है, समझने पर ज्यादा है।

यह मेरा अनुभव है कि जो व्यक्ति ध्यान में शांति को उपलब्ध होने लगता है, उसका मांसाहार अपने आप छूटने लगता है। यहां तो मेरे संन्यासियों में अधिक मांसाहारी परिवारों से आए हुए लोग हैं, सारी दुनिया से आए हैं, सारी दुनिया मांसाहारी है, लेकिन यहां आकर अचानक धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता और मैं कहता हैं नहीं उनसे, कोई जबर्दस्ती नहीं है कि उनको छोड़ना ही है--लेकिन जैसे-जैसे ध्यान की गहराई उतरनी शुरू होती है, उनको खुद ही यह बात दिखायी पड़नी शुरू हो जाती है--अपने आप! मांसाहार असंभव हो जाता है। समझ क्रांति लाती है। बोध ही एकमात्र सच्ची क्रांति है। बोध के कारण तुम्हारा स्वभाव प्रगट होता है और आदतें अपने-आप टूट जाती हैं।

ऊपर से मत थोपना। आदत आचरण नहीं है। आचरण मत बनाना तुम धर्म को, धर्म को ध्यान से जोड़ना। और फिर उसके कारण तुम्हारे जीवन में जो रूपांतरण हो जाएं, वे सुखद हैं।

तुम्हारी दृष्टि बदलेगी, तो सृष्टि बदल जाती है।

एक आदमी बीमा एजेंट से बोला, मान लीजिए मैं अपनी पत्नी के नाम से बीस हजार रुपये की पालिसी लेता हूं और कल वह मर जाती है, तो उसके बाद मुझे क्या मिलेगा?

बीमा एजेंट ने कहा, कह नहीं सकते साहब, यह जज पर निर्भर करता है, कि वह फांसी दे या उम्र कैद।

अब आज ही पालिसी करवा रहे हैं बीस हजार रुपये की और विचार कर रहे हैं कि कल अगर मर जाए तो क्या मिलेगा? जीवन बीमा करवा रहे हैं और कल ही मरने का हिसाब लगा रहे हैं।

लोगों के भीतर हिंसा पड़ी हुई है। फिर तुम मांसाहार न भी करो तो भी क्या होता है? तुम बिना मांसाहार किये भी लोगों का खून पी जाओगे। आखिर जैन इस देश में है, शाकाहारी हैं, मगर जितना धन शोषण करने में वे कुशल हैं, कोई भी नहीं। पानी छान-छान कर पीते हैं, खून बिना छाने पी जाते हैं। रात भोजन नहीं करते, शुद्ध भोजन करते हैं, लेकिन आदमी की गर्दन उनके हाथ में आ जाए, तो बस खात्मा है। फिर वह बच नहीं सकेगा। एक दफा उनके चक्कर में पड़ गया कोई तो फिर चक्रवृद्धि ब्याज उस पर बैठता ही जाएगा। फिर वह चक्कर खतम होने वाला नहीं, वह आदमी भला खतम हो जाए। उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी तक भुगतेंगी। और

बड़े प्रेम से यह सारा व्यवहार चलेगा। और अहिंसा परमो धर्मः की तख्ती दुकान पर लगी रहेगी और ब्याज का धंधा होगा।

तुम ऊपर से कुछ छोड़ दो, इससे फर्क नहीं पड़ने वाला। महावीर ने कहा, हिंसा छोड़ दो। तो छोड़ दी लोगों ने हिंसा। इतनी छोड़ दी कि जैनों को कोई उपाय ही न रहा। क्षत्रिय हो नहीं सकते, क्योंकि उसमें तलवार उठानी पड़ती है। और शूद्र तो कोई होना ही नहीं चाहता, क्योंकि कौन पाखाना ढोएगा! किसान भी नहीं हो सकते थे वे, क्योंकि उसमें हिंसा होती हैं, वृक्ष काटने पडेंगे--वृक्षों में जीवन है, महावीर ने कहा--पौधे उखाड़ोगे, वृक्ष काटोगे, इतने जीवन की हत्या होगी--नरक जाओगे! तो फिर जैनों के लिए सिवाय व्यवसाय के कुछ भी न बचा। जैन अनिवार्य रूपेण वणिक हो गये, बनिया हो गये। हो ही जाना पड़ा उनको। मगर उनकी सारी हिंसा उनकी बनियागिरी में उतर आयी। इसलिए उनके शोषण का पंजा सबसे ज्यादा मजबूत हो गया। इस देश में उनकी संख्या कम है, लेकिन धन की तादाद उन पर काफी।

इसलिए मैं तुमसे ऊपर से बदलने को नहीं कहता। मैं कहता हूं, किसी आदत को अगर तुम देखो कि उसमें गलती है, पाप है, तो उसकी जड़ में जाना, समझने की कोशिश करना! और ध्यान में उतरो!

पतिदेव ने कहा, प्रिये, देखो न मैं तुम्हारे लिए कितनी बढ़िया चीज लाया हूं!

पत्नी, बस, बस, बढ़िया-घटिया के चक्कर में ही सारी उम्र बहकाते रहोगे या कभी सोने की चीज भी लाओगे? पत्नी ने तुनक कर जवाब दिया।

सोने पर नजर लगी है। क्या बढ़िया-घटिया लगा रखा है? सोना महत्वपूर्ण है।

सोना इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया? ताकत लाता है। बल देता है। लगता है मैं भी कुछ हूं। तलवार का काम कर देता है बिना तलवार के। ताकत का काम कर देता है बिना ताकत के।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसके बेटे, दोनों ने एक नाले पर छलांग लगायी। मुल्ला तो पार कर गया बूढ़ा और बेटा बीच नाले में गिर गया।

बेटे ने कहा कि पापा, हद्द हो गयी! आप बूढ़े हैं, छलांग लगा गये! मैं तो यह सोच कर कि जब आप निकल गये पार तो मैं छलांग लगाकर निकल जाऊंगा, मैं बीच में गिर गया।

नसरुद्दीन हंसने लगा। उसने कहा, बेटा, इसका राज है। उसने अपना खीसा बजाकर बताया--खनाखन, खनाखन!

लड़के ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं।

उसने कहा, अरे, रुपये खीसे में होने चाहिए। नाला क्या, समुद्र आदमी पार कर जाए। मैं जब घर से निकलता हूं तो नगद कलदार खीसे में रखता हूं। इससे गर्मी रहती है। इससे प्राणों में बल रहता है। यह आदमी की असली आत्मा है। और कोई आत्मा वगैरह नहीं। अब तू बिना ही आत्मा के कूद रहा हैं, भड़ाम से गिर गया बीच में, देखा? अगली दफा रुपये खीसे में रखकर कूदना, फिर देखना!

रूपये का एक बल है। दिखायी नहीं पड़ता कहीं भी, लेकिन रुपये की बड़ी हिंसा है। रुपया यूं मार देता है बिना मारे।

तो तुम एक तरफ से बचोगे तो कहीं दूसरी तरफ से तुम्हारे सब रोग प्रगट होने शुरू हो जाएंगे। इसलिए बचने की जल्दी मत करो, समझने की फिकर लो। और समझ आती हैं केवल ध्यान से। और किसी तरह से नहीं आती।

निर्विचार जब तुम होना सीख जाओगे, उस निर्विचार अवस्था में तुम्हारा चित्त का दर्पण ऐसा साफ होता है, धूल रहित कि उसमें सब साफ-साफ दिखायी पड़ने लगता है। फिर उसी दृष्टि के अनुसार जीवन को चलाने में कोई कठिनाई नहीं है।

तुम पूछते हो कि "... क्या जीवन भर की आदतों को सरलता से छोड़ा जा सकता हैं?"

बिल्कुल सरलता से छोड़ा जा सकता है। लेकिन छोड़ने की कोशिश से नहीं। एक परोक्ष प्रक्रिया हैः ध्यान के माध्यम से, बोध के माध्यम से सारी आदतें छूट जाती हैं। और मजा यह है कि जब ध्यान से आदतें छूटती हैं तो यह भी अकड़ नहीं होती भीतर कि देखो मैंने आदतें छोड़ दी हैं। मैंने यह छोड़ दिया, मैंने वह छोड़ दिया, यह अकड़ भी पैदा नहीं होती। यह त्यागी की, तपस्वी की अकड़ भी पैदा नहीं होती, यह अहंकार भी पैदा नहीं होता। जीवन क्रांति से भर जाता है, लेकिन क्रांति का दंभ जरा भी नहीं। कहीं छाया नहीं पड़ती। असली क्रांति वही है। नहीं तो अहंकार सारी क्रांति को मटियामेट कर देता है।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

प्रेम ही धर्म है

18 जुलाई 1980; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः भगवान,

जैन धर्म में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांतवाद (सह-अस्तित्व) आदि सिद्धांतों का विशेष स्थान है। लेकिन आज एक समाचार-पत्र में आपके संबंध में एक जैन मुनि, श्री भद्रगुप्त विजय जी का वक्तव्य पढ़ा तो आश्चर्य हुआ। ये मुनिश्री आपके कच्छ प्रवेश के विरोध में लोगों को सब कुछ बलिदान कर देने के लिए आह्वान कर रहे हैं, संगठित कर रहे हैं। अपरिग्रह मानने वालों को कच्छ प्रदेश पर परिग्रह क्यों? और उनके अनेकांतवाद में आपकी जीवन दृष्टि का विरोध क्यों? क्या मुनिश्री को लोगों को इस तरह भड़काना शोभा देता है?

चैतन्य कीर्ति जिन-धर्म और जैन धर्म में बुनियादी भेद है। वैसे ही जैसे बुद्ध-धर्म में और बौद्ध धर्म में। इस आधारभूत भेद को सबसे पहले समझ लेना जरूरी है।

जिन-धर्म से अर्थ हैः महावीर, आदिनाथ, नेमिनाथ, मल्लिनाथ, उनका धर्म जो जीते हुए थे, जिन्होंने स्वयं को जाना था। उस आत्मबोध से जो गंगाएं बहीं, आत्मबोध के उन हिम शिखरों से सरिताएं उतरीं, वह स्वच्छ बोधः जिन-धर्म।

बुद्ध ने जो जाना, जागकर जो पहचाना, जीआ और कहा, वह बुद्ध-धर्म।

लेकिन जैन धर्म तो पंडितों की ईजाद है। वैसे ही जैसे बौद्ध धर्म पंडितों की ईजाद है। न तो जाना है, न जागे हैं, न जीआ है। कोई अपना स्वाद नहीं, अपना अनुभव नही। शब्दों की खाल निकालने में जरूर होशियार हैं।

और इस संदर्भ में यह भी समझ लेना कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे--चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे, इनमें एक भी ब्राह्मण नहीं था। असल में यह पंडितों के विरोध में बगावत थी। यह ब्राह्मणों के प्रति विद्रोह था। यह वेद के क्रिया कांड, शास्त्रीयता, शाब्दिकता, सिद्धांतों की व्यर्थ की चिंतना, उस सबके प्रति क्रांति थी, तलवार के धनियों की। उनकी, जिन्हें ये शब्द अर्थपूर्ण नहीं मालूम पड़ते थे। जो तो अनुभव को ही एकमात्र अर्थ जानते थे। यह क्षत्रियों की बगावत थी।

इसलिए चौबीस तीर्थंकर जैनों के क्षत्रिय हैं। मगर मजे की बात यह है कि महावीर, चौबीसवें तीर्थंकर ने, जिन्होंने कि जिन-धर्म को ठीक रूप रेखा दी, आधार शिला दी, परिभाषा दी, उनके ग्यारह ही प्रमुख शिष्य--उनके गणधर--सब ब्राह्मण थे।

क्षत्रियों की बगावत फिर ब्राह्मणों के हाथ में पड़ गयी।

महावीर के मरने के बाद जिन्होंने महावीर के ऊपर शास्त्र रचा, वे सब ब्राह्मण थे, वही कचरा जिसके खिलाफ महावीर ज्वाला बनकर धधके, फिर लौट आया; पीछे के द्वार से वापस आ गया। ये गणधर, जो महावीर के वसीयतदार हो गये, सब पंडित थे। इन्होंने सब मटियामेट कर दिया। ऐसे जिन-धर्म तो नष्ट हुआ और जैन धर्म स्थापित हुआ।

फिर इन गणधरों ने यह भी व्यवस्था कर दी कि अब कोई पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं होगा। पंडित को हमेशा डर होता है तीर्थंकर से। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः जिसके द्वारा तीर्थ का निर्माण हो। तीर्थ को अर्थ होता है, जो उस पार जाने के लिए घाट बनाए, नाव छोड़ने के लिए जगह बनाए, जहां से अज्ञात और अज्ञेय की तरफ यात्रा हो सके। वह जो दूर सत्य का लोक है, वह जो मुक्त आकाश है, बदलियों के पार, उस तक कहां से नाव छोड़ी जाए, किस जगह से ठीक होगा यात्रा का पहला कदम? क्योंकि पहला कदम गलत हो जाए तो सब कदम गलत हो जाते हैं। पहला कदम ठीक हो तो आधी यात्रा पूरी हो जाती है। तो ठीक दिशा में, ठीक घड़ी-मुहूरत में, ठीक क्षण में, ठीक जब वसंत आने को हो, जब परिपक्कता घनीभूत हो रही हो, जब आत्मा राजी हो छलांग लेने को--जबर्दस्ती नहीं, आग्रह से नहीं, किसी लोभ, किसी भय, किसी और आकांक्षा से नहीं; सत्य के अनुसंधान के लिए; सत्य की भूख से, सत्य की प्यास से--कब और कैसे कदम उठाया जाए और कहां से कदम उठाया जाए, नौका कहां से छोड़ी जाए, उस तीर्थ के निर्माण करने वाले को तीर्थंकर कहते हैं।

यह शब्द प्यारा है। यह अवतार से कहीं ज्यादा प्यारा शब्द है। क्योंकि अवतार में तो धारणा हैः परमात्मा नीचे उतरता है, अवतरित होता है। अवतर यानी अवतरण। उसमें तो परमात्मा को मानना होगा। विश्वास से शुरू करना होगा। इसलिए पंडित का धर्म हमेशा विश्वास से शुरू होता है। जैन धर्म विश्वास शुरू होगा। श्रद्धा; अंधी श्रद्धा, विवेक नहीं, होश नहीं, जानने की आतुरता नहीं, मान लेने की जल्दी।

तो पंडित तो घबड़ाएगा कि कहीं फिर कोई तीर्थंकर न हो जाए, नहीं तो सब अस्त-व्यस्त कर देगा। तो पंडित हमेशा ही अवरोध खड़ा कर देता है।

महावीर के बाद उसने दरवाजे बंद कर दिये कि आखिरी बात हो चुकी, अब इसमें कुछ हेर-फेर करने की जरूरत नहीं है। अब जुम्मा हमारा है इसकी व्याख्या कैसी करनी, क्या अर्थ देने, कैसे-कैसे अर्थों की कलमें लगानीं। अब यह हम कर लेंगे।

लेकिन यह पंडित कैसे करेगा? जिसको आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ है, वह कितना ही लफ्फाजी करे, कितनी ही लच्छेदार भाषा हो और तर्क हो, कहीं बुनियाद में चूक होगी। और वही चूक तुम्हें इस तरह के वक्तव्यों में दिखायी पड़ती है। इस तरह के आचरण में दिखायी पड़ती है।

ये सब पंडित हैं। इन सबको कोई आत्मबोध नहीं हुआ। इन्होंने तो हत्या कर दी जिन-धर्म की और लाश पर जैन धर्म का मंदिर खड़ा हो गया। इन्होंने तो हत्या कर दी बुद्ध-धर्म की और लाश पर बौद्ध धर्म खड़ा हो गया। और ये सारे धर्मों के साथ हुआ। ईसा के साथ हुआ, मोहम्मद के साथ हुआ। यह करीब-करीब अब तक की पूरी कथा है, सारे धर्मों की कथा है।

शैतान का एक शिष्य एक दिन भागा हुआ आया और उसने शैतान से कहा, आप बैठे क्या कर रहे हैं? ... शैतान अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। वह हुक्का गुड़गुड़ाता ही रहा। शिष्य तो पसीना-पसीना हुआ जा रहा था। उसने कहा, आप छोड़े यह हुक्का। हमारी जीवन की पूरी व्यवस्था संकट में है। एक आदमी को सत्य मिल गया, फिर मिल गया। जल्दी हमें कुछ उपाय करना चाहिए। अगर लागों को सत्य का पता चल गया तो हमारा क्या होगा, हमारे व्यवसाय का क्या होगा?

शैतान तो मुस्कुराता रहा और हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। फिर उसने कहा कि मत इतना घबड़ा, बैठ। हमने इंतजाम कर रखा है। तू अभी नया-नया है, तुझे पता नहीं है, हमने जगह-जगह पंडित छोड़ रखे हैं। मुझे पता है किस आदमी को सत्य मिल गया है; उसके पास हमारे पंडित पहुंच चुके हैं। तुझसे पहले पहुंच चुके हैं। अब पंडित और उसके बीच में सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाएगा। मत घबड़ा! लोगों तक सच्ची खबर नहीं पहुंच पाएगी।

लोगों तक खबर पहुंचाने वाले पंडित होंगे। वे अपने आदमी हैं। वे अपनी सेवा में हैं। वे सब विकृत कर देंगे। और यूं कला से विकृत करते हैं वे, इस होशियारी से कि पता ही नहीं चलता। दोस्त बनकर और गला काट जाते हैं। तलवार भी नहीं चलानी पड़ती और गले भी कट जाते हैं।

दुश्मन बनकर जरा कठिन होगा काम, इसलिए हमने बहुत पहले यह तरकीब सीख ली कि दोस्त बनकर ही काम कर लेना चाहिए। हमने पंडित जगह-जगह छोड़ रखे हैं। वे जैसे ही खबर मिलती है किसीको सत्य मिल गया, उसके पास उनकी चारों तरफ दीवाल खड़ी हो जाती है। लोगों के बीच में और उनके बीच में पंडितों का एक समूह खड़ा हो जाता है। वह कुछ कहेगा, पंडित कुछ औरों तक पहुंचाएंगे। शब्द वही होंगे इसलिए कोई यह भी न कहा सकेगा कि कुछ गड़बड़ की जा रही है। लेबिल वही होंगे, लेकिन भीतर का सारा माल बदल दिया जाएगा। और तू चिंता न कर! यह सदियों से चल रही बात है।

इस कहानी में मुझे अर्थ मालूम पड़ता है।

अब ये शब्द प्यारे हैंः अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांतवाद, सह-अस्तित्व, मगर महावीर के ओठों पर इनका अर्थ और था। जिन-धर्म में इनका अर्थ और, और जैन-धर्म में और।

महावीर का बुनियादी दान जगत को अनेकांतवाद है। अनेकांतवाद का अर्थ होता है, सत्य के बहुत पहलू हैं, अनंत पहलू हैं, अनेक अंत हैं, इसलिए जो भी सत्य के संबंध में कहा जाता है, वह किसी न किसी अर्थ में सही है। किसी अर्थ में भला गलत हो, मगर किसी अर्थ में सही है। इसलिए सत्य के प्रेमी को आग्रही नहीं होना चाहिए। क्योंकि आग्रह का अर्थ होगा कि सत्य ऐसा ही है, वैसा नहीं। अनेकांत का अर्थ है सत्य ऐसा भी है, वैसा भी।

लेकिन इस ऊंचाई पर तो कोई महावीर उड़े। ये तुम्हारे तथाकथित जैन मुनि यह जमीन पर भी सरक लें तो बहुत, आकाश में उड़ने की तो बात दूर। ये तो अभी खड़े होना भी कहां सीखे हैं! अभी तो घुटनों के बल घिसट रहे हैं। इनके पंख अभी कहां! इन्होंने तो गजब कर दिया, वही थोड़ा समझने जैसा है।

ये तो यह कहने लगे कि अनेकांतवाद ही सही है। शब्द वही रहा, महावीर का अर्थ था अनेकांत से कि सत्य के संबंध में जितनी बातें कही जा सकती हैं, सब सही हैं। विपरीत दिखायी पड़ने वाली बातें भी सही हैं। महावीर से कुछ पूछा जाता था तो वे एक उत्तर नहीं देते थे, क्योंकि वे कहते थे, एक उत्तर में पूरा सत्य नहीं समाता। कम से कम सत्य के सात पहलू तो निर्णायक रूप से बोलने ही होंगे। इसलिए महावीर ने सप्तभंगी न्याय को जन्म दिया, स्यातवाद को जन्म दिया।

अल्बर्ट आइंस्टीन ने थियॅरी ऑफ रिलेटिविटी को, सापेक्षवाद को विज्ञान में प्रवेश दिलवाया। पच्चीस सौ साल पहले महावीर ने वही कार्य धर्म के जगत में किया था। महावीर धर्म के जगत के अल्बर्ट आइंस्टीन हैं।

लेकिन जिस तरह अल्बर्ट आइंस्टीन को समझना कठीन मामला है--कहा जाता है, आइंस्टीन जब जिंदा था तो स्वयं उसने कहा है कि शायद पृथ्वी पर दस-बारह लोग हैं, सिर्फ दस-बारह लोग, जो मेरी बात को ठीक से समझते हैं। बात सापेक्षवाद की थोड़ी दुरूह है, क्योंकि हमारी सबकी आदतें होती हैं चीजों को साफ-साफ बांट लेने की। कोई तुमसे पूछे, ईश्वर है? तो तुम सीधा उत्तर चाहोगे देना। या तुम किसी से पूछो तो सीधा उत्तर चाहोगे लेना। कि या तो कहो हां या कहो नहीं। महावीर ऐसा न करेंगे। महावीर से अगर तुम पूछो, ईश्वर है? तो महावीर सात उत्तर देंगे, एक नहीं। तुम्हारी खोपड़ी घूमने लगेगी। उन सात उत्तरों को पचाने के लिए बड़ा

विराट ध्यान का अनुभव चाहिए। उतनी जगह तुम्हारे भीतर कहां? तुम्हारी बुद्धि में तो बस, सीधी-सीधी बात समा सकती है कि दो और दो चार।

महावीर से पूछो, ईश्वर है? तो महावीर कहते हैंः स्यात है। स्यात के बिना महावीर एक वक्तव्य नहीं देते। स्यात का अर्थ होता हैः हां, यह भी ठीक, ईश्वर है, यह भी ठीक। लेकिन कहीं भूल न हो जाए, कहीं तुम इसी को जोर से पकड़ न लो कि ईश्वर है इसलिए जो लोग कहते हैं ईश्वर नहीं है, वे गलत, तो तत्क्षण महावीर, देर नहीं करते, तत्क्षण, ताकि कहीं इसी बीच तुम पकड़ ही न लो; इसके पहले कि तुम पकड़ो, वे झटका दे देते हैं तुम्हें, वे कहते हैं, रुको, स्यात नहीं है। जो कहते हैं ईश्वर नहीं हैं, उनकी बात में भी सत्य है, और उनकी बात में भी सत्य है जो कहते हैं ईश्वर है। अब तुम जरा मुश्किल में पड़ोगे। यह तुम्हारी संभावनाओं के पार की बात होने लगी। क्योंकि यह तो विरोधाभासी वक्तव्य एक साथ हो गये। तुम चाहते थे साफ-सुथरा उत्तर।

और महावीर यहीं नही रुक जाते। महावीर तुम्हारी विडंबना देखेंगे, तुम्हारी बिबूचना देखते हैं, तुम्हारी आंखों में घबड़ाहट, बेचैनी देखते हैं कि यह क्या उत्तर हुआ, स्यात है, स्यात नहीं है, तो महावीर तीसरी बात कहते हैं कि स्यात दोनों साथ-साथ है; है भी और नहीं भी; अलग-अलग मत करो। अलग-अलग करने में तुम्हें अड़चन होती है। तो यूं समझो कि जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू। दोनों साथ-साथ है।

महावीर तो कोशिश कर रहे हैं कि तुम्हारे सारे द्वार-दरवाजे खुल जाएं, मगर तुम्हारी मुसीबत बढ़ती जाएगी। तुम्हारी मुसीबत बढ़ती देखकर वे चौथा वक्तव्य देते है। वे कहते हैंः शायद अवक्तव्य है। छोड़ो, क्षमा करो! अगर मैंने तुम्हे बिबूचन में डाल दिया हो--स्यात है, स्यात नहीं है, स्यात दोनों है, ऐसा कह कर से अगर तु उलझन में पड़ गये हो--और तुम आए थे सुलझाने--तो छोड़ो, जाने दो बात; तो तुमसे मैं एक पते की बात कह देता हूं कि अवक्तव्य है, उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

तुम्हारी मुश्किल इससे कुछ कम नहीं होती, बढ़ती जाती। और इस तरह महावीर इसको सात वक्तव्यों तक खींचते हैं। जब वे देखते हैं कि तुम्हारी मुसीबत बढ़ गयी, तुम समझ नहीं पा रहे, तो वे कहते हैं, ऐसा समझो कि स्यात है और अवक्तव्य है। है, निश्चिंत रहो, मगर इतना ख्याल रखना, उसके संबंध में फिर कुछ कहा नहीं जा सकता, अवक्तव्य है।

मगर हो सकता है तुम नहीं मानने वाले हो, तुम नास्तिक हो, तो परमात्मा तो इतना विराट होना चाहिए कि नास्तिक को भी आत्मलीन कर ले, आत्मसात कर ले; नास्तिक होने से द्वार उसका बंद नहीं हो जाना चाहिए। तो फिर वक्तव्य देते हैं वे, छठवां वक्तव्य देते हैं कि स्यात नहीं है और अवक्तव्य है। अब तुम देखते हो मुसीबत! नहीं है, मान लो, यह भी सही, मगर इतना ध्यान रखना, है तो नहीं, मगर फिर भी उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

और सातवां वक्तव्य देते है--क्योंकि नहीं देखते सुलझाव आ रहा है, तुम्हें और उलझता देखते हैं, तुममें और गाठों पर गाठें पड़ती जाती हैं--तो वे कहते हैं, स्यात है, स्यात नहीं है, स्यात अवक्तव्य है, ये तीनों एक साथ ही मान लो।

इसको महावीर ने सप्तभंगी न्याय कहा। इसको महावीर ने कहा, तर्क के सात पहलू। जैसे सूर्य की किरण सात रंगों में बंटती है, इंद्रधनुष बनती है, ऐसे सत्य की किरण भी सात रंगों में बंट जाती है और इंद्रधनुष बन जाती है। इसमें एक-एक रंग को पकड़ लेने वाला एक तरह की सुविधा में होता है; जो कहता है, लाल ही रंग है, उसको झंझट नहीं; जो कहता है, नीला ही रंग है, उसको झंझट नहीं; जो कहता है, पीला ही रंग है, उसको

झंझट नहीं; महावीर की मजबूरी भी समझो, महावीर कहते हैंः पीला भी, लाल भी, हरा भी, नीला भी, सातों रंग रंग हैं और सातों को मिलकर जो बनता है असल में वह सातों का अतिक्रमण कर जाता है।

सफेद, वह सातों का मेल है।

कभी सोचा भी नहीं कि सफेद रंग सातों रंगों के मेल से बनता है। तुम तो सोचते होओगे कि सातों रंगों का मेल होगा, तो कम से कम एक बात तो निश्चित है कि सफेद नहीं बन सकता। सात रंग मिलेंगे और सफेद बनेगा! लेकिन यही है प्रकाश का पूरा शास्त्र, रंग की पूरी रचना। सातों रंगों के ठीक-ठीक संयोग से सफेद रंग बनता है। सातों का अतिक्रमण हो जाता है मिलन में।

महावीर कहते हैं, यह जो सप्तभंगी न्याय है, इन सातों वक्तव्यों को मिला सको तुम और इनके पार देख सको तो तुम्हें सत्य दिखायी पड़ेगा। इसलिए महावीर किसीको भी नहीं कहते कि गलत है--किसीको भी नहीं कहते गलत है--और मजा, अगर तुम जैन धर्म के मानने वाले से पूछो, तो वह कहता हैः अनेकांतवाद ही सही है।

एक जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। वह कहने लगे, अनेकांतवाद ही सही है। मैंने कहा, कम से कम अनेकांतवाद पर तो अनेकांतवाद को लगाओ, और किसी पर मत लगाओ! कहो, स्यात सही है, स्यात सही नहीं है। उन्होंने कहा कि यह आप क्या कह रहे हैं? अनेकांतवाद तो सौ प्रतिशत सत्य है। उनको विरोधाभास नहीं दिखायी पड़ रहा है। अनेकांतवाद का तो आधार ही यही है कि विपरीत वक्तव्य को भी सम्मिलित कर लेना है, आत्मलीन कर लेना है। मगर इस ऊंचाई पर तो कभी कुछ थोड़े-से प्रबुद्ध पुरुष पहुंचते हैं। भीड़ जो अनुयायियों की होती है, अंधों की--और अंधे ही अनुयायी होते हैं। महावीर को जो समझेगा, वह अनुयायी नहीं होता, मित्र होता है। सहयात्री होता है। वह महावीर को मानता नहीं, जानता है कि वे ठीक कह रहे हैं। क्योंकि उसका भी यह अनुभव है; वह गवाह है उनका।

मैं जैन नहीं हूं, लेकिन महावीर ठीक हैं, इसके लिए मैं गवाही देता हूं। महावीर के ठीक होने में जरा भी संदेह नहीं है। क्योंकि मेरा भी ऐसा अनुभव है। सत्य सब रंगों में प्रगट होता है, सब ढंगों में प्रगट होता है। और अनाग्रह सत्यान्वेषी की बुनियादी दृष्टि है। और वही बात अपरिग्रह के संबंध में लगती है। अपरिग्रह का अर्थ होता हैः मेरा कुछ भी नहीं। लेकिन जैन धर्म को मानने वाला कहता हैः जैन धर्म मेरा।

अपरिग्रह का अर्थ होता हैः मेरा कुछ भी नहीं; क्योंकि मैं ही कहां हूं? जहां मैं नहीं, वहां मेरा नहीं। फिर परिग्रह कैसा?

जब चीन ने भारत पर हमला किया तो आचार्य तलसी ने वक्तव्य दिया कि हमारे देश पर हमला हुआ है, आक्रमण हुआ है, तो हम सब जैनों को इस आक्रमण के विरोध में जो कुछ भी करने योग्य हो करना चाहिए। मेरे पास उनके एक शिष्य मिलने आए थे। मैंने उनसे पूछा कि आचार्य तुलसी को कहनाः अपरिग्रही व्यक्ती को मेरा देश, मेरी जाति, मेरा धर्म, इस तरह की भाषा नहीं बोलनी चाहिए। और मुनि होकर इतना तो बोध आना चाहिए कि मेरा कुछ भी नहीं है। क्या जमीन मेरी? क्या देश मेरा? यह झंडा ऊंचा रहे हमारा, यह बच्चों के लिए ये बातें शोभा देती हैं; यह स्कूल के छोटे-छोटे बच्चे, ठीक। ये बचकानी बातें हैं। लेकिन पकड़ हम सबकी वही।

फिर हमारा मेरा अगर दुकान से छूटता है तो मंदिर पर टिक जाता है। मेरा बना रहता है। मेरा मंदिर, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र। क्या फर्क पड़ा? मेरा खाता, मेरी बही, वह चली गयी, अब मेरा शास्त्र, मेरा ग्रंथ, मेरी मूर्ति, मेरा धर्म। फिर लौट आया मेरा। जाना चाहिए मेरा, तो अपरिग्रह।

मगर जैन धर्म भी पूरा"मेरा" नहीं होता मुनियों का, इसमें भी संप्रदाय हैं, उप-संप्रदाय हैं। दिगंबर का मंदिर श्वेतांबर का मंदिर नहीं होता, वह दिगंबर का मंदिर है।

मैं एक यात्रा में था, एक दिगंबर महिला मेरे साथ यात्रा कर रही थी। उसने कसम ले रखी थी कि जब तक वह महावीर के दर्शन न कर ले, जिन-प्रतिमा के दर्शन न कर ले, तब तक भोजन न करेगी। एक गांव में कोई जैन मंदिर न था, बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। मेरे पास एक किताब थी, जिसमें महावीर की फोटो थी, मैंने कहा, तू इसको ही प्रणाम कर ले! उसने कहा, यह तो फोटू है! मैंने कहा, फोटू और प्रतिमा में कुछ फर्क है? वह पत्थर की बनी, यह कागज की बनी। पत्थर भी बाहर, कागज भी बाहर। कागज भी कल राख हो जाएगा, पत्थर भी कल राख हो जाएगा, क्या फिक्र करती है तू! नहीं-नहीं उसने कहा कि आप मुझे यू न भरमाएं। मैं एक दिन भूखी रह लूंगी।

वह एक दिन भर भूखी रही।

दूसरे गांव जाने के पहले मैंने पता करवा लिया वहां कोई जैन मंदिर है या नहीं? क्योंकि कल इसे कम से कम भोजन मिल जाए। नहीं तो यह हत्या मेरे सिर लगेगी। जिनसे पूछा, उन्होंने कहा, वहां जैन मंदिर है। तो मैं निश्चिंत रहा, मैंने कहा, चलो, कोई बात नहीं, एक दिन के उपवास में कुछ बिगड़ा नहीं जाता, थोड़ी शरीर की शुद्धि ही होगी--वैसे ही थुलथुल स्त्री थी। तो मैंने कहा, थोड़ा चलो वजन ही कम होगा, एक किलो, ठीक है, कोई हर्जा नहीं।

दूसरे गांव गये, उसने स्नान किया, मैंने--जिनके घर ठहरा था उनसे कहा कि इसे ले जाओ जैन मंदिर। वे उसे लेकर गये, वह तो वहां से आ गयी, बड़ी क्रुद्ध और उसने कहा कि वह तो श्वेतांबर मंदिर है। मैं तो दिगंबर मंदिर में जब तक दर्शन नहीं करूंगी... ।

महावीर की प्रतिमा वहां भी है, मगर वह श्वेतांबर की है! प्रतिमा भी दिगंबर और श्वेतांबर की अलग-अलग। फिर श्वेतांबरियों में भी फिरके हैं छोटे-छोटे। कोई तेरापंथी हैं, कोई बीसपंथी हैं। कोई स्थानकवासी हैं, कोई मंदिरमार्गी हैं। और क्या-क्या नहीं हैं? तरह-तरह के छोटे-छोटे फासले। और उन फासलों पर"मेरा" टिकता जाता है।

चैतन्य कीर्ति, तुम ठीक पूछते हो कि "ये मुनि भद्रगुप्त को क्या हुआ, कहते हैं--मेरे कच्छ में प्रवेश नहीं करने दूंगा!"

इसमें क्या, जैन मुनि का क्या कच्छ! मगर कोई फर्क तो नहीं पड़ता, अगर मेरा भारत हो सकता है तो फिर मेरा कच्छ भी हो सकता है। फिर मेरा जिला, मेरी तहसील, मेरा गांव... । फिर मेरे घर में ही क्या तकलीफ है? बात तो वही है। फिर मेरी स्त्री और मेरे बच्चे में क्या इतनी अड़चन आ रही है! जब"मेरा" बचना ही है तो स्त्री और बच्चों का ऐसा क्या कसूर है कि इनको छोड़कर भाग गये? ऐसा तो नहीं था कि स्त्री कच्छी नहीं थी। स्त्री भी कच्छी रही होगी। और बच्चे भी कच्छी रहे होंगे। जब दोनों के मेल से ही पैदा हुए थे तो कच्छी ही रहे होंगे। स्त्री को छोड़कर भाग गये--कच्छी को छोड़ते शर्म न आई! बच्चों को छोड़कर भाग गये--छोटे-छोटे कच्छी, उनको छोड़कर भाग गये, शर्म न आई! और अभी भी कच्छ मेरा?

मगर मैं समझता हूं। ये सब अंधों की जमात है। और अंधों को अंधे चला रहे हैं, अंधा अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़ंत। वे गिरते हैं कुएं में, रोज-रोज कुओं में गिरते हैं। मगर अपना ही कुआं हो, तो क्यों न गिरें? मेरा कुआं, गिरेंगे। तुम अपने कुएं में गिरो, हम अपने कुएं में गिरेंगे।

अपने-अपने छोटे-छोटे घेरे और दायरें हैं, छोटी-छोटी मर्यादाएं हैं, छोटी-छोटी सीमाएं हैं। ये बेचारे नासमझ क्या महावीर को समझेंगे! इसलिए मैं भेद करता हूं जिन-धर्म में और जैन धर्म में। जिन-धर्म तो उनका है जो जागे और जैन धर्म उनका है जो सो रहे हैं मगर मान लिया है। पैदा हो गये हैं एक घर में, तो जो घेर की

मान्यता थी वह पकड़ ली है। शब्द ही हैंः अपरिग्रह, अहिंसा, अनेकांतवाद, बस शब्दमात्र। न अहिंसा का कोई बोध है अब यह हिंसा की भाषा है! संगठन, हिंसा की भाषा है।

संगठन का क्या अर्थ होता है? साधना अहिंसा की भाषा हो सकती है, संगठन नहीं। साधना व्यक्ति की होती है, और संगठन तो समूह का होता है, भीड़ भाड़ का होता है। संगठन तो होता ही है किसीके खिलाफ। साधना होती है स्वयं की खोज के लिए, किसीके खिलाफ नहीं। साधना किसीके खिलाफ नहीं हो सकती। संगठन की तो जरूरत ही तब पड़ती है जब किसीके खिलाफ करना हो। और जहां किसीके खिलाफ करने का भाव है वहां हिंसा है।

अहिंसा का मलतब क्या होता है? बस, पानी छानकर पी लिया तो अहिंसा हो गयी! काश, इतना आसान होता। तब तो पूरे के पूरे गांव, फिल्टर लगे हैं, लोग छना हुआ पानी पी रहे हैं, सभी अहिंसक हो गये। रात्रि भोजन नहीं किया तो अहिंसक हो गये! अब तो रात्रि बची कहां? दिन से भी ज्यादा रोशनी रात को हो सकती है। मक्खी-मच्छर के गिरने का ही डर था न। अंधेरे में कहीं कोई जीव-जंतु की हत्या न हो जाए। तो अब तो इतने प्रकाश लगा रख सकते हो अपने घर में, फ्लड लाइट लगा सकते हो अपने भोजन की टेबल पर, कि दिन में भी इतनी रोशनी न हो, सूरज को भी चौंधिया दो, इतनी रोशनी में भोजन कर सकते हो। अब कहां रात? अब कैसी रात?

मुंह पर पट्टी बांध ली तो समझा कि जैन हो गये। तो सभी डाक्टर अस्पतालों में बांधे रहते हैं, तो समझते हो जैन हो गये!

इतने सस्ते में बात नहीं हो जाने वाली है। ये दृष्टियां हैं, ये कोई छोटे-मोटे कृत्य नहीं हैं, मगर लोग कृत्यों में भटक जाते हैं। और दृष्टि तो चूक ही जाती है। तो एकाध किसी बात को पकड़ लेते हैं और बाकी सारा जीवन वैसा ही चलता जाता है।

अब संगठन की भाषा हिंसा की भाषा है। यह तो किसी के खिलाफ करना होता है। और इसी भाषा में श्री भद्रगुप्त ने वक्तव्य दिया। संगठित हो जाओ, उन्होंने जैनों से कहा। और बड़े मजे की बात है कि यूं जैन आपस में ही लड़ते हैं, मगर मेरे खिलाफ संगठित हो सकते हैं। सातों जैनों के संप्रदाय इकट्ठे होकर सभा किये, मांडवी में, जहां श्री चद्रगुप्त ने व्याख्यान दिया वहां सातों जैनों के सम्प्रदाय इकट्ठे हो गये। चला, इतना ही भला हुआ कि मेरे कारण, मेरे बहाने थोड़ी दुश्मनी छूटी। जिनमें बोलचाल भी न रहा होगा, उन्होंने भीः मिच्छामि दुक्कड़म! उन्होंने भी कम से कम एक दूसरे से क्षमा मांगी। कि अब मौका आ गया है कि इकट्ठे जो जाएं।

मेरे कारण हिंदू-मुसलमान इकट्ठे हो जाते हैं, ईसाई-हिंदू इकट्ठे हो जाते हैं। नास्तिक-आस्तिक इकट्ठे हो जाते हैं। महाराष्ट्र की कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रस्ताव पास किया है कि मुझे महाराष्ट्र में नहीं टिकने देना चाहिए। आस्तिक ही नहीं, नास्तिक और आस्तिक भी इकट्ठे। मैं प्रसन्न होता हूं कि चलो, मेरे कारण इतना भाईचारा फैल रहा है! यह भी क्या कुछ कम बात है! पुण्य ही पुण्य समझो! दुनिया में भाईचारा फैलाने में ही तो पुण्य है!

और जो भाषा वे बोले, वह भाषा हिंसा की है।

उन्होंने कहा, "सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हो जाओ। सब कुछ आहुति चढ़ा देना पड़े तो अब पीछे मत हटना, मगर इस व्यक्ती का और इस व्यक्ति के गैरिक संन्यासियों का कच्छ में प्रवेश नहीं होने देंगे।"

कैसे मेरा कच्छ में प्रवेश रोकोगे?

यह किसीका प्रवेश रोकने की भाषा, इसमें ही हिंसा भरी पड़ी है।

... "और सब बलिदान करने के लिए तैयार हो जाओ!"

जैसे कि कोई जेहाद, कोई धर्मयुद्ध होने वाला है, कोई तलवारें खिंचने वाली हैं। कि अपने-अपने लट्ठों पर तेल की मालिश कर लो, सब दंड बैठक लगाओ, अब तैयारी करो! क्या पागलपन की बातें हैं! मगर चौंकना मत, अपेक्षित है। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। आनंद हुआ! मैंने कहा, ठीक, कैसा प्यारा नाम हैः मुनि भद्रगुप्त! कैसी भद्रता! कैसी शालीनता! कैसा प्रसाद!

और मुनि हम कहते थे उन लोगों को जो मौन का अनुभव कर लेते थे। और ये बकवासी लोग! ये राजनैतिक होंगे, ये धार्मिक हैं ही नहीं। ये सातों जैनियों के संप्रदायों को इकट्ठा करना और व्याख्यान देना कि इकट्ठे हो जाओ, धर्म संकट में है! जरूर पंडितों को, पुराहिंतों को, साधुओं को बड़ा संकट है मेरे कारण। धर्म संकट में नहीं है। धर्म तो बहुत आह्लादित हैं। धर्म में तो नये-नये फूल खिलते मैं देखता हूं। लेकिन धर्म के नाम पर जिन लोगों ने ठेकेदारियां कर रखी हैं, वे लोग शंकित हैं, परेशान हैं। मुझसे क्या परेशानी होगी इनको? मुझको जब किसीसे परेशानी नहीं हैं, तो मुझसे इन्हें क्या परेशानी होगी?

मैंने तो इन सज्जन का कभी नाम भी नहीं सुना। न दोस्ती, है न कोई दुश्मनी है। यह पहली दफे नाम सुनने में आया। इनको क्या भय समा रहा है? क्या ऐसी घबड़ाहट है, क्या बेचैनी है? अगर तुम जो कह रहे हो, वह सत्य है; अगर तुम जो कह रहे हो, वह प्रकाश है, तो क्या इतना घबड़ाना। और जो मैं कह रहा हूं अगर गलत है, तो घबड़ाना मुझे चाहिए, बेचैन मुझे होना चाहिए, परेशान मुझे होना चाहिए। अंधेरा डरेगा प्रकाश के पास जाने में, प्रकाश क्यों डरेगा?

तुमने कभी प्रकाश को डरते देखा? कि तुम दीया जलाकर चले अंधेरे में और दीया कहे, न मैं नहीं जाता! अंधेरे में मैं बिल्कुल जाऊंगा ही नहीं! क्या अपनी जान गंवानी है हाथ से मुझे! क्या अपनी फांसी लगवानी है! और अंधेरा इतना पुराना है, हजारों साल पुराना और वहां मुझे लिये जा रहे हो इन्हीं-सी ज्योति को, मार ही डालेगा वह अंधेरा! ज्योति तो कुछ नहीं कहती, ज्योति कहती है कि जहां चलना हो चलो। अंधेरे की छाती कंपती है। वह चाहे हजारों लाखों साल पुराना हो तो छाती नन्हे-से दीये को देखकर कंपती है। घबड़ाता है, परेशान होता हैः चीख पुकार मचाता होगा कि हे भाइयो और बहनो, आओ, इकट्ठे हो जाओ! हमारा जीवन संकट में है!

इनको क्या इतनी बेचैनी है, क्या इतनी परेशानी है?

जूनागढ़ के मित्र चाहते थे कि मैं क्यों न जूनागढ़ चुन लूं, जूनागढ़ आ जाऊं। मैंने कहा, मुझे कोई अड़चन नहीं है। मैं तो कहीं भी आ जाऊं। वहां जैन मुनियों को खबर लग गयी कि जूनागढ़ के लोगों ने मुझसे प्रार्थना की है कि जूनागढ़ आ जाऊं। उन्होंने उनको बुलाया और कहा कि यह भ्रांति की बात मत करो क्योंकि यहां हमारा जैनतीर्थ है। जूनागढ़ के पास की पहाड़ी पर जैनों का तीर्थ है। दो ही तो जैनों के बड़े तीर्थ हैंः एक शिखर जी और एक गिरनार जी। जूनागढ़ के पास गिरनार है। वहां हजारों जैन मुनि, साधु, साध्वी। उन्होंने कहा कि यहां मत बुलाओ, यहां उपद्रव हो जाएगा।

मेरे मित्र आए वापस, उन्होंने कहा कि हमें इसका ख्याल ही न था। मैंने कहा कि उनसे तुम यह कहना कि मैं अकेला आदमी हूं और तुम्हारे तो हजारों जैन मुनि, साधु-साध्वी यहां हैं--और एक दिन से नहीं हैं, आज हजारों साल से गिरनार तुम्हारा तीर्थ क्षेत्र है, तुम क्या घबड़ाते हो! घबड़ाना मुझे चाहिए। तुम्हें क्या डर है? तुम क्यों इतने बेचैन होते हो? मेरे संन्यासी ऐसे भी तुम्हारे मंदिरों वगैरह में कोई उत्सुकता नहीं लेंगे; कोई उनको रस नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है, फुर्सत भी नहीं है। न तुम्हारे जैन मुनियों के पास जाएंगे। तुम क्यों

इतने परेशान हो? नहीं, उन्होंने कहा कि यहां निमंत्रण वापस ही कर लो, यहां बुलाना ही नहीं है। हमारा तीर्थ क्षेत्र नष्ट हो जाएगा।

ये हालतें ऐसी हैं जैसे बीमार को देखकर और पूरा दवाखाना चिल्लाने लगे कि बीमार को यहां मत आने देना, सब दवाखाना खराब हो जाएगा, हमारी सब दवाइयां भ्रष्ट हो जाएंगी।

तुम्हारा धर्म है? जिंदा है, सड़ा है, मुर्दा है, क्या है यह? इतनी क्या घबड़ाहट है! लेकिन यह तो अभी शुरुआत है, अभी दूसरे धर्मों के लोग भी इकट्ठे होंगे। अभी हिंदू भी इकट्ठे होंगे, अभी मुसलमान भी इकट्ठे होंगे, अभी सबके धर्मगुरु जेहाद का डंका बजाएंगे कि मुझे आने से रोकना है।

ये सब हिंसक वृत्तियां हैं। धर्म से इनका कुछ प्रयोजन नहीं है।

मगर मैं आश्चर्य नहीं करता। इसकी अपेक्षा ही है। इससे मैं जो कह रहा हूं, कहता रहा हूं उसका सत्य प्रतिपादित होता है। ये झूठे लोग हैं। ये झूठ के ऊपर जिंदा हैं। इनको डर लगता है कि मेरी बात आएगी वहां तो इनकी दीवालें गिरनी शुरू हो जाएंगी। रेत के ऊपर ये दीवालें खड़ी किये हुए हैं। मैं जो कह रहा हूं, मेरा अनुभव है, ये जो कह रहे हैं, इनका अनुभव नहीं है बस, वहीं अड़चन है। वहीं इनको भय है, वहीं इनको घबड़ाहट है। इनकी छाती कंपी जा रही है।

तुम पूछते हो, चैतन्य कीर्ति, "जैन धर्म में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांतवाद, सह अस्तिव आदि सिद्धांतो का विशेष स्थान है।"

बस, जहां तक सिद्धांतो की बातचीत करनी हो, तो ये सारे लोग भी इन्हीं सारे सिद्धांतों की बातें करते हैं। मगर जहां तक इनका जीवन में व्यवहार करना हो, वहां मुश्किल खड़ी हो जाती है।

अहिंसा तुम्हें यहां दिखायी पड़ेगी, जीवंत। अनेकांत तुम्हें यहां दिखायी पड़ेगा, जीवंत। यहां सारे धर्मों के लोग मौजूद हैं, यह है सह-अस्तित्व। यहां सारे देशों के लोग मौजूद हैं। भूल ही गये हैं कि कौन किस देश का है। भूल ही गये हैं कौन किस जाति का है। भूल ही गये रंग, भूल ही गये भेद। यहां पता ही नहीं चलता कौन यहूदी है, कौन ईसाई है, कौन जैन है, कौन बौद्ध है, कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है--इस तरह लीन हो गये हैं। जैसे सागर में सारी सरिताएं लीन हो जाती हैं।

सागर जानता है सह-अस्तित्व। और सागर चिल्लाता है कहीं कि यह गंगा आ रही है, हम नहीं प्रवेश करने देंगे, यह हमको भ्रष्ट कर देगी। गंगा क्या सागर को भ्रष्ट करेगी! आए गंगा, आए यमुना, आए गोदावरी, आए नर्मदा, जिसको आना है आए, सागर सबको आत्मलीन कर लेगा; सबको नमकीन कर देगा। गंगा भी नमकीन हो जाएगी, यमुना भी नमकीन हो जाएगी, गोदावरी भी नमकीन हो जाएगी। जो भी आए, सागर में आते ही सागर का रंग ले लेगा, सागर का ढंग ले लेगा, सागर का स्वाद ले लेगा।

महावीर ने किसीसे नहीं पूछा कि तुम किस जाति के हो, किस धर्म के हो-- बगावत ही महावीर की जातियों के विरोध में थी, वर्ण के विरोध में थी। ये जो चार वर्ण थे हिंदुओं के, महावीर का विरोध का विरोध था वर्णों से। क्या वर्ण? सभी एक जैसी आत्मा और एक जैसी चेतना को लेकर पैदा होते हैं। तो वर्णों का भेद छोड़ दिया था। मगर जैनियों को है पक्का भेद। ब्राह्मण आए तो कहेंगे, आइए पंडित जी, बैठिए। और हरिजन आ जाए तो दुत्कारेंगे। हिंदुओं से भी ज्यादा दुत्कारेंगे।

जैन तो हिंदुओं से भी आगे बढ़-चढ़ कर अपने को पवित्र मानने लगे हैं। ब्राह्मणों से भी ज्यादा अपने को ज्यादा शुद्ध मानने लगे है। जैन घर में अगर रसोइए की जगह खाली हो तो सिर्फ बाह्मण को ही मिल सकती है। इसमें दोहरे फायदे कर लिये जैनों ने। एक तो ब्राह्मण का अपमान कर दिया, कि तुम्हारी हैसियत बता दी, कि

तुम्हारी हैसियत बस रसोइए की है और कुछ भी नहीं; कि भोजन भर बनाओ, या बर्तन मलो। और ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे किसी को--क्षत्रिय को भी--नहीं भोजन बनाने देंगे। हालांकि चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे। अगर इनमें से एक भी किसी जैन घर में भोजन बनाने के लिए दरख्वास्त देता, इसको रसोइए की तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता था। निकाल बाहर करते कि बाहर निकलो। कहां के क्षत्रिय, कहां के खत्री, यहां कहां घुसे आ रहे हो! शुद्ध ब्राह्मण चाहिए।

मंदिर में मूर्ति बता लेना एक बात है!

एक जैन परिवार बंबई में मैं जब था तो मेहमान हुआ। उन्होंने पूछा कि यह आदमी जो भोजन बना रहा है, यहा कौन है? मैंने कहा, भई, यह नेपाली है--नेपाली क्षत्रिय। वे कहे, इसका बनाया हुआ भोजन हम नहीं करेंगे। ब्राह्मण होना चाहिए। मैंने कहा, और तुम चौबीस तीर्थंकरों की पूजा कर रहे हो! सब क्षत्रिय थे। पूजा करने के पहले, पैर में झुकने के पहले पूछ तो लिया करें कि महराज! महराज हो कि नहीं? कहां के क्षत्रियों के पैर पड़ रहे हो!

तो यह जो मेरा रसोइया है, यह शुद्ध क्षत्रिय हे। नेपाली क्षत्रिय है। बुद्ध तो नेपाली थे ही। असल में उनको हिंदुस्तानी कहना चाहिए नहीं। कपिलवस्तु जो थी, वह नेपाल का ही हिस्सा थी। ठीक नेपाल और भारत की सीमा पर, तय करना मुश्किल कि वह भारतीय कि नेपाली? नेपाली होने की ज्यादा संभावना है। नेपाल में इसीलिए बुद्ध धर्म की अभी भी कुछ छाप रह गयी है। भारत से तो बिल्कुल उड़ गयी है।

क्षत्रिय को नहीं बनाने देंगे भोजन, तो शूद्र को तो बनाने ही क्या देंगे!

मैंने निरंतर यह कहा है कि जैन धर्म धर्म भला हो, मगर संस्कृति नहीं है। क्योंकि जैन कम से कम एक बस्ती तो बसा कर बता दें। संस्कृति का तो अर्थ होता हैः कि जिसमें सब पहलू जीवन के प्रगट हों। जैन एक बस्ती तो सिर्फ जैनियों की बसा कर बता दें! मुश्किल खड़ी हो जाएगी? पर निर्भर हैं। पानी किससे भरवाओगे? जूते किससे बनवाओगे? पाखाना किससे साफ करवाओगे? अगर सिर्फ जैनियों ही जैनियों की बस्ती हो, तो कोई जैनी तो पाखाना साफ करेगा नहीं, जूता तो बनाएगा नहीं, सड़क पर बुहारी तो लगाएगा नहीं, हजामत तो बनाएगा नहीं, ये सब काम कौन करेगा? जैन कम से कम एक बस्ती तो बनाकर बता दें। तो मैं कहूंगा कि यह संस्कृति है, यह समाज है।

यह काहे का समाज है! यह तो परजीवी है। यह तो हिंदुओं की छाती पर बैठा हुआ है। यह तो शोषक है। जैसे तुमने अमरबेल देखी न, उसको कोई जड़ें नहीं होतीं, वह जिस झाड़ पर चढ़ जाती है उसीका खून चूसती रहती है। उसकी खुद की कोई जड़ें नहीं होतीं, वह झाड़ों से झाड़ों पर फैलती रहती है। और नाम उसका अमरबेल है। होने ही वाली है अमरबेल। उसको मारोगे कैसे? उसकी जड़े ही नहीं हैं। जड़ हों तो काट डालो, मर जाए। वह बिना जड़ के जीती है, एक झाड़ दूसरे झाड़ पर फैलती रहती है। झाड़ के भीतर झाड़ का रस पीने लगती है--झाड सूखने लगेगा।

जैन तो अमरबेल जैसे हैं। यह कोई जाति नहीं, धर्म नहीं, समाज, संस्कृति, सभ्यता, कुछ भी क्या हैं, सिर्फ एक छोटी-सी विचारधारा मात्र है। और उसको भी कहां मानते हैं? बस, बकवास के लिए है। व्याख्यान इत्यादि देने हों तो ठीक है, नहीं तो काम क्या पड़ेगी इनके वह। एक बस्ती बसाकर बता दें!

मैं तो जो बोल रहा हूं, वह संस्कृति है, आनेवाले मनुष्य की संस्कृति है। इसलिए मैं चाहता हूं कि पहला काम इससे शुरू करूं कि बस्ती बसा कर बता दूं। यहां तुम इस छोटे-से परिवार में देख सकते हो। कोई संन्यासी पाखाने साफ कर रहे हैं इसलिए भंगी नहीं हो गये हैं, इसलिए उनका कोई अनादर नहीं है--कोई पता ही नहीं

चलता उनको, किसीको कि कौन क्या कर रहा है! कोई पाखाने साफ कर रहा है, कोई रास्ते साफ कर रहा है, कोई लकड़ियां चीर रहा है, कोई भोजन बना रहा है। कोई भेद नहीं है। हमारे ध्यान विद्यापीठ का जो कुलपति है, वह वेदांत और या बुहारी लगाने वाले सर्जनो, कोई भेद नही; कोई अंतर नहीं। कोई ऊंचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है, कोई हाइरेरिकी नहीं है। कोई श्रृंखला नहीं है। चाहे पहरेदार हो कोई, दरवाजे पर खड़ा हो और चाहे आफिस में कोई सेक्रेटरी हो, कोई अंतर नहीं है। कोई श्रेष्ठ नहीं है, कोई अश्रेष्ठ नहीं है। यह संस्कृति का लक्षण होना चाहिए।

यह जो दस हजार संन्यासिंयों की मैं बस्ती बनाना चाहता हूं--और बस्ती से ही क्यों शुरू करना चाहता हूं? इसलिए बस्ती से शुरू करना चाहता हूं ताकि यह बात साफ हो सके कि मैं जो कह रहा हूं, वह केवल परोपजीवी विचारधारा नहीं है। वह कोई अमरबेल नहीं है, जो दूसरों की छाती पर सवार रहे। वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है, उसकी अपनी जड़ें होंगी। हमारे अपने जूते बनाने वाले होंगे, हमारे अपने शिक्षक होंगे, हमारे अपने किसान होंगे, हमारे अपने बागवान होंगे, हमारे अपने सफाई करने वाले होंगे, हमारे अपने डाक्टर होंगे।

यह दस हजार संन्यासियों का जो समुदाय होगा, जो कम्यून होगी, यह सिद्ध करना चाहती है सारी दुनिया के समक्ष कि एक वर्गविहीन समाज, वर्णविहीन समाज, ऊंच-नीच के भेद से मुक्त समाज निर्मित हो सकता है, जिसमें प्रेम ही एकमात्र नाता होगा, जिसका सारा संबंध प्रेम का होगा। जो धन को कोई मूल्य नहीं देगा, जिसका सारा मूल्य सिर्फ प्रेम के लिए होगा। ऐसा प्रेम से भरा समाज ही अहिंसक हो सकता है। और ऐसे प्रेम से भरा समाज ही सह-अस्तित्व की घोषणा दे सकता है दुनिया को। और उसमें सब तरह के लोग होंगे। सब जीवन धाराएं उसमें मिलेंगी। स्वभावतः उसमें अनेकांतवाद होगा।

किसी पर कोई आग्रह नहीं है, किसी पर कोई दबाव नहीं है, किसीको जबर्दस्ती किसी ढांचे में ढाले जाने की चेष्टा नहीं है, सबके लिए स्वतंत्रता है। इससे घबड़ाहट फैल रही है। आखिर यह बस्ती मेरी बस न जाए, इसकी सारी घबड़ाहट क्या है? इसकी घबड़ाहट यही है कि यह बस्ती सारे जगत के सामने एक नया उदाहरण होगी। अब तक कोई ऐसी बस्ती बसी नहीं, जो जगत के सामने एक उदाहरण बन सके। लोग बातचीत करते रहे वर्ण-विहीनता की, वर्ग-विहीनता की, मगर बातचीत बातचीत ही रही। रूस में भी वर्ग-विहीन समाज निर्मित नहीं हुआ। नये वर्ग बन गये पुराने वर्गों की जगह। चीन में भी वर्ग-विहीन समाज निर्मित नहीं हुआ। नये वर्ग आ गये, पुराने वर्ग गये।

यह कम्यून पहले अर्थ में साम्यवादी होगा, बुनियादी अर्थ में साम्यवादी होगा। इससे घबड़ाहट फैलती है। इससे डर लगता है। इससे हजार बहाने खोजे जाते हैं कि किसी तरह इस रोका जाए। क्योंकि इसकी मौजूदगी पृथ्वी के कोने-कोने में अनुभव की जाएगी। इसे देखने सारी दुनिया से लोग आनेवाले हैं।

जिस दिन कच्छ में यह बस्ती आबाद हो जाएगी, यह गैरिक नगर संन्यासियों का, सारी दुनिया से पर्यटक कच्छ की तरफ आनेवाले हैं। ताजमहल कम लोग जाएंगे--क्योंकि क्या है अब ताजमहल में देखने को--खजुराहो लोग कम जाएंगे--देख चुके मूर्तियां बहुत--यहां जिंदगी होगी, जीवंत कुछ होगा।

इससे बेचैनी फैल रही है, घबड़ाहट हो रही है कि ये फीके पड़ जाएंगे--ये भद्रगुप्त इत्यादि, इन सबकी दो कौड़ी हैसियत रह जानेवाली है। अभी ये बड़े मुनि हैं वहां। फिर इनको बेचैनी हो जाएगी। ऐसे तो हजारों मुनि हमारी बस्ती में रहनेवाले हैं। और जो वस्तुतः मुनि होंगे। क्योंकि मौन उनकी साधना होनेवाली है।

और इनके रोके रुकने वाला नहीं है कुछ। ये जितना रोकने की कोशिश करेंगे, उतनी प्रगाढ़ता से यह घटना घटेगी। यह घटना घटने ही वाली है। थोड़ी देर-अबेर शोरगुल मचाने से हो सकती है, बस, और कुछ होने वाला नहीं है।

और इन्होंने अगर जिद्द ही की, अगर ये इस तरह के संगठन और इस तरह के रोकने की मूर्खतापूर्ण बातें किये, तो फिर कोई बात नहीं, इनकी भाषा में ही मैं इनसे बोल सकता हूं। तो फिर दस हजार संन्यासी कूच ही करेंगे। जिंदा या मुर्दा कच्छ पहुंच कर रहेंगे। फिर देखें, कौन रोकता है, कैसे रोकता है? सीधे बात बनी तो सीधे, अन्यथा तिरछी अंगुली से भी घी निकाल लेना मुझे आता है। मगर कच्छ का घी निकालकर रहेंगे। अभी तक मैं शांति से चल रहा हूं, मेरा कोई अहिंसा और अनेकांत, और सह-अस्तित्व इत्यादि में मेरा कोई भरोसा नहीं है। ये तो उनके सिद्धांत हैं। मैं तो किसी सिद्धांत से बंधा नहीं हूं। मैं तो क्षण-क्षण जीने का भरोसा रखता हूं। अगर यूं ही जिद्द की, तो यूं ही सही। तो हम इस चुनौती को भी स्वीकार कर लेंगे।

इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातें न की जाएं तो अच्छा। नहीं तो पछताएंगे बहुत। मैं नहीं चाहता हूं कि किसी तरह की संघर्ष की स्थिती पैदा हो, कोई मेरी उत्सुकता संघर्ष में नहीं, क्योंकि व्यर्थ क्यों शक्ती जाया करनी, लेकिन अगर बात वहीं आकर रुकनी है, अगर वही होना है, तो फिर वही हो ले। तो फिर देख लेंगे। फिर दस हजार लोगों का पैदल कूच कच्छ की तरफ होगा, फिर देखे कौन रोकता है, कैसे रोकता है? कैसे कोई रोक सकता है किसीको!

सारी दुनिया की आंखें फिर इस बात पर अटकेंगी। फिर यह मामला अंतर्राष्ट्रीय मामला बन जाने वाला है। बेहतर यह हो कि ये नासमझ चुप रहें और शांति से अपने-अपने मंदिरों में अपने-अपने धर्मशास्त्रों का पाठ करें, व्यर्थ की झंझटो में न पड़ें। नहीं तो मेरा कोई महावीर से बंधन नहीं है। इनका होगा। मेरा महावीर से प्रेम है, लेकिन मैं तो अपने ढंग का आदमी हूं। मेरे किसीसे कोई ऐसे आग्रह नहीं हैं कि कोई मैं महावीर को मानकर चलता हूं, कि बुद्ध को मानकर चलता हूं। मैं तो अपने बोध से जीता हूं। और अगर मुझे लगा कि यह चुनौती की ही तरह बात होने वाली है, तो फिर चुनौती की ही तरह बात होगी।

इसलिए इनको सावधान हो जाना चाहिए कि इस तरह की बकवास न करें! अभी मैंने कोई, किसी तरह का उपद्रव इस देश में खड़ा नहीं किया--मेरी तरफ से खड़ा नहीं किया; मेरी तरफ से मैं चुपचाप अपने काम में लगा हूं। और तब तक लगा रहूंगा जब तक मैं देखूंगा कि चुपचाप काम हो सके तो बेहतर। क्योंकि मैं अकारण कोई उपद्रव खड़ा नहीं करना चाहता। राजनीति में मेरी उत्सुकता नहीं है। लेकिन कुछ ऐसा भी नहीं है मामला कि अगर लोग उपद्रव पर उतारू हो आएं तो मैं उपद्रव का उत्तर उपद्रव से नहीं दे सकता हूं। तो उन्हें मैं पाठ पढ़ा सकता हूं कि उपद्रव का मजा क्या हो सकता है!

फिर यह संगठन वगैरह और ये बलिदान और कुर्बानी सब देख ली जाएगी! कि कितना बलिदान कर सकते हो, कितना संघर्ष कर सकते हो, कितनी कुर्बानी कर सकते हो! फिर उन्होंने अभी देखी नहीं है कुर्बानी क्या होती है! फिर उनको एक दफा पता चल जाएगा कि कुर्बानी क्या होती है।

ये दस हजार लोग चलेंगे यहां से। अभी तो हम खरीदने की बात कर रहे हैं जमीन, फिर हम खरीदेंगे नहीं--फिर क्या खरीदना है! फिर तो कब्जा करने की बात है। फिर तो हम डेरा जमा देंगे। फिर दस हजार लोगों की लाशों पर से कुछ करना हो तो कर लेना। और यूं भी नहीं है कि कोई हम तलवारें उठानेवाले हैं। हम तो निहत्थे संन्यासी हैं। चल पड़ेंगे। जिंदा रहे तो पहुंच जाएंगे, जिंदा नहीं रहे तो ठीक। तो वहा ऊपर चलकर वहां बस्ती बसाएंगे। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, बस्ती बसेगी। यहां बसे, वहां बसे!

मगर ये बातें जो मुनि और साधु और तथाकथित महात्मागण करते है, ये इतनी निपट गंवारी की हैं और इनके स्वयं के जीवन के इतने विपरीत हैं, फिर भी इन अंधों को न कुछ दिखायी पड़ता, न इन बहरों को कुछ सुनायी पड़ता। इसमें कई तरह के न्यस्त स्वार्थ जुड़ गये हैं। पीछे गहरी राजनीति है।

कल एक दूसरे अखबार में खबर थी कि असली कारण मुझे रोकने का यही है कि मेरी वहां मौजूदगी, दस हजार संन्यासियों की मौजूदगी, इतनी बड़ी बस्ती का आयोजन, मैं कच्छ की राजनीति पर हावी हो जाऊंगा। मुझे कोई रस ही नहीं है राजनीति में। आज पच्चीस वर्षों से मैं लोगों के बीच काम कर रहा हूं, लोग जानते है कि मुझे कोई रस नहीं है राजनिती में। मैंने कभी वोट नहीं दिया। मेरे संन्यासियों में किसीको पड़ा नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है। मगर घबड़ाहटें तो लोगों की अजीब-अजीब हैं। उनको घबड़ाहट यह है कि मैं कच्छ की राजनीति पर हावी हो जाऊंगा। और दस हजार का बल होगा मेरे साथ तो मैं कच्छ की राजनीति को बिल्कुल अपने कब्जें में कर लूंगा।

तो वहां की जो राजनीतिक चालबाजियां हैं, वे इन सबके पीछे काम कर रही हैं। ये जैन मुनि इत्यादि वगैरह तो सब बाहर के मुखौटे दिखायी पड़ रहें हैं, पीछे राजनीतिक बैठे हुए हैं।

श्री मोरारजी देसाई अभी भी लगे हैं काम में; बंबई के कच्छी उद्योगपतियों को भड़का रहे हैं, कि तुम कोशिश करो। तो बंबई के सात उद्योगपतियों ने गुजरात के मुख्यमंत्री को निवेदन किया है कि मुझे रोका जाए कच्छ आने से। लेकिन यह बात अब रुकने वाली नहीं है। और मोरारजी को भी भली भांति पता है, न मुझे रोका होता, न इस बुरी तरह से गये होते। उसका फल भोग रहे हैं। अभी और फल भोगना है दिखता है। चारों खाने चित्त पड़े हो, चीं बोल चुके, फिर भी, फिर भी होश नहीं आ रहा है। अभी लगता है और कुछ चोंटें खानी हैं। अब पीछे से--सामने से नहीं कर सकें, अब पीछे से।

और इन सबकी जालसाजियां देखते हो!

कच्छ में हम चौगुने दाम जमीन के देकर खरीद रहे थे। जिस भूमि को कोई एक पैसे में खरीदने को तैयार नहीं है। कच्छी तो सब भाग गये हैं वहां से। कच्छ की भूमि ऊसर पड़ी है, उजाड़ पड़ी है। उस भूमि की कोई कीमत नहीं है, कोई खरीदने को राजी नहीं है। हमसे मुंह मांगा दाम मांगा जा रहा था, वह हम दे रहे थे। तो हमें रोकने की कोशिश की गयी, सब तरह से रोकने की कोशिश की गयी। हजार कानूनी तरकीबें मोरारजी ने लगायी, झूठी, जो सच नहीं थीं। और ये सब सत्यवादी! ये भी अहिंसक हैं और सत्यवादी हैं और गांधीवादी हैं। और गांधीवादी होने का बड़ा ठेका लिये बैठे हैं! सब झूठ काम किया।

झूठी रिपोर्टें दिलवायीं कि वायुसेना विरोध कर रही है। अब तो हमारे हाथ में फाइलें आ गयीं। इंदिरा के आने पर मैंने पहला काम ही यह किया कि वे फाइलें हम देख लेना चाहते हैं, कि कब वायुसेना ने रोक लगायी? कभी रोक लगायी ही नहीं। वायुसेना ने कोई रोक नहीं लगाई। लेकिन मोरारजी ने यह झूठ वक्तव्य कलेक्टर से दिलवाया कि वायुसेना ने रोक लगा दी है, कि यहां दस हजार विदेशी संन्यासिंयों का इकट्ठा होना खतरे से खाली नहीं है; समुद्र पास है; समुद्र-तट है, अंतर्राष्ट्रीय सीमा है; पाकिस्तान पास है; और यहां से केवल तीस किलोमीटर की दूरी पर वायुसेना का अड्डा है, इसलिए--और हमारे पास सारे आधुनिकतम साधन हैं--हम खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं।

वह तीस किलोमीटर की बात भी झूठ थी। अभी ठीक नाप-जोख करवाने से पता चला पचास मील दूर है, तीस किलोमीटर नहीं। वह भी कलेक्टर को जोर दिलवाया गया कि तुम सच-सच बोलो, तीस किलोमीटर तुमने कैसे लिखा? तो उसने लिखा कि अब हम क्या करें, हमने कहा कि तीस किलोमीटर से ज्यादा मत

लिखना। हो कितना ही, तुम तीस किलोमीटर लिखना। क्योंकि वायुसेना का यह नियम है कि तीस किलोमीटर के भीतर वह रुकावट डाल सकती है।

मगर न वायुसेना ने रुकावट डाली थी, न वह जगह तीस किलोमीटर के भीतर है। दोनों बातें झूठ थीं। और यह सत्यवादी, अहिंसक, गांधीवादी मोरारजी देसाई ने यह सारा काम करवाया।

और खुद अपने लिए क्या किया, वह पता है!

अहमदाबाद में--सत्ता से जाने के पहले--कम से कम पांच करोड़ से ज्यादा की कीमत का भवन हैः शाही बाग--शाहजहां ने बनवाया था, उसी आदमी ने जिसने ताजमजल बनवाया--सौ एकड़ जमीन है, अहमदाबाद के बीच में है, महल है पुराना, वह गवर्नर का निवास था, उसको पचास लाख रुपये में, सिर्फ पचास लाख रुपये में, सरदार वल्लभ भाई स्मारक समिति को बेच दिया। सिर्फ जाने के एक दिन पहले। पांच करोड़ कम से कम जिसकी कीमत होनी चाहिए, वह केवल पचास लाख रुपये में। और वह पचास लाख रुपये भी वल्लभभाई स्मारक निधि के पास नहीं थे। वे कहां से पचास लाख रुपये लाते? वे लेने को राजी नहीं थे। कि हम कहां से पचास लाख लाएंगे! और अगर ले भी लिया हमने तो इस पर कम-से-कम पांच लाख रुपये साल का खर्च है, इसकी व्यवस्था के लिए--वह कौन खर्च करेगा? तो पचास लाख रुपया गुजरात सरकार से उनको दान दिलवाया--उसी दिन, एक ही दिन के भीतर; पचास लाख रुपया दान दिलवाया गुजरात सरकार से ही और उसी दिन पचास लाख रुपये में गुजरात सरकार के द्वारा ही पांच करोड़ की जमीन बिकवा दी।

और मजा यह है कि वल्लभ भाई स्मारक समिति के अध्यक्ष भी बाबूभाई थे और गुजरात के मुख्यमंत्री भी बाबूभाई थे। यह एक ही आदमी ने दोनों काम किये। पचास लाख दान किये वल्लभ भाई समिति को, उसके अध्यक्ष वह हैं--देनेवाले भी वह, लेनेवाले भी वह--और फिर उन्होंने वह जमीन भी पचास लाख में खरीद ली।

ये सारे उपद्रवी लोग, सब तरह के चोर-उचक्के, इनको घबड़ाहट हैं, हजार तरह की घबड़ाहटें हैं। इनके प्राण निकले जा रहे हैं। ये सब तरह के लागों को उकसाएंगे, भड़काएंगे। ये जैनियों को भड़काएंगे कि तुम्हारे लिए खतरा है। जब खरीदने की बात करीब-करीब पक्की हो गयी थी राजमहल को, तो वहां एक समुद्र-तट पर कोई मुसलमान पीर की मजार, है, जिस पर कभी कोई नहीं आता था, वर्षों से जिस पर किसीने दीया नहीं जलाया, जैसे ही यह बात चली कि हम उसे खरीद रहे हैं, उस पर रोज दीया जलने लगा, सफाई होने लगी, एक मौलवी आकर उस पर बैठने लगा।

पूछताछ की गयी तो महल के नौकरों ने कहा कि आप लोगों के आने की बात से चलो इतना तो अच्छा हुआ कि इस मजार को कोई साफ करनेवाला मिल गया। पीर की आत्मा बिचारे की आप लोगों को धन्यवाद दे रही होगी। क्योंकि यहां कभी कोई आता ही नहीं था। अब अड्डा जमाकर बैठ गये हैं वहां, ताकि उपद्रव खड़ा किया जा सके कि यह हमारी मजार है और इस जमीन को हम नहीं देने देंगे, क्योंकि यह तो मुसलमानों का तीर्थ स्थान है। वहां दस-पांच मुसलमान सुबह आकर बैठने लगे और भजन गाने लगे--और पूजा-पाठ शुरू हो गया! जहां वर्षों से कोई कभी नहीं आया।

महाराजा जिस जमीन को बेच रहे थे, उनका भाई जिनकी महाराजा से दुश्मनी है और कोई संबंध नहीं है, जो कभी उस महल में नहीं आया, उसमें महाराजा के पिता की भी कब्र है, जिस कब्र पर भी वह भाई कभी नहीं आया, उसने पत्र लिखा कि अभी मेरी मां जिंदा हैं, और जब मेरी मां मरे तो उसकी भी कब्र हम वहीं बनाएंगे, अपने पिता की कब्र के बगल में, तो यह आप ध्यान में रखें, फिर ही आप इस जमीन को लेना। क्योंकि कब्र वहीं बनेगी! जहां हमारे पिता की कब्र है, वहीं हमारी मां की कब्र बनेगी।

मां जिंदा है, कोई पूछने जाता नहीं, मां मरेगी तो उसकी कब्र जब बनानी है तो वह इसी जमीन में बनेगी!

इनको भी भड़काया, कि तुम इस तरह का उपद्रव शुरू करो। मुसलमानों को भड़काया कि तुम इस तरह का उपद्रव शुरू करो। राजा के बेटे को भड़काया कि हमारे पिता की कब्र चूंकि यहां है, इसलिए हम जब भी आना चाहेंगे आएंगे। जिसको भी आना है, आने देना होगा। हम यहां उत्सव करेंगे तो हमें रोका नहीं जा सकता। हालांकि आज तक कभी उत्सव किया नहीं गया। बाप-बेटे में बनती ही नहीं। बाप लंदन में बैठे रहते हैं। बाप-बेटे में बोलचाल भी नहीं है।

लेकिन इन सबको भड़काने के लिए एक ही आदमी पीछे काम करता रहा--मोरारजी देसाई। और अब भी वही सज्जन इस सबके पीछे लगे हुए हैं।

लोग कुट-पिट जाते हैं, बिल्कुल मर जाते हैं, मगर आदतें नहीं जातीं। पुरानी आदतें पीछा करती रहती हैं। वही जालसाजियां, वही उपद्रव।

अभी तक मैंने कोई उपद्रव नहीं करना चाहा, और अभी भी कोई आकांक्षा नहीं है। इन आनेवाले तीन-चार महीनों में शांति से हो सकता है तो ठीक, एक चार महीने और शांति से प्रयास जारी रहेगा, अगर नहीं शांति से हो सकता तो फिर जैसे होगा वैसे होगा! अगर इसको उपद्रव ही होना है तो यह उपद्रव ही होकर रहेगा! मगर यह बस्ती तो कहीं बसेगी। यह बस्ती बिना बसे नहीं रह सकती। और चूंकि उनको लग रहा है कि अब मैं बसा सकता हूं बस्ती--पहले उनको भय नहीं था, क्योंकि उनको पता था कि कैसे बसायी जाएगी बस्ती! यहां तो इस देश के उद्योगपतियों को, धनपतियों को भड़काया जा सकता है कि पैसा एक देना मत। मैंने इस देश में से एक पैसा लेना बंद ही कर दिया। अब तो मेरे संन्यासियों को कोई भड़का नहीं सकता। अब हम समर्थ हैं कि बस्ती हम बसा सकते हैं।

और सारे कच्छ के भाग्य बदल जाएंगे, इससे भी घबड़ाहट है। इससे भी डर है कि एक दफा यह अगर कच्छ के भाग्य को परिवर्तन हुआ, तो फिर यही कच्छी इनको गाली देंगे कि तुम रुकावट डाल रहे थे।

पचास करोड़ तो बस्ती के आबाद होने में लगनेवाले हैं। उसका इंतजाम सारी दुनिया से हुआ जा रहा है। उस सबके आश्वासन हैं। इसलिए उसकी कोई अड़चन नहीं है। पचास करोड़ तो ये कच्छ को यूं जाएंगे दो के साल भीतर। अभी भी पचास लाख रुपया प्रति माह पूना को उपलब्ध हो रहा है। छः करोड़ रुपये प्रतिवर्ष। जब कि केवल तीन हजार संन्यासी यहां हैं। दस हजार संन्यासी जब वहां होंगे तो कम से कम बीस-पच्चीस करोड़ प्रतिवर्ष कच्छ को उपलब्ध होगा।

मैंने गुजरात के मुख्यमंत्री को पुछवाया कि कच्छ में कितने लोग बेकार हैं? तो उन्होंने कहा, हमारे पास पांच हजार लोगों की दरख्वास्तें हैं, पांच हजार श्रमिक बेकार हैं। मैंने उनको कहा, पाच हजार श्रमिकों को हम काम देने के लिए तैयार हैं। क्योंकि हमें दस हजार लोगों के लिए मकान बनाने होंगे--तो हम पूरे पांच हजार श्रमिकों को लेने के लिए तैयार हैं।

मैं देखूंगा कि कौन रोकता है? ये पांच हजार श्रमिक खड़े होंगे वहां, मेरे संन्यासियों के स्वागत के लिए। इनके लिए रोटी-रोजी कौन देने वाला है! देखें कौन जैन मुनि इनको रोटी-रोजी देता है? अब तक क्यों नहीं दी? पांच हजार लोग वहां भूखे मर रहे हैं, इनको कोई रोजी-रोटी देनेवाला नहीं है। और मैंने तय किया है कि जो कुछ भी हम खरीदेंगे, वह कच्छ से खरीदेंगे। सारा यह जो निर्माण किया जाएगा, इतने भवन बनेंगे--दस हजार लोगों के लिए--अस्तपाल बनेगा, विश्वविद्यालय बनेगा, इस सबके लिए जो कुछ भी खरीदा जाएगा वह कच्छ

के बाहर से नहीं खरीदेंगे। एक दफा कच्छ को पूरा स्पष्ट हो जाना चहिए कि इस बस्ती को रोकने का अर्थ क्या होगा कच्छ के लिए। और इस बस्ती के बनने का क्या सौभाग्य हो सकता है कच्छ के लिए।

यह बस्ती एक बार बनी तो एक पांच साल के भीतर कच्छ की रौनक बदल जाएगी, रंग बदल जाएगा। उसमें प्राण आ जाएंगे। एक दस साल के भीतर भारत में कच्छ को देश का सर्वाधिक सम्पन्न हिस्सा बनाया जा सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। कच्छ की आबादी ही केवल सात लाख है। इस पूरी आबादी को सम्पन्न कर देने में कोई अड़चन नहीं है। इसलिए मेरे लिए एक प्रयोग भी हो जाएगा। मैं जो कह रहा हूं कि यह आग किस तरह फैलायी जा सकती है और कैसे हम लोगों को समृद्धि में रहना सिखा सकते हैं, इसकी पूरी सीख भी हो जाएगी, इसके लिए पूरा एक उदाहरण भी उपस्थित हो जाएगा कि लोग आकर देख सकें।

इस सबसे घबड़ाहट पैदा हो रही है।

मगर दूसरा पहलू भी, चैतन्य कीर्ति, भूल मत जाना। दूसरा पहलू भी है।

कल मैंने अखबार में पढ़ा कि कच्छ के युवकों के एक संगठन ने, युवक क्रांति दल ने स्वागत के लिए तैयारियां दिखायी हैं। उन्होंने एक बड़ा आयोजन किया और प्रार्थना की है कि मैं जरूर आऊं और कच्छ के युवक साथ देने को तैयार हैं। अगर यूं ही हुआ, अगर यह बात विवाद ही बनी, तो कच्छ भी बंटेगा--युवक तो मेरे साथ होंगे और बूढ़े-ठूढ़े, मुर्दा, ये हो सकते हैं कि ये भद्रगुप्त और इस तरह के लोगों के साथ हों। होने दो।

कच्छ के घर-घर में दो वर्ग हो जाएंगे। एक वर्ग, जो मेरे साथ होगा। और अभी तो मैंने कुछ किया ही नहीं है। जल्दी ही मैं अपने संन्यासियों को भेजना शुरू करूंगा कि कच्छ में संपर्क स्थापित करो। बहुत कच्छी मेरे संन्यासी हैं। उनको कहूंगा जाकर कच्छ में संपर्क स्थापित करो। घर-घर में खबर पहुंचाओ कि हमारी योजना क्या है, हम कच्छ में करना क्या चाहते हैं।

मैं लड़ सकता हूं, लड़ने में कोई अड़चन नहीं हैं, लड़ने की आकांक्षा नहीं है। क्योंकि उतनी शक्ति व्यर्थ व्यय करनी है। इसलिए चार महिने और कोशिश करूंगा कि चुपचाप हल हो जाए--जहां तक तो हल हो जाएगा! कोई कारण नहीं है कि अब रुकावट डाली जा सके--लेकिन अगर हल नहीं हुआ, तो अब रुकना भी नहीं है। रुकावट डाली जाएगी तो उसको तोड़कर भी कच्छ पहुंचना है।

भेजेंगे संन्यासियों को, वहां हवा पैदा करो; वहां संपर्क निर्माण करो; वहां घर-घर में साफ बात करो कि आने का अर्थ क्या होगा, प्रयोजन क्या होगा। साहित्य बांटो, फिल्में ले जाओ, टेप ले जाओ--सुनाओ, फिल्में दिखाओ, आश्रम की पूरी कल्पना उनको योजना दो।

संघर्ष के लिए तैयारी करनी होगी तो संघर्ष के लिए तैयारी की जाएगी।

मगर मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता कि इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। यह बात यूं ही हल हो जानेवाली है। इस तरह के छोटे-मोटे लोग चींख-पों मचाते रहते हैं। कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाते हैं। कोई चिंता लेने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान

ना लगे जाम पर हाथ, ये शर्त है

मैकदे को जो जाए वह कमजर्फ है

मुझे तोहमत न दो मैं शराबी नहीं

तुम नजर से पिलाओ तो मैं क्या करूं?

इश्क और ईमां में तफरीक है

मगर मेरा तो दोनों में ईमान है

खुदा को मनाने को सजदे करूं

मगर सनम रूठ जाए तो मैं क्या करूं?

आनंद ऊषा, ऐसी ही शराब तो यहां पी जा रही है और पिलायी जा रही है। जाम को हाथ नहीं लगता। शराब ओठों को भी नहीं छूती और प्राणों में उतर जाती है।

"ना लगे जाम पर हाथ, ये शर्त है

मैकदे को जो जाए वह कमजर्फ है"

है ही कमफर्ज, जो मधुशाला को जाए, बेशर्म है। उसको पीने ढंग ही न आया। उसे असली शराब की पहचान ही न आयी। असली शराब अंगूरों से थोड़े ही निकलती है, असली शराब तो ध्यान से निचुड़ती है। वह तो भीतर ही ढलती है, बाहर से उसका कुछ लेना-देना नहीं है। नासमझ ही मधुशालाओं में जाते हैं। समझदार तो अपने भीतर ही मधुशाला को बना लेते हैं। अपने भीतर ही उस रस को निचोडते हैं। उस रस को ही हमने परमात्मा कहा है। रसौ वै सः। उस परमात्मा की बस एक ही परिभाषा मुझे प्रीतिकर हैः रसो वै सः, वह रस रूप है। वह रस है।

"मुझे तोहमत न दो मैं शराबी नहीं

तुम नजर से पिलाओ तो मैं क्या करूं?"

ऐसा ही तो यहां हो रहा, ऊषा, जी भरकर पीओ! कोई तोहमत नहीं दे रहा। यह कोई मंदिर-मस्जिद नहीं है। यहां तो पीना-पिलाना ही साधना है। जी भरकर पीओ। पीने में कंजूसी मत करना। प्राणों के सारे द्वार-दरवाजे खोल दो, सूरज भीतर नाचे, हवाएं बहें, सरिताएं बहें, सारा जीवन तुम्हारे भीतर से प्रवाहित हो।

"इश्क और ईमां में तफरीक है

मगर मेरा दो दोनों में ईमान है"

वे नासमझ हैं जो कहते हैं कि प्रेम में और धर्म में विरोध है, फर्क है। जरा भी फर्क नहीं है। प्रेम ही धर्म है। जो कहते हैं, इश्क और ईमां में तफरीक है, वे गलत कहते हैं! कोई विरोध नहीं है। और जहां इश्क और ईमां में विरोध है, वहां इश्क भी झूठा है, ईमां भी झूठा है। जहां इश्क सच्चा है, वहां इश्क ही ईमान बन जाता है। जहां प्रेम की गहराई है, वहीं धर्म का अनुभव है। प्रेम की परिपूर्णता ही तो परमात्मा है।

तो तू ठीक कहती है--

"मगर मेरा दोनों में ईमान है"

दो भी मत गिन दो में भी गिनती की तो भूल हो जाएगी। इतना भी फर्क नहीं कि दो कह सको। एक का ही नाम है, जो नहीं जानते वे प्रेम कहते हैं, जो जानते हैं वे धर्म कहते हैं। जो सोए-सोए हैं, वे प्रेम कहते है, जो जाग गये हैं, वे धर्म कहते हैं। बस, यह भाषा का भेद है।

और तुमने जिसे अभी प्रेम की तरह जाना है, अगर तुम उसको ही निखारते चलो, उस पर ही धार रखते चलो, तो वही धर्म हो जाएगा। प्रेम की ऊर्जा ही धर्म की ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती है। प्रेम यूं समझो अनगढ़ हीरा है और धर्म यूं जो जौहरी के हाथ लग गया है, और जिसने उस पर पहलू निकाल दिये, जिसने उस पर चमक दे दी, जिसने उसे रूप दे दिया, रंग दे दिया, आकार दे दिया। जिसके हाथों में पड़कर उसमें जो व्यर्थ था

वह छांट दिया गया और जो सार्थक है वह बचा लिया गया। जो उसके भीतर अप्रगट था, जिसके हाथों में पकड़कर प्रगट हो गया।

उसीको तो हम सदगुरु कहते हैं जो जौहरी है, जिसके हाथ में आदमी पड़ जाए तो सोना हो जाए, मिट्टी छू दे तो सोना हो जाए। वही काम तो यहां किया जा रहा है। तुम्हारे भीतर की मिट्टी को सोना बनाना है। तुम्हारे भीतर जो प्रेम है, उसे धर्म बनाना है। तुम्हारे भीतर अभी जो अंधेरा है, उसको रोशनी में परिवर्तित करना है। इसी कीमियां में जो दीक्षा है, उसको मैं संन्यास कहता हूं।

तू कहती है--

"खुदा को मनाने को मैं सजदे करूं

मगर सनम रूठ जाए तो मैं क्या करूं?"

सजदों की जरूरत ही नहीं है। झूठे खुदाओं के सामने सजदे की जरूरत होती है। झूठे खुदा के सामने प्रार्थनाएं करनी होती हैं। पत्थरों के सामने प्रार्थनाएं करनी होती हैं, पत्थरों के सामने सिर झुकाने होते हैं। सच्चे खुदा से तो प्रेम हो जाता है। सच्चा खुदा तो सनम ही है। और वहां तो रूठना-मनाना, दोनों मजे की बातें हैं। वहां तो रूठने में भी रस है। वहां तो रूठना भी खेल है। वहां तो रूठने में कोई विरोध नहीं है।

तू पूछती है--

"मगर सनम रूठ जाए तो मैं क्या करूं?"

तू भी रूठ! प्रेम की दुनिया में रूठना कुछ बुरी बात नहीं है। प्रेम की दुनिया में रूठना तो कला है।

और ऊषा, स्त्री होकर तू मुझसे पूछती है! यह तो सनम मुझसे पूछेंगे, तू क्या फिकर करती है? यह तो सवाल आदमी के सामने खड़ा होता है। स्त्रियां तो जन्म से ही जानती हैं कि प्रेमी रूठ जाए तो उसको कैसे मनाना। वे तो एक क्षण में मना लेती हैं। उसमें कुछ मामला ही नहीं है। स्त्रियों के लिए मनाना पुरुषों का इतनी सुगम बात है जिसका हिसाब नहीं। असली कठिनाई तो तब खड़ी होती है जब स्त्री रूठ जाती है। तब पुरुष बिल्कुल सूझ-बूझ के बाहर हो जाता है। लाख सिर पटके, कुछ हल नहीं होता समझ में आता उसे। पुरूष से मार-पीट करनी हो तो कर सकता है, मगर मनाना उसको आता नहीं, वह उसके स्वभाव में नहीं। उसकी समझ में ही नहीं आता अब क्या करूं?

और सभी भक्त, जो परमात्मा को प्रेम में देख पाते हैं, स्त्रैण हो जाते हैं। तुमने संतों की वाणी में कई बार यह अनुभव किया होगा कि जब भी वे प्रेम की ठीक-ठीक भाषा में गुनगुनाते हैं, तो अपने तो तत्क्षण स्त्रैण भाषा में में बोलने लगते हैं। कबीर कहते हैंः मैं तो राम की दुल्हनिया। भक्ति तो स्त्रैण है। और जो भक्ति में डूबा, उसे स्त्री की सारी कला आ जाती है। उसे रूठना आ जाता है, उसे मनाना आ जाता है। परमात्मा खुद उसके पीछे चलता है मनाता उसे। कबीर ने कहा--

हरि लागे पीछे फिरैं, कहत कबीर कबीर।

क्या गजब की बात कही है! कबीर जैसे हिम्मतवर लोग ही ऐसी बात कह सकते हैं--हरि लागे पीछे फिरैं, कहत कबीर कबीर; और हम सुनते ही नहीं! कि हम रूठ गये हैं! कि अब मनाओ जी! अब परमात्मा पीछे लगा फिर रहा है कहते-कहते कि कबीर, कहां जाते? अरे, सुनो भी, कहां जाते?

भक्त को भगवान को मनाना नहीं पड़ता, भगवान ही भक्त को मनाता है। भक्ति की ऐसी महिमा है, ऐसी कला है। मगर भक्ति सच्ची होनी चाहिए।

सच्ची भक्ति विश्वास से पैदा नहीं होती, सच्ची भक्ती ध्यान से पैदा होती है। सच्ची भक्ति तो जैसे-जैसे तुम शांत होओ, मौन होओ, तब पैदा होती है। जैसे मौन, जैसे शांत वैसे ही आनंद झरने लगता है। बरखा होने लगती है अमृत की। और उसी अनुभव में परमात्मा से प्रेम जगता है।

अधिकतर लोग तो या तो भय के कारण परमात्मा की पूजा करते हैं कि कहीं नरक में न सड़ना पड़े, या लोभ के कारण, कि स्वर्ग में अप्सराओं का मजा लूटेंगे। बस, ये दो तरह के लोग हैं। इन दोंनो में से कोई भी भक्त नहीं है। भक्त तो तीसरे तरह का आदमी है। भक्त तो प्रेम में है। वहां कहां भय, कहां लोभ? उसे बैकुंठ नहीं चाहिए, उसे स्वर्ग नहीं चाहिए, उसे मोक्ष नहीं चाहिए--उसे कुछ भी नहीं चाहिए। उसे तो इतना बहुत है जो परमात्मा ने दिया है। जरूरत से ज्यादा है; अपनी पात्रता से ज्यादा है, अपनी योग्यता से ज्यादा है। वह तो अनुग्रह के बोझ से दबा जा रहा है।

वह सजदा नहीं करता, वह तो अनुग्रह के बोझ से झुक जाता है, जैसे जब फूल इतने भर जाते हैं, डाली पर कि डाली झुक जाती है। करे क्या! कोई सजदा थोड़े ही कर रही है डाली, मगर इतने फूल लद गये, ऐसी बहार आयी, ऐसा वसंत आया, ऐसे फूल की झाडियां झुक गयीं कि शाखाएं झुककर जमीन से लग गयीं। वैसा ही भक्त भी सजदा करता है। वह सजदा नहीं है, वह प्रार्थना नहीं है, अनुग्रह से झुक-झुक जाता है। इतने फूल खिलते हैं आनंद के, इतना रस भर जाता है भीतर, इतना बोझिल हो जाता है रस से, झुकना ही पड़ता है। उस झुकने की बात और है। उस झुकने की मजा और है।

वही सच्ची प्रार्थना है, जो आनंद से उत्पन्न होती है।

जहां मांग है, वहां प्रार्थना नहीं। जहां धन्यवाद है, मात्र धन्यावद, वहीं प्रार्थना है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

जो है, उसमें पूरे के पूरे लीन होना समाधि है

16 जुलाई 1980; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः भगवान,

गुमनाम मंजिल दूर है सबेरा

कोई संगी न साथी मैं हूं अकेला

दुनिया की रीत क्या है? भला ऐसी चीज क्या है?

जिसके बिना यह नाव चलती नहीं।

उल्फत का गीत क्या है? जीवन संगीत क्या है?

जिसके बिना यह रात ढलती नहीं!

नदिया की धार कहे, एहसास जीने का मरता नहीं

अपनी अग्नि में जले, ऐसे तो प्यार कोई करता नहीं!

आप ही कहें, क्या कोई रास्ता नहीं?

भगवान स्वरूप, वह मंजिल तो जरूर गुमनाम हैं, लेकिन दूर नहीं। निकट से भी निकट है। निकट कहें, इतनी भी दूर नहीं। तुम ही हो मंजिल, तुम ही हो यात्री। मार्ग भी तुम्हीं, मंजिल भी तुम्हीं। मार्ग पर चलना भी तुम्हें है। तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कहीं दूर नहीं जाना है, अपने में ही डूब जाना है। दूर जाने की धारणा में ही भटकाव है। और मन सदा दूर ही जाना चाहता है। मन की उत्सुकता दूरी में है। जितनी दूर हो चीज कोई, उतनी लुभावनी--दूर के ढोल सुहावने--उतना खींचती मन को, चाहे हाथ कुछ लगे न लगे।

इंद्रधनुष कैसा प्यारा लगता है! पास जाओगे, कुछ भी न पाओगे। हाथ में पानी की बूंदें ही लगेंगी। लेकिन दूर से सारी मणि-मुक्ताएं फीकी पड़ जाएं! दूर से तो ओस की बूंद भी कैसी चमकती है! मोतियों को मात दे दे। पास जाकर भ्रांति टूटती है। मगर आदमी अदभुत है। एक भ्रांति टूटती है तो दूसरी पाल लेता है। दूसरी टूटती है--टूट भी नहीं पाती कि उसके पहले ही तैयारियां करने लगता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। मरण शैय्या पर आखिरी क्षणों में उसने कहा, नसरुद्दीन, मैं जानती हूं कि इधर मैं मरी और उधर तुमने विवाह किया। नसरुद्दीन ने कहा, कभी नहीं, कभी नहीं! बहुत हो चुका, देख लिया जीवन; अब तेरे साथ रहने के बाद और कौन है जिसे मैं प्रेम कर सकूंगा? असंभव। तू गयी कि जिंदगी में अंधेरी रात ही रहेगी, फिर कोई दीया न जलेगा। यह घर फिर संवरेगा नहीं, उजाड़ ही रहेगा, वीरान ही रहेगा। बड़ी ऊंची बातें कीं। पत्नी सुनती रही। स्त्रियां ज्यादा पार्थिव हैं, ज्यादा यथार्थवादी हैं। पुरुष तो आकाश में पंख मारते हैं, लेकिन स्त्रियां कभी जमीन को छोड़ती नहीं।

जब यह सारी कविता बंद हो गयी, नसरुद्दीन की, तो पत्नी ने फिर कहा कि देखो, ये कविताएं रहने दो, मैं भी तुम्हें भली-भांति जानती हूं। तुम बिना पत्नी न रह सकोगे; इतनी भर मेरी विनती है कि मेरे कपड़े, मेरे गहने

नयी पत्नी को मत देना--मेरी आत्मा को बड़ा दुख होगा। नसरुद्दीन ने कहा, उसकी तू फिकर ही मत कर, फरीदा को तेरे कपड़े बनेंगे भी नहीं!

अभी मरी नहीं है पत्नी, लेकिन तैयारियां तो भीतर चल पड़ी हैं। बाहर शहनाई थोड़ी देर से बजेगी, भीतर तो बजने लगी है। भीतर तो राह ही देखी जा रही है कि कब मरे? अभी एक सपना टूटा नहीं है, दूसरा संजोया जा रहा है। दो सपनों के बीच में क्षण भर को हम जगह भी नहीं देते, क्योंकि उसी जगह में जागरण घट सकता है। सपने के ऊपर सपने दौड़ाएं चले जाते हैं।

भगवान स्वरूप, मंजिल का नाम तो नहीं है, क्योंकि तुम्हारा कोई नाम नहीं है। तुम आए पृथ्वी पर, अनाम आए। कोई बच्चा नाम लेकर आता नहीं। नाम तो हम दे देते हैं, काम-चालाऊ है--सभी नाम काम-चलाऊ हैं।

एक छोटा सा बच्चा अपनी मां से पूछ रहा था कि मेरे जन्म के पहले तू मुझे जानती थी कि नहीं? उसने कहा, तुझे जन्म के पहले मैं कैसे जानूंगी? तो इस बच्चे ने कहा, यही तो मैं सोचता हूं, कि मेरे जन्म के पहले जब तू मुझे जानती नहीं थी, तो तूने पहचाना कैसे, कि मैं ही वह हूं? और नाम का तुझे कैसे पता चला?

कोई बच्चा नाम लेकर थोड़े ही आता है! न कोई पहचान लेकर आता है। पहचान तो हम थोपते हैं। नाम तो हम चिपकाते हैं। काम नहीं चलेगा बिना इसके। इस भीड़ में किसीको बुलाना भी होगा तो मुश्किल हो जाएगा। नाम की उपयोगिता है। सत्य नाम में कुछ भी नहीं। सब नाम झूठे हैं।

तो तुम्हारा नाम क्या है? कुछ भी नहीं। यूं मंजिल तो गुमनाम है, मगर गंता और गंतव्य दो नहीं हैं। यही सब से बड़ी अड़चन है आदमी के सामने। काश, मंजिल दूर होती तो हम कभी के पहुंच गये होते! हमने दूर पह ंचने के तो कितने साधन ईजाद नहीं कर लिये! चांद पर पहुंच गये। जल्दी ही तारों पर पहुंच जाएंगे। दूर पहुंचने में तो हमारी कुशलता का कोई हिसाब नहीं। और कितनी गति से हम पहुंचते हैं! सारी पृथ्वी का चक्कर चौबीस घंटे में लग जाता है। और जल्दी, और तीव्रता के वाहन खोज लिए जाएंगे। अड़चन कुछ और है।

अड़चन यह है कि दूरी बिल्कुल नहीं है। तुम जहां हो, जैसे हो, वैसे ही तुम मंजिल पर हो। मंजिल से तुम इंच भर कभी हटे नहीं। और हम रुकते नहीं। रुके तो पहुंच जाएं। चलने की हमें धुन है, सो हम चलते हैं। अभी भी तुम रास्ता पूछ रहे हो कि रास्ता बताएं। रास्ता का मतलब है कि दूर जाने का कोई उपाय सुझाएं। नहीं कोई रास्ता है। जाना ही नहीं है कहीं तो रास्ता कैसा? कोई सेतु नहीं बनाना है। ठहरो, भागो मत! रुको, दौडो मत, दौड़े कि चूके। भागे कि भटके। जितने तेजी से जाओगे उतने दूर निकल जाओगे--आने से दूर निकल जाओगे।

कोई धन के पीछे दौड़-दौड़ कर दूर निकल गया है। कोई पद के पीछे दौड़-दौड़ कर दूर निकल गया है। कोई परमात्मा के पीछे दौड़-दौड़ कर अपने से दूर निकल गया है। हम सब अपने से दूर कैसे निकल गये? किसी चीज के पीछे दौड़ रहे हैं। मृग-मरीचिकाएं हैं। और साधारण आदमी ही नहीं दौड़ रहे हैं, राम तक स्वर्ण के हिरन के पीछे भाग खड़े हुए। औरों की तो छोड़ो! राम को भी न सूझा कि कहीं सोने के मृग होते हैं! स्वर्ण-मृग के पीछे चले गये। थोड़े झिझके भी जाने में इस कारण नहीं कि सोने का मृग झूठा है, इस कारण कि सीता को अकेला छोड जाएं, जंगल है! तो सीता ने भी आग्रह किया कि जाओ! क्या डरते हो? यह अवसर चूको मत। यह स्वर्ण-मृग खो न जाए।

राम गये स्वर्ण-मृग के पीछे, सीता ने और सहारा दिया कि जाओ। फिर लक्ष्मण को भी भेज दिया। क्योंकि राम ने आवाज दी--झूठी आवाजें! कि बचाओ, मैं मुश्किल में हूं! लक्ष्मण जाना नहीं चाहते थे। तो सीता ने कुछ ऐसी चोट की बात कह दी कि लक्ष्मण तिलमिया गये। अभद्र बात कह दी। लक्ष्मण से कहा कि मुझे पता है, तुम

चाहते यह हो कि किसी तरह राम समाप्त हो जाएं, तो तुम मुझ पर कब्जा कर लो। तुम्हारी मर्जी यही है। तुम क्यो जाओगे? भाई मुश्किल में पड़ा है और तुम बहाने खोज रहे हो कि मेरी रक्षा के लिए रुके हो। जाओ!

यह चोट ऐसी थी कि लक्ष्मण को जाना ही पड़ा।

साधारण आदमी की तो बात छोड़ो, ये राम, लक्ष्मण, सीता, ये भी बस हमारे जैसे ही सोचने के ढंग से भरे हुऐ हैं। फिर तुम किस चीज के पीछे निकल गये हो, यह बात बहुत गौण है। बैकुंठ खोज रहे हो, मोक्ष, निर्वाण खोज रहे, यह बात गौण है। जब तक तुम कुछ खोज रहे हो, भटकते रहोगे। खोजो ही मत, रुको, ठहरो। बिल्कुल ठहर जाओ! चित्त कंपे ही न। जरा भी हिले न। कितने ही स्वर्ण-मृग पुकारें, कितने ही आह्वान आएं, कितने ही चित्त को आकर्षित करने के लिए जाल फेंके जाएं, हिलना मत, डुलना मत। इस अवस्था का नाम ध्यान है। और यही अवस्था जब अपनी परिपूर्णता को पहुंच जाती है तो समाधि है। और समाधि में सब समाधान है। तभी तो उसे समाधि कहते हैं। जिसमें सब समाधान है।

तुम कहते हो--

"गुमनाम मंजिल दूर है सबेरा"

नहीं, दूर जरा भी नहीं। आंख भीतर मोड़ो, सूरज निकला हुआ है। वहां कभी रात हुई ही नहीं। तुम पीठ किये हो। अब सूरज की तरफ पीठ किये हो तो सूरज दिखायी कैसे पड़े? बाहर रात ही रात है। लाख सूरज उगे, रोशनी वहां कभी होती नहीं। और भीतर रोशनी ही रोशनी है। लाख तुम पीठ किये रहो, अंधेरा वहां होता नहीं। जरा मुड़ो, जरा झांको और अभी सुबह हो जाए, इसी क्षण सुबह हो जाए, तत्क्षण सुबह हो जाए। दूरी हो तब तो समय लगे। यात्रा करोंगे, पहंचोगे--पहुंचते-पहुंचते ही पहुंचोगे, बात बनते-बनते ही बनेगी। फिर भटक भी सकते हो। रास्ता पकड़ोगे तो रास्ता गलत भी हो सकता है। रास्ता बतानेवाले धोखेबाज और बेईमान भी हो सकते हैं।

एक आदमी शराब पीकर रात घर लौटा। पहुंच तो गया यंत्रवत अपने घर, क्योंकि हम यंत्र की तरह ही चलते हैं। तुम अपने घर जाते वक्त सोचते थोड़े ही कि अब बाएं मुडूं, कि अब दाए मुंडू! फिल्मी गीत गुनगुनाते रहते हो और कार मुड़ती जाती है, कि साइकिल का हेंडिल मुड़ता चला जाता है। या पैदल ही चल रहे हो तो अपने-आप मोड़ खा जाते हो। अपने घर पहुंच जाते हो।

ऐसे ही शराब तो उसने पी ली थी, मगर यंत्र, पुरानी आदत, पहुंच गया अपने घर। मगर शराब ऐसी छाया थी कि पहचान में न आए कि यह अपना घर है। दरवाजा खटखटाया, आधी रात, उसकी मां ने दरवाजा खोला। वह उससे पूछने लगा कि मेरे घर का मुझे पता बता दो। पैरों पर गिर-गिर पड़े और कहे कि मुझे मेरे घर का पता बता दो, मेरी बूढ़ी मां रास्ता देखती होगी। वह बूढ़ी मां कहने लगी, अरे, पागल हुआ है तू, मैं तेरी मां हूं! तो वह शराबी बोला, देखो मुझे समझाओ मत, मुझे बहलाओ मत, मुझे खिलौने न पकड़ाओ, मेरी मां राह देखती होगी! मुझे मेरे घर का पता बता दो। यहीं कहीं मेरा घर है! पास ही कहीं मेरा घर है! मगर मैं भूल गया हूं। मैं पी गया हूं ज्यादा। मुझे कुछ होश नहीं है। और वह मां कहने लगी, यही तो तेरा घर है, भीतर चल! मगर वह भीतर न जाए। वह कहे, मुझे भीतर जाना नहीं है, पहले मुझे मेरे घर को तो पता मिले!

और तभी दूसरा शराबी आता था--अपनी बैलगाड़ी जोतकर चला आ रहा था। उसने कहा, तू भी किन बातों में पड़ा है! मुहल्ले के लोग भी इकट्ठे हो गये, लोग हंसने लगे, मजाक करने लगे। वह दूसरा शराबी बोला, आ बैठ मेरी गाड़ी में, मैं तुझे ले चलता हूं, तेरे घर पहुंचा दूंगा। मुझे भी अपने घर जाना है--और तेरे ही पड़ोस में मेरा घर है!

अब इस शराबी की गाड़ी में अगर यह बैठ जाए, तो यह दूर निकल जाएगा। यह शराबी भी जा रहा है दूर अपने घर से। इसके ही पड़ोस में इसका घर है, मतलब इसके बगल में ही इसका घर है--वहीं इसका घर है, जहां पहले शराबी का घर है। मगर यहां अंधे अंधों को रास्ता बताने के लिए मिल जाते हैं। तुम पूछो, भर! तुम न भी पूछो तो भी बतानेवाले तैयार हैं।

और क्या-क्या मूढ़तापूर्ण बातें दुनिया में चलती हैं। कैसे-कैसे अजीब काम लोग करते है! इस आशा में कि इससे मंजिल मिल जाएगी, कोई उपवास कर रहा है। जैसे भूखे मरने से मंजिल को पाने का कोई संबंध हो! कोई बाल नोंच रहा है, केश-लुंच किया जा रहा है। जैसे बाल उखाड़ने से कोई मंजिल का पता चल जाएगा। कोई धूनी रमाए बैठा है। किसीने भभूत लगा रखी है। कोई सिर के बल खड़ा है। किसीने जटा-जूट बढ़ा रखे हैं। जैसे इन सारे कामों से मंजिल के पाने का कोई संबंध हो! कोई बैठा माला ही जप रहा है। कोई राम-राम की धुन ही लगाए हुए है। न तुम्हारा कोई नाम है, न उसका कोई नाम हैं, क्या धुन लगाए हो! क्या धूनी रमाए हो!

कोई हवन-यज्ञ कर रहा है। लोग भूखे मरते रहें, यहां घी और चावल और गेहूं आग में फेंके जा रहे हैं--लाखों रुपये के। हजारों यज्ञ पूरे मुल्क में होते रहते हैं। मूढ़ करवाने वाले। शराब में धुत अंधे लोग मार्गदर्शन दे रहे हैं। और उनसे भी महामूढ़ लोग हैं जो उनसे मार्गदर्शन ले रहे हैं। सदियां हो गयीं तुम्हें यही यज्ञ-हवन करते, न दीनता मिटती, न दरिद्रता मिटती, फिर भी मगर तुम वही किये चले जाओगे। और कारण? बुनियादी भूल यहां कि तुम यह सोचते हो कि मंजिल कहीं और है तो कुछ कर के ही पहुंचेंगे। तो कोई विधि-विधान होना चाहिए।

न कोई विधि है, न कोई विधान है। सीधी और सरल-सी बात है। साक्षी मात्र बन जाओ। बैठो अपने भीतर, विचार की प्रक्रिया को देखा! क्योंकि विचार की प्रक्रिया देखने से शांत हो जाती है। जैसे ही तुम विचार की प्रक्रिया को देखने लगते हो, वह शांत होने लगती है। शांत होते-होते अपने-आप क्षीण हो जाती है।

और जब सब निर्विचार हो जाता है तो आ गयी मंजिल। तुम मंजिल पर ही थे, विचारों में भटक गये थे। इसलिए चूक गये थे। अपने ही घर में बैठे-बैठे तुम सपनों में खो सकते हो। दूर-दूर के सपनों में खो सकते हो। तो भूल जाओगे घर को।

इमर्सन बहुत बड़ा विचारक हुआ। और विचारकों के साथ यह झंझट अक्सर हो जाती है। वे विचारों में इतने खो जाते हैं कि उनकी अपने पर पकड़ बिल्कुल छूट जाती है। कभी भूल कर बुद्ध को, महावीर को, पतंजलि को विचारक मत कहना। ये विचारक नहीं थे। हालांकि डॉ. राधाकृष्णनन जैसे लोग भी बुद्ध और महावीर को महान विचारक कहते हैं! राधाकृष्णनन हैं विचारक। तो वे सोचते हैं, कि बुद्ध महान विचारक। तो बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। लेकिन यह प्रशंसा न हुई, निंदा हो गयी। बुद्ध विचारक नहीं हैं। बर्ट्रेंड रसल होंगे विचारक, हीगल और कांट होंगे विचारक, अरस्तू और प्लेटो होंगे विचारक, बुद्ध विचारक नही हैं। निर्विचारक अगर कहना हो तो कह सकते हो, लेकिन विचारक नहीं। ध्यानी हैं, समाधिस्थ हैं, प्रबुद्ध हैं, विचारक नहीं हैं। ये कुछ प्रकाश के संबंध में सोचते नहीं हैं, प्रकाश देखा है, अनुभव किया है--द्रष्टा हैं, विचारक नहीं हैं।

इमर्सन बड़ा विचारक था। एक सुबह--सर्द सुबह है, बर्फ पड़ रही है। उसके नौकरी ने अंगीठी जला दी है कमरे की और वह पास में ही अपनी कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहा है। नौकर कुछ काम से बाहर गया, अंगीठी खूब धधकने लगी; इतने जोर से धधकने लगी और वह इतने पास बैठा था कि उसकी आंच असह्य हो गयी। तो उसे यह न सूझा कि अपनी कुर्सी को पीछे हटा ले। भूल ही गया, विचार में ऐसा खो गया था, एकदम से चिल्लाने लगा कि बचाओ! यह आग मुझे लग जाएगी, बचाओ, नौकर कहां है? नौकर कहीं गया था, पड़ोसी

ने किसीने आवाज सुनी, वह भागा हुआ आया। हालत सच में खराब थी, कुर्सी से लटकता हुआ एक कपड़ा, उसमें तो आग ही लग गयी थी। और इमर्सन उसी कुर्सी पर सिकुड़ा-मिकुड़ा बैठा था। चिल्ला रहा था। पड़ोसियों ने कहा, आप भी हद्द कर रहे हैं, कुर्सी क्यों पीछे नहीं हटा लेते? या कुर्सी से उत्तर जाएं। यह कुर्सी पर ही बैठे हैं और शोरगुल मचा रहे हैं!

इमर्सन ने कहा, यह मुझे ख्याल ही न आया। मैं तो ऐसा घबड़ा गया इस आग लगने के मामले को लेकर कि मुझे होश-हवास न रहे।

विचारों में खो जाओ तो किसको होश-हवास रह जाते हैं?

विचारक यानी बेहोश आदमी।

मगर इमर्सन ने किताबें बड़ी प्यारी लिखी हैं। वेदांत से वह बहुत प्रभावित था। उसने ब्रह्म पर एक बहुत बड़ी कविता लिखी है। और बड़ी ऊंची बातें की हैं ब्रह्म के ऊपर।

ऊंची बातें करना आसान है। जीवन ऊंची बातों से कुछ संबंधित नहीं है। जीवन बहुत सीधा-सादा है। यह कोई गणित बिठालने की बात नहीं है।

मत पूछो कि मंजिल दूर है, सबेरा दूर है, कोई संगी-साथी नहीं है।

करना क्या है संगी-साथी का? भीतर जाना है। वहां कोई संगी-साथी जा भी नहीं सकता। वहां तुम्हें अकेला ही जाना होगा। वहां तुम अकेले ही हो। और यह अच्छा ही है कि वहां संगी-साथी नहीं जा सकते। नहीं तो होटलें खुल जातीं, धर्मशालाएं बन जातीं, बाजार लग जाता। अगर संगी-साथी भीतर जा सकते होते तो पत्नी तुम्हारी बाहर बैठी रहती! बाल-बच्चों सहित भीतर घुस गयी होती। तुम्हें कभी का निकाल के बाहर कर दिया होता कि तुम जाओ घूम-फिर आओ और कहीं। इधर मैं अपने बच्चों को सुलाऊंगी। कि यहीं भोजन बनाएंगे। कि यहीं पिकनिक होगी। अच्छा ही है तुम्हारे भीतर कोई नहीं जा सकता, नहीं तो उतना एकांत भी न बचता। वही तो जगह बची है एक, सौभाग्यशाली हो, नहीं तो कुछ निजी जगह बचती ही नहीं, कोई एकांत बचता ही नहीं। दूसरे अड्डा जमा लेते। जिनके हाथ में लाठी होती वे घुस जाते। वे कहते, हटो जी! तुम बाहर चहलकदमी करो!

मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया। लोगों ने उससे पूछा कि तुम्हारी सेहत का, तंदुरुस्ती का, सौ साल जीने का राज क्या है? उसने कहा, राज है एक। जिस दिन मेरी शादी हुई, मैंने और पत्नी ने यह तय कर लिया कि अगर वह गुस्से में हो, तो मैं बाहर चला जाऊं। उस वक्त मैं गुस्सा न करूं। अगर मैं गुस्से में होऊं, तो वह बाहर चली जाए। उस वक्त वह गुस्सा न करे। और तब से अक्सर मेरी जिंदगी बाहर ही गुजरी है। यह मेरी तंदुरुस्ती का राज है, सेहत का राज है। शुद्ध हवा-पानी, धूप--बाहर ही बाहर घूमता फिरता हूं। क्योंकि घर आया कि वह एकदम बिजली की तरह कड़कती है। मुझे मौका ही नहीं दिया उसने जिंदगी में कि पहले मैं क्रोध कर लेता और उसको बाहर जाना पड़ता।

मगर मैं लाभ लाभ ही में रहा हूं। वह जब देखो तब बीमार है। कभी कमर में दर्द है, कभी पेट में दर्द, कभी सिर में दर्द। और मुझे तो फुर्सत ही कहां है सिर दर्द और कमर दर्द की! मैं तो सारे गांव के चक्कर मारता फिरता हूं।

तुम्हारे भीतर कोई नहीं जा सकता, यह शुभ है। बस, तुम्हीं वहां के मालिक हो। वहां कोई और मालिक नहीं हो सकता।

डायोजनीज को, यूनान के बहुत अदभुत मनीषी को डकैतों ने पकड़ लिया था। नंग-धडंग मस्त आदमी था। महावीर जैसा आदमी यूनान में बस एक हुआ--डायोजनीज। वही मस्ती, वही रंग-ढंग, वही फकीरी और वही आनंद। वैसी ही उसकी सुंदर देह भी थी। महावीर के संबंध में कहा जाता है कि वैसी सुंदर देह का व्यक्ति मुश्किल से कभी होता है। वह नग्न रहने के हकदार थे। इतनी सुंदर देह हो तो नग्न रहने का कोई भी हकदार है। तथाकथित जैन मुनियों को मैं नहीं मानता कि ये हकदार हैं नग्न रहने के। दूसरों को गलत-सलत देह दिखाने का हक किसीको भी नहीं है। किसीकी आंखों में कांटा बनकर चुभने का हक किसीको भी नहीं है। इससे बेहतर है छिपाए रहो अपनी देह को। इनको देखकर और ये आदमी उदास हो जाए--वैसे ही तो आदमी मरा जा रहा है, वैसे ही तो जीना मुश्किल है, और ये मुनि महाराज के दर्शन हो जाते हैं। और जिंदगी पर तुषार पात हो जाता है। कुछ फसल आ रही हो, वह भी गयी। और ओले पड़ गये। वैसे ही तो पिटे हुए हैं! महावीर को हक था नग्न होने का। सौंदर्य हो तो हक होना चाहिए।

डायोजनीज भी नग्न रहा। वैसा ही सुंदर व्यक्ति था। इन डकैतों ने सोचा कि पकड़ कर इसको बेच देंगे, अच्छी बिक्री हो जाएगी, दाम अच्छे मिलेंगे। ऐसा मस्त तगड़ा आदमी था! उसको पकड़ने की कोशिश की--आठ आदमियों को तो पकड़ने में लगना पड़ा, तब बामुश्किल तो उसको पकड़ सकते थे वे। आठ भी डरते थे कि अगर वह हमला बोल दे, तो आठों को भी भागना मुश्किल हो जाएगा। मगर जब वे आठों आए तो उसने कहा, घबड़ाओ मत, नाहक परेशान न होओ, मैं समझ गया तुम्हारा इरादा। पकड़ने आए हो? कोई जरूरत पकडने की नही, मैं साथ हए लेता हूं। तुम मेरे पीछे चलो जी! मैं आगे चलता हूं। कहां चलना है? वे डर के मारे उसके पीछे हो लिये। उन्होंने इस तरह का आदमी नहीं देखा था, थोड़ा खुस-फुस भी करने लगे आपस में कि करना क्या है? मतलब यह तो आगे हो लिया, हम पीछे।

डायोजनीज ने कहा कि तुमको गुलामों के बाजार ले चलना है मुझे बेचने, तुम्हारा इरादा जाहिर है, तुम्हारे विचार मुझे दिखायी पड़ रहे हैं। उन्होंने कहा कि है तो इरादा यही डरते-डरते कहा, कि कहीं मारपीट न खड़ी कर दे। उसने कहा, कोई फिकर न करो, तुम भयभीत न होओ बिल्कुल। तुम इतने डरे लग रहे हो कि मुझे दया आ रही है। मैं चला चलता हूं। ऐसे ही मैं किसी काम का नहीं हूं, चलो तुम्हारे ही काम आ जाऊंगा। मेरी मस्ती है सो कहीं जाती नहीं, जहां रहूंगा वहीं मस्त रहूंगा। और तुम्हें कुछ पैसे मिल जाएंगे बीच में, चलो तुम्हारा भी काम हो गया।

थोड़ा पछताने भी लगे वे लोग कि किस आदमी को पकड़ लिया! इसने तो खूब हमारी लानत-मलामत की--मारा भी नहीं और हमारी मिट्टी भी पलीद कर दी! इसकी तरफ आंख उठाने की हिम्मत नहीं हो रही है। अब इससे यह भी नहीं कह सकते कि भैया छोड़ दो, हमें माफ करों, हम जाते हैं। ये कहीं और डांटे-डपटे नहीं। सो मजबूरी में उसके पीछे चुपचाप गये।

वह पहुंच गया गुलामों के बाजार में। वहां तख्ती पर खड़ा किया जाता है आदमी को औरी उसकी बिक्री होती है। वह तख्ती पर खुद ही चढ़ कर खड़ा हो गया और उसने जोर से आवाज दी कि है कोई, किसीकी हिम्मत, एक मालिक बाजार में बिकने आया है, है कोई गुलाम खरीदने वाला? भीड़ लग गयी, लेकिन लोगों ने कहा, यह भी बड़ा मजा है! वे जो आदमी लाए थे, वे भी दबे हुए भीड़ में छिपे हुए खड़े थे-- यह है कौन, कौन इसको बेचने आया है? कौन मुझको बेचने आएगा? डायोजनीज ने कहा, मैं बिक रहा हूं। और ये बिचारे जो आठ-दस आदमी खड़े हैं, इनको पैसे मिलेंगे। मगर है किसीकी हिम्मत मुझ मालिक को खरीदने की?

सन्नाटा छा गया बाजार में। लेने की तो बहुत लोगों की इच्छा थी, आदमी मजबूत दिखता था, काम का दिखता था। मगर खतरनाक दिखता है। इस तरह से जो चिल्ला कर कह सके कि है कोई खरीदने वाला मालिक को? उसने कहा, एक बात जाहिर कर लेना, समझ लेनाः दाम तुम्हारे जाएंगे; मेरी मालकियत जाएगी नहीं, मालिक तो मैं रहूंगा ही, जहां रहूंगा वहां रहूंगा, मालिक रहूंगा। मेरे भीतर किसी का प्रवेश नहीं हो सकता। वहां मेरा साम्राज्य है और मैं वहीं का मालिक हूं।

यह अच्छा है, भगवान स्वरूप, कि न कोई संगी, न कोई साथी। इससे डरो मत, घबड़ाओ मत! संगी-साथियों का क्या करोगे? अकेले होने का मजा लो। आनंदित होओ। जब क्षण मिल जाएं कुछ, अकेले होने में, डूबने में रसविमुग्ध हो जाओ। गुनगुनाओ भीतर, नाचो भीतर। वहीं मंदिर है। वहीं काबा, वहीं काशी, वहीं कैलाश।

कहते हो--

"दुनिया की रीता क्या है? भला ऐसी चीज क्या है?

जिसके बिना यह नाव चलती नहीं।"

दुनिया तो एक तमाशा है। एक अभिनय, एक रंगमंच। रामलीला समझो। खेल है; खेल के नियम होते हैं। ताश भी खेलते हो तो नियम होते हैं। ताश में भी राजा राजा होता है, रानी रानी होती है, गुलाम गुलाम होता है। ताश में भी एक व्यवस्था रखनी होती है। नहीं तो ताश का खेल नहीं हो सकता। चार आदमी खेलते हैं तो एक समझौता करना होता है। और यहां तो करोड़ों लोग इकट्ठे हैं और खेल चल रहा है। उसमें कई तरह के समझौतो करने होते हैं। वही रीत है।

दुनिया की रीत क्या है, तुम पूछते हो। इतनी-सी है कि यहां इतने लोग हैं तो कुछ समझौते करने होंगे।

मेरे एक अध्यापक थे... अकेले थे, बाल ब्रह्मचारी थे। दर्शन के बड़े ख्यातिनाम व्यक्ति थे। अकेले ही रहते थे। बड़ा बंगला उनको मिला हुआ था। मुझसे उनका लगाव हो गया, बहुत लगाव हो गया। मुझसे बोले कि तुम क्यों होस्टल में पड़े हुए हो... मैं तो विद्यार्थी था। मैंने कहा, और कहा जाऊं? होस्टल के सिवाय विद्यार्थी को रहने की कोई जगह नहीं। उन्होंने कहा, मेरे पास इतना बड़ा बंगला है और मैं अकेला हूं, कुछ अड़चन नहीं, तुम आ जाओ! तुम्हें एक कमरा, दो कमरा, जितने कमरे चाहिए, लो। छः कमरे वाला बंगला मेरे पास है। और एक ही कमरा मेरे लिए काफी है। न पत्नी है, न बच्चे हैं, न कोई है। एक नौकर है, वह भी सुबह आता है, सांझ चला जाता है।

मैं तो नहीं जाना चाहता था, क्योंकि क्यों अकारण किसीके जीवन में व्याघात डालना--वह अकेले रहने के आदी हैं जिंदगी भर से। मैंने बहुत उन्हें मना किया, वे नहीं माने, एक दिन सुबह कार ही लेकर आ गये। अपने नौकर को भी ले आए। जो कुछ मेरे पास थोड़ा-बहुत सामान था, वह सब उन्होंने गाड़ी में डलवा दिया, मुझे बिठाला और कहा कि चलो। मैंने कहा, आपकी मर्जी।

मैं उनके घर पहुंच गया, लेकिन वहां एक दिक्कत शुरू हुई। वह दो बजे रात उठ आते और गिटार बजाते--इलेक्ट्रिक गिटार! अब अकेले रहे थे जिंदगी भर, तो उनको जो करना हो करते रहे होंगे। माना कि कमरा मेरा दूसरा था, मगर इलेक्ट्रिक गिटार कोई दो बजे से बजाए, तो दो बजे के बाद सोना तो मुश्किल ही हो जाए। और मेरी आदत थी कि मैं दो बजे सोता था। दो बजे तक पढ़ता, लिखता, कुछ अपने काम में लगा रहता, दो या तीन बज जाएं तब मैं सोता। इधर मेरे सोने का वक्त हो, उधर उनका गिटार शुरु हो जाए, मैंने कहा, यह मामला तो

मुश्किल हो जाएगा। मैं दो बजे रात तक जगूं और फिर सो न सकूं। और उनका गिटार बजे सो वह छः बजे तक वह बजता ही रहे। छः बजे मैं उठकर फिर घूमने चला जाऊं।

एक दिन तो मैंने बर्दाश्त किया, फिर मैंने कहा कुछ रास्ता निकालना पड़ेगा। अब कोई रीति बनानी पड़ेगी। वह तो सो जाएं शाम को छः बजे, नौकर उनका गया कि वह सोए। अब छः बजे सो जाओगे, दो बजे नींद खुल ही जाएगी। कब तक सोओगे? वह छः बजे सो गये, मैं उनके दरवाजे पर बैठकर इतने जोर से किताब पढ़ूं कि उनको सोने न दूं, करवट बदलें वे। दो बजे तक मैंने किताब पढ़ी। दो बजे उठकर उन्होंने गिटार बजाया। न वे रात भर सोए, न मैं रात भर सोया। दूसरे दिन मुझसे सुबह बोले कि भई, कुछ रास्ता अपने को बनाना पड़ेगा। बनाना ही पड़ेगा! कि ऐसा नहीं हो सकता कि तुम धीरे पढ़ो? मैंने कहा, बिल्कुल हो सकता है। मैं जिंदगी भर धीरे ही पढ़ता रहा हूं, जोर से पढ़ने की जरूरत क्या है! यह तो आपका गिटार पढ़वा रहा है। मैंने उनसे कहा, ऐसा नहीं हो सकता कि बिना इलेक्ट्रिक के गिटार बजे? हो सकता है। कि हो जाए। आपका इलेक्ट्रिक से न जुड़े गिटार, तो मेरे कमरे और आपके कमरे के बीच फासला है--मैं बिल्कुल आखिरी कमरा लेता हूं छठवां, आप नंबर एक में रहें, बीच में चार कमरों का फासला रहेगा, पर्याप्त हैं। आपको गिटार बजाना हो, बजाएं--दरवाजा बंद, खिड़की बंद। और अगर दरवाजा-खिड़की खुला रखना है और इलेक्ट्रिक गिटार बजाना है, तो बजाएं, मुझे कोई अड़चन नहीं, मैं भी यहीं सामने बैठकर दो बजे तक जितनी धूम कर सकूंगा, करूंगा।

समझौता हो गया।

सुबह एक ही दिक्कत बची। दूसरी दिक्कत खड़ी हो गयी। साथ में रहोगे तो दिक्कतें खड़ी होंगी। सुबह से दूध लेने जाना पड़ता। जब तक वह अकेले थे, वह लेने जाते थे; उन्होंने देखा कि अब एक विद्यार्थी मिल गया है, तो वह मुझसे बोले कि ऐसा हो कि तुम अगर सुबह दूध ले आओ। मैंने कहा, मैं जिंदगी में कभी दूध लाया नहीं। कुछ रीत निकालें। उन्होंने कहा, कैसी रीत? मैंने कहा, जो पहले उठे, वह दूध लेने जाए। उन्होंने कहा, यह भी ठीक।

दूसरे दिन न तो मैं उठा दस बजे तक, ने वे उठे दस बजे तक। ऐसा मैं भी उठकर देख लूं, वे भी उठकर देख लें, मैं भी सो जाऊं, वे भी सो जाएं। जब सवा दस बजने लगे तो एकदम घबड़ा कर उठे, क्योंकि उनको तो यूनिवर्सिटी जाना ही पड़ेगा पढ़ाने के लिए। मैं तो न भी गया तो क्या बात है। और यूं भी मैं कम ही जाता था। जब मौज होती जाता, नहीं तो नहीं जाता था।

वह एकदम सवा दस बजे हड़बड़ा कर उठे, बोले, बहुत देर हो गयी। इतनी देर तो कभी नहीं हुई। और मैं दूध ले आता हूं। मैंने कहा, आप अगर पहले ही उठ आते तो मुझे भी इतनी देर तक क्यों पड़े रहना पड़ता! छः बजे से बस उठ-उठकर देखना पड़ रहा है, नाहक की कवायद हो रही है। रीत पक्की रहे कि कल से आप लाएंगे दूध। और नहीं तो फिर यही चलेगा। देंखे कौन कितना सो सकता है? मुझे कोई ऐसी अडचन नही है, मैंने कहा कि बारह बजें, दो बजें, जितना भी होगा देखा जाएगा। आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। आपकी नौकरी मुश्किल में पड़ जाएगी। उन्होंने कहा कि वह तो पड़ ही जाएगी, साफ हो गया मुझे। एक ही दिन में तय हो गया कि सुबह छः बजे मुझे दूध ले आना चाहिए--तुम्हारा भी ले आऊंगा, मेरा भी ले आऊंगा।

रीत तो बनानी पड़ती है फिर। कोई न कोई समझौता करना पड़ेगा। दो आदमी भी साथ रहेंगे तो कुछ रीत बनानी पड़ेगी। और यहां तो इतना बड़ा जगत है! चार अरब आदमी पृथ्वी पर हैं। तो रीत तो बनानी पड़ेगी। इसलिए नियम बनाना पड़ता है, कानून बनाना पड़ता है, व्यवस्था बनानी पड़ती है। बाएं चलो, दाएं मत चलो, एक नियम बनाना पड़ता है, नहीं तो जिसकी जहां मौज हो, बीच रास्ते पर चले--मज्झिम निकाय माननेवाला कि हम तो मध्यमार्गी हैं हम बीच में चलेंगे। कोई कहे, हम दक्षिणपंथी हैं, हम दक्षिण से चलेंगे। कोई

कहे, हम वामपंथी हैं, हम तो बाएं से चलेंगे। चल सकते हो मगर फिर दुर्घटनाएं होंगी। फिर बड़ा मुश्किल हो जाएगा।

एक अमरीकी इंग्लैंड जाना चाहता था; तो उसने जाकर अपना टिकट हवाई जहाज पर बुक करवाया और उसने जानकारी ली कि इंग्लैंड के संबंध में मुझे कुछ सूचनाएं मिल जाएं ताकि मैं तैयारी कर लूं। ताकि वहां एकदम अजनबी न मालूम पडूं। तो उससे सारी सूचनाएं दी गयीं। उन सूचनाओं में यह भी बताया गया कि अमरीका में तो बाएं चलने का नियम नहीं है, दाएं चलने का नियम है, इसलिए यह ख्याल रखना कि इंग्लैंड में बाएं चलने का नियम है। ... इंग्लैंड के हिसाब से भारत में भी बाएं चलने का नियम चल पड़ा। ... तो उसने कहा कि ठीक है। लेकिन जिस दिन उसका हवाई जहाज जाना था उस दिन वह आया--पैर पर पलस्तर बंधा हुआ, हाथ में पलस्तर बंधा हुआ; दो आदमी उसको पकड़कर भीतर लाए, उसने कहा कि मेरी अब जाने की कोई इच्छा नहीं है और मेरा टिकट केंसिल किया जाए। मगर आपकी यह हालत कैसे हुई? जांच-पड़ताल के दफ्तर के अधिकारी ने पूछा, आपकी यह हालत कैसे हुई? उसने कहा कि मैंने सोचा, इंग्लैंड जाने के पहले थोड़ा अभ्यास तो कर लूं। क्योंकि वहां बाएं चलना पड़ेगा और यहां दाएं चलने का जिंदगी भर अभ्यास रहा, एकदम से अभ्यास छूटेगा कैसे? सो मैं यहां न्यूयार्क में कार को बाएं चलाने का अभ्यास कर रहा था, उसमें यह गति हुई।

अब न्यूयार्क में अभ्यास करोगे तो यह गति होने ही वाली है।

नियम का इतना ही अर्थ होता है कि एक समझौता है, उस समझौते के अनुसार चलना। संन्यासी यह जानकर चलता है कि यह समझौता है। और संसारी यह मानकर चलता है कि यह कोई सत्य है। बस, इतना ही फर्क है। और कुछ फर्क नहीं है संन्यासी और संसारी में। संसारी मानता है, यह यर्थाथ है। जैसे बाएं चलने का कोई सार्वभौम अर्थ है। जैसे कोई यह सार्वकालिक नियम है। जैसे कोई इश्वर-णीत नियम है। एक धम्मो सनंतनो। वह मानता है, यह कोई धर्म का नियम है, सनातन धर्म का नियम है; कि बाएं नहीं चले तो नर्क में पड़ोगे। ऐसा कुछ भी नहीं है। सिर्फ काम-चलाऊ व्यवस्था है।

संसारी प्रत्येक चीज को गंभीरता से ले लेता है। बस, वहीं भूल हो जाती है। संन्यासी किसी चीज को गंभीरता से नहीं लेता। प्रत्येक चीज उसके लिए अभिनय है। समझता है उपादेयता, उपयोगिता, मगर कुछ उस उपयोगिता से बंधता नहीं है। खेल है। शतरंज का खेल है। मान लिया तो हाथी हैं, घोड़े हैं, वजीर हैं, राजा है। बस, मानने की बात है। और मानना पड़ेगा, क्योंकि तुम अकेले नहीं हो। अगर तुम अकेले होते पृथ्वी पर तो किसी रीति-नियम की कोई जरूरत न थी। जहां मौज आती वैसे ही चलते। जो करना होता वह करते। कोई अड़चन न थी। लेकिन हम अकेले नहीं हैं। इसलिए स्वभावतः व्यवस्था बनानी पड़ेगी। सुगमता के लिए।

तुम पूछते हो--

"दुनिया की रीत क्या है? भला ऐसी चीज क्या है?

जिसके बिना यह नाव चलती नहीं।"

इस नाव को चलाना है, बहुत सी नावें और भी चल रही हैं, इसलिए तुम अपनी बिल्कुल मर्जी से न चला सकोगे। तुम्हें दूसरी नावों का ध्यान रखकर चलना पड़ेगा। और इसमें कुछ हर्जा नहीं है। इतना बोध भर बना रहे कि यह बात सिर्फ अभिनय है। इससे ज्यादा गंभीरता से मत लेना।

"उल्फत का गीत क्या है? जीवन संगीत क्या है?"

यह तो तुम्हें पता न चलेगा जब तक तुम स्वयं में थिर न होओगे। स्वयं में ठहरोगे, तो तुम्हें जीवन के संगीत का पता चलेगा; तो ह्रदय की वीणा बजेगी। और स्वयं में ठहरोगे तो तुम्हारे भीतर से प्रेम का नाद

उठेगा। अभी तुमने जिसे प्रेम कहा है, वह प्रेम नहीं है, अभी तो वह रीति-नियम की ही बात है। पिता हैं तो इनको प्रेम करो, मां हैं तो इनको प्रेम करो, भाई हैं तो इनको प्रेम करो, पत्नी है तो इसको प्रेम करो, पति है तो इसको प्रेम करो, करना हो कि न करना हो लेकिन करो--एक व्यवस्था है।

लेकिन जिस दिन तुम अपने भीतर ठहरोगे, उस दिन एक नये प्रेम का अंकुरण होगा। वह व्यवस्था के बाहर है। बेशर्त है। इसको करो, उसको करो, ऐसा नहीं है, तुम प्रेमपूर्ण हो जाते हो। तुम जिससे भी संबंधित होओगे, उस संबंध में ही प्रेम होगा। तुम पत्थर भी छुओगे तो तुम्हारे हाथों में प्रेम ही होगा। तुम मिट्टी भी छुओगे फिर तो जैसे सोना हो उठेगी। तुम्हारा प्रेम जीवन को रूपांतरित करने लगेगा।

पूछते हो--

"उल्फत का गीत क्या है?"...

प्रेम का गीत क्या है?

... "जीवन संगीत क्या है?

जिसके बिना यह रात ढलती नहीं!"

यह रात उसके बिना ढलेगी ही नहीं। अपने में झांको, वहां से सब उठेगा--प्रकाश भी, संगीत भी, काव्य भी, प्रेम भी, परमात्मा भी। रात मिट जाएगी। एकदम मिट जाएगी। अंधेरा तिरोहित हो जाएगा; सब ज्योतिर्मय हो जाएगा। मृत्यु मिट जाएगी; सब अमृत हो जाएगा। और तुम्हारे भीतर क्या-क्या नहीं है! लेकिन भीतर तो हम खोदते ही नहीं, खोजते ही नहीं। दौड़ते फिरते हैं बाहर! ऐसी आपाधापी मचा रखी है! एक क्षण विराम नहीं। एक क्षण विश्राम नहीं।

मैं तुम्हें सिर्फ विश्राम सिखाता हूं, विराम सिखाता हूं। यहां और कुछ नहीं सिखाया जा रहा है। यहां इतना ही सिखाया जा रहा है कि भागदौड़ खेलकूद से ज्यादा नहीं है, जीवन का सत्य ठहरने में है, विश्राम में है।

आश्रम का अर्थ ही मौलिक रूप से यही हैः जहां विश्राम किया जा सके। जहां विश्राम को अनुभव किया जा सके। वहां अगर श्रम भी करो तो भी विश्रामपूर्ण ही होगा।

तुम यहां संन्यासियों को काम करते देख सकते हो। तुम जितना काम करते हो घर, उससे ज्यादा काम करते हैं यहां वे, लेकिन उनके चेहरे पर तुम्हें विश्राम मिलेगा। उनके पैरों में तुम्हें नृत्य का अनुभव होगा। बोझ नहीं है। कोई भार नहीं है। एक निर्भारता है। एक हल्कापन है। जिसने भीतर के विश्राम को जानना शुरू किया, उसके बाहर का श्रम भी विश्रामपूर्ण हो जाता है।

"नदिया की धार कहे, एहसास जीने का मरता नहीं"

इसीलिए नहीं मरता एहसास जीने का कि तुम सच में ही कभी मरते नहीं हो। इसलिए एहसास नहीं मरता। हालांकि तुम रोज लोगों को मरते देखते हो--आज यह मरा, कल वह मरा, लेकिन फिर भी भीतर कोई तुमसे कहे चला जाता है कि तुम नहीं मरोगे। और यह बात झूठ नहीं है। अंतर्तम में तुम्हारे यह बात कभी बैठती ही नहीं, कि मैं और मरूंगा। क्योंकि कोई भीतर मरता ही नहीं। यह बाहर से तुम लोगों को देखते हो कि अ मर गया, ब मर गया, स मर गया-यह बाहर से घटी घटना है, जो तुम्हें दिखायी पड़ रही है, भीतर न तो अ मरता है, न ब मरता है, न स मरता है। सिर्फ मकान छोड़कर चले गये। दूसरा मकान बसा लिया होगा। या, अगर सौभाग्यशाली रहे हों, तो अब आकाश ही उनका भवन हो गया होगा। अब आकाश के विराट महल में--गगन-महल में--... फकीरों ने कहा है, कबीर ने कहा हैः गगन-महल, सुन्न महल... अब वे शून्य महल में समा गये होंगे। और अगर अभागे होंगे, तो अभी फिर लौट आए होंगे किसी दूसरी कुटिया में मिट्टी की। फिर किसी झोपड़े

में, फिर किसी झुपड़-पट्टे में फिर जिंदगी गुजरेगी। ऐसे कई बार तुम आ चुके, जा चुके। अगर अपने को जानकर जाओगे तो फिर आना नहीं पड़ेगा। फिर आवागमन की समाप्ति है।

"नदिया की धार कहे, एहसास जीने का मरता नहीं"

तुम्हारे भीतर कुछ मरता ही नहीं। इसलिए एहसास बना रहता है। इतनी मृत्यु को घटते देखते हो, फिर भी तुम्हारा एहसास नहीं टूटता। नदी रोज सागर में गिरती है, फिर भी जानती है कि जीएगी। क्योंकि रोज बादल फिर पानी को भर जाते हैं, फिर बरसा जाते हैं, फिर पहाड़ों से जलधाराएं उतर आती हैं--नदी बहती ही रहती है, बहती ही रहती है; सतत है, सातत्य है।

और नदी तो कभी सूख भी जाए, लेकिन भीतर चेतना की धार कभी नहीं सूखती, बहती ही रहती, अनंत है। उसी चेतना की धार को आत्मा कहा है, परमात्मा कहा है। नाम ही हैं ये सब। नामों के भेद हैं। नामों में मत उलझ जाना। जो मर्जी हो, कह लेना।

कहते हो--

"अपनी अग्नि में जले, ऐसे तो प्यार कोई करता नहीं!"

तभी तो तुम जान नहीं पाते प्रेम को। अहंकार जब अग्नि में जल जाता है घास-फूस की भांति, तभी उस निर-अहंकारिता में से प्रेम का जन्म होता है जो शाश्वत है। उस प्रेम का जिसको जीसस ने परमात्मा का पर्यावाची कहा है।

अभी तो तुम जिस प्रेम को प्रेम कहते हो, वह प्रेम नहीं है, लेन-देन है, सौदा है, दुकानदारी है, छीना-झपटी है। दूं काम और ज्यादा ले लूं। कितना फायदा हो जाए, इसकी फिकर लगी हुई है। अभी तो तुम कुछ को कुछ समझे बैठे हो।

एक कवि एक वृक्ष के पास आकर बगीचे में रुका। काव्य से ह्नदय गदगद हो रहा था उसका। सुबह-सुबह थी, पक्षी गीत गाते थे, कोयल पुकारती थी, बड़ी महक थी बगिया में। उसने वृक्ष के पास खड़े होकर कहा कि हे वृक्ष, हे आम के वृक्ष, काश! तू बोल सकता होता तो तू क्या कहता? पास ही माली पानी सींच रहा था, हंसा और उसने कहा, अगर यह बोल सकता होता तो कहता कि महराज, मैं आम का वृक्ष नहीं, अमरूद का वृक्ष हूं!

तुम जिसे प्रेम कह रहे हो, वह प्रेम है ही नहीं। आम का वृक्ष ही नहीं, अमरूद का वृक्ष है। मगर तुम उसे प्रेम कहे चले जाते हो, बड़ी कविताएं रचते रहते हो। तुम अपनी कविता की धुन में यह भी नहीं देखते कि किस चीज को क्या कह रहे हो! किस चीज को तुम प्रेम कहते हो? कामवासना को? वह जरा में मर जाती है। उसके मरते देर नहीं लगती। वह जरा में घृणा में बदल जाती है। जिससे प्रेम था और जिससे तुमने कहा था, तेरे लिए मर जाऊंगा, उसीको मारने के लिए तत्पर हो जाते हो। जरा सी बात हो जाए तो। जरा सी झंझट हो जाए। जिसके लिए जीवन दे सकते थे, उसका जीवन छीनने को तैयार हो जाते हो। क्या खाक प्रेम!

और छीना-झपटी है। प्रेमी सोचता है कि मुझे प्रेम नहीं मिल रहा है, प्रेयसी सोचती है, मुझे प्रेम नहीं मिल रहा है। यही तो सारी दुनिया में प्रेमियों का झगड़ा है, उपद्रव है। कलह ही कलह है। क्या कारण है कलह का? दोनों मांगते हैं। दोनों छीनना चाहते हैं। और दोनों में से कोई देने को राजी नहीं--वहे करें भी क्या, दें भी कहां से? हो तो दें! भीतर पैदा ही नहीं हुआ तो दें क्या खाक! भिखमंगे हैं दोनों। एक-दूसरे के सामने पात्र फैलाए हुए हैं। एक-दूसरे से मांग रहे हैं कि दे दो, मेरा पात्र भर दो। और यह देख ही नहीं रहे कि दूसरे के पास कुछ होता तो उसने अपना पात्र हमारे सामने क्यों फैलाया होता?

सिर्फ बुद्धों के अतिरिक्त प्रेम को किसीने जाना नहीं। सिर्फ जिनों के अतिरिक्त प्रेम को किसीने जाना नहीं। और उस प्रेम में तो, एक चीज तो जलानी ही होगी, अहंकार तो जलाना ही होगा। अहंकार प्रेम का दुश्मन है। जहां अहंकार है, वहां प्रेम पैदा ही नहीं होता। अहंकार तो मृत्यु है प्रेम की। वह तो कब्र है प्रेम की। और हम सब अहंकार से भरे होते हैं। हमारा प्रेम भी अहंकार का ही प्रदर्शन होता है।

इस प्रेम को तुम प्रेम कहना बंद करो। इस अहंकार को जलने दो। यह अहंकार बिल्कुल राख हो जाए। तुम जब मिट जाओगे तब तुम्हारे भीतर से प्रेम का आविर्भाव होगा। तुम जब नहीं होओगे तब प्रेम होगा। जब तक तुम हो तब तक प्रेम नहीं। फिर जो प्रेम पैदा होता है, वह न तो मेरा है, न तेरा है। फिर जब प्रेम पैदा होता है तो उसकी कोई सीमा नहीं है। उसका कोई पारावार नहीं है। वह उतना ही अनंत है जैसा आकाश। उतना ही विराट है जितना परमात्मा। उस प्रेम से ही तृप्ति मिल सकती है। उस प्रेम के अतिरिक्त कोई तृप्ति नहीं है। फिर जीवन में नृत्य है, गीत है, उत्सव है।

योग प्रीतम के ये शब्द तुम्हारे काम पड़ेंगे--

जो बात हृदय में प्रीत-पगी
उसको अधरों तक आने दो
जो गीत जगा है अन्तस में
वह छंदों में बह जाने दो
उर मीत मिलन से आनंदित
निशिदिन नर्तन में लीन रहे
होले-होले से कानों में
मीठी-सी बजती बीन रहे
उमड़े बादल, चमके बिजली
जब प्राणों में मधु-वर्षण हो
मन तो रस भीगा रहता है
तन को भी डुबकी खाने दो
यदि स्वर्ग उतर आए भू पर
पृथ्वी के पांव थिरकते हैं
भगवान बिहंसता हो भीतर
संसृति के प्राण चहकते हैं
यदि अंतश्चेतन हर्षित है
तन के भी पर लग जाते हैं
दोनों वरदान विधाता के
इनको समरस हो जाने दो
यदि भीतर व्यक्ति विनंदित हो
सौंदर्य झलक ही जाता है
यदि उर हो रस से आपूरित
आनंद छलक ही आता है

अंदर बाहर में भेद कहां
सबमें उसका ही दर्शन है
जल-मिश्री से हैं घुले-मिले
दोनों पर मस्ती छाने दो
जो बात हृदय में प्रीत-पगी
उसको अधरों तक आने दो
जो गीत जगा है अन्तस में
वह छंदों में बह जाने दो

दूसरा प्रश्नः भगवान,

आपने पूर्व प्रवचन में अभिव्यक्त किया कि श्री महावीर को संन्यस्त होने में उनके माता-पिता एवं ज्येष्ठ भ्राता ने विरोध किया और श्री महावीर मान गये, धैर्य रखा। यही समस्या हमारे साथ हो तो उसका समाधान बताने की अनुकंपा करें!

तेजराम मीणा, वही समस्या तुम्हारे साथ नहीं हो सकती। तुम महावीर नहीं हो। इसलिए वही समाधान भी तुम्हारे काम का नहीं हो सकता। तुम चालबाजी करना चाहते हो; तुम धोखा देना चाहते हो।

तेजराम मीणा हैं गंगापुर सिटी, राजस्थान से। पक्के मारवाड़ी मालूम होते हैं। तुम अपनी मारवाड़ी कुशलता का उपयोग कर रहे हो। महावीर मारवाड़ी नहीं थे।

पहली तो बात, जब महावीर को उनकी मां ने, उनके पिता ने, या उनके बड़े भाई ने कहा कि हमारे रहते, जीते तुम संन्यास की बात ही मत उठाना, तो वह फिर किसीसे पूछने नहीं गये, जैसा तुम मुझसे पूछने आए हो। भेद तो वहीं से शुरू हो जाता है। वह किसीसे पूछने नहीं गये।

मैं रायपुर में था, एक युवक ने आकर मुझसे पूछा कि मैं शादी करूं या न करूं? मैंने कहा, तुम कर ही लो। उसने कहा, आपने क्यों नहीं की फिर? जब मुझे आप करने को कहते हैं तो आपने क्यों नहीं की? मैंने उससे कहा कि देखो, मुझमें तुममें फर्क है। मैं किसीसे पूछने नहीं गया। तुम किसीसे पूछने आए हो। वहीं से फर्क शुरू हो गया। अगर तुम्हें करनी ही नहीं है तो तुम पूछने भी नहीं आओगे।

पूछने का मतलब ही क्या? कि तुम दुविधा में हो।

महावीर को दुविधा ही खड़ी नहीं हुई। महावीर की मां ने कहा कि मेरे जीते-जी संन्यास की बात मत उठाना, महावीर एक शब्द नहीं बोले, बात खतम हो गयी। फिर मां मर गयी तो मरघट से घर भी नहीं लौटे, मां की चिता वहां राख हो रही और उन्होंने अपने भाई से कहा कि मां ने कहा था, जब तक मैं जिंदा हूं, संन्यास मत लेना। दो साल मैं चुप रहा। संयोग की बात, अब मां चली गयी। अब तुमसे आज्ञा लेता हूं, तुम बड़े भाई हो, अब आज्ञा दे दो। बड़े भाई ने कहा कि तुझे शर्म नहीं आती? संकोच भी नहीं होता? मां मर गयी हमारी, उसके पहले पिता मर गये--जब पिता मरे, तब तूने मां से पूछा, क्योंकि पहले तुझे पिता ने रोका था; अब मां मर गयी, तू मुझे सताने लगा! इधर हम पर पहाड़ पर पहाड़ टूट रहे हैं मुसीबतों के--पिता चले गये, मां चली गयी--और एक तू है कि तुझे एक ही धुन है--संन्यास! जब तक मैं जिंदा हूं, यह बात ही मत उठाना। फिर भी दुविधा नहीं आयी, महावीर ने कहा कि ठीक। फिर बात नहीं उठाई। उठाई ही नहीं बात!

मगर इसका यह मतलब मत समझ लेना कि महावीर संन्यास से रुके। यह मतलब समझा तो भूल हो जाएगी। महावीर घर में रहते ही संन्यस्त हो गये। महावीर ने ऐसा संन्यास ले लिया जैसा संन्यास मैं तुम्हें दे रहा हूं। इस संन्यास की शुरुआत महावीर ने ही की यूं समझो। वह घर में ही रहते संन्यस्त हो गये। सारा समय ध्यान में बीतने लगा। अपने भीतर ही आंख बंद किये डुबकी मारे रहते। भोजन करने के लिए कोई कह देता तो भोजन कर लेते, कोई न कहता तो चुपचाप बैठे रहते। किसीको सलाह न देते, मशविरा न देते। दो आदमी भी घर में लड़ रहे हों और महावीर बैठे हों तो वह यह भी नहीं कहते कि भाई, लड़ो मत, क्यों झगड़ा करते हो? वह यूं देखते रहते जैसे अपना कुछ लेना ही देना नहीं है। घर में आग भी लगी हो तो महावीर बैठे साक्षीभाव से देखते रहते। जैसे हैं ही नहीं।

मेरी मां यहां मौजूद हैं। बचपन में ऐसा अक्सर हो जाता था। मैं कभी घर के किसी काम आया नहीं। छोटे-मोटे काम भी नहीं आया कि सब्जी ले आओ--कोई बाजार दूर नहीं था, छोटा गांव, एक चार कदम पर बाजार था, लेकिन उतना भी काम मैंने कभी घर का किया नहीं। धीरे-धीरे घर के लोग राजी हो गये थ, करोगे क्या? तो मैं सामने बैठा रहता, मेरी मां सामने बैठी रहती और कहती, घर में कोई दिखायी नहीं पड़ता, किसीको सब्जी लेने बाजार भेजना है। और मैं कहता दिखायी तो कोई भी नहीं पड़ता। मैं सामने ही बैठाता हूं और वह मेरे ही सामने कहती हैः घर में कोई दिखायी ही नहीं पड़ता। कि कोई होता तो किसीको सब्जी लेने भेज देते। मैं कहता, कोई दिखायी पड़ेगा तो मैं बताऊंगा, दिखायी तो मुझे भी नहीं पड़ता।

फिर मैं विश्वविद्यालय गया तो अपनी बूआ के घर रहा। उनको यह थी सनक सवार कि मुझे बिगाड़ दिया है। घर के लोगों ने कोई कभी काम बताया नहीं, कभी काम लिया नहीं, तो मैं बिल्कुल बिगड़ गया हूं। तो उन्होंने सुधारने का जुम्मा लिया। मैंने कहा, बिल्कुल ठीक। तो उन्होंने पहले ही दिन मुझे कहा कि जाओ तुम... आम का मौसम था... तुम आम खरीद लाओ। मैंने कहा, ठीक।

मैं गया बाजार में, मैंने दुकानदार से पूछा कि सबसे कीमती आम कौन से हैं? उसने मुझे देखकर ही समझ लिया कि ये कोई खरीदार नहीं है! सामने आम रखे हैं सब तरह के और ये पूछता है, सबसे कीमती आम कौन से हैं? इसने कभी आम खरीदे भी नहीं हैं। सो उसने मुझे सबसे सड़े-गले जो आम थे, वह बता दिये कि ये सबसे कीमती आम हैं। मैंने कहा कि ठीक। तू दे दे सौ आम। वह भी चौंका, थोड़ा सकुचाया भी, वह संकोच भी उसके चेहरे पर देखा--उसको भी थोड़ी लज्जा लगी कि बिल्कुल सड़े-गले आम! और जो कीमत उसने मुझसे बतायी थी, उतनी कीमत मैंने उसको दे दी, कोई मोल-भाव किया नहीं, वे सड़े-गले आम लेकर मैं आ गया।

मैंने उनको कहा... मैं बड़ी मस्ती में आया कि सबसे बढ़िया आम खरीदकर लाया हूं! मैंने अपनी बूआ को कहा कि ये आम----उन्होंने आम देखे और सिर पीट लिया। मैंने कहा, क्यों? उन्होंने कहा कि ये सड़े-गले आम हैं। ये तो कोई मुफ्त में भी नहीं लेगा। ये तुम काहे के लिए उठा लाए?

मैंने कहा कि मैंने कभी आम खरीदे जिंदगी में? मैंने तो उससे ही पूछा भलेमानस से कि जो भी श्रेष्ठतम आम हों और अच्छे से अच्छे हों और जो सबसे ज्यादा कीमती हों, वे दे दे। उसने ये सबसे कीमती दिये हैं, दाम यह चुकाया है। उन्होंने कहा, इस दाम के आम मैंने सुने भी नहीं। चौगुने दाम ले लिये उसने अच्छे से अच्छे आमों से और ये सड़े-गले आम दे दिये। अब तुम ऐसा करो कि ये... बगल में एक बुढ़िया रहती थी, घर में खाना वगैरह बच जाता तो उसको दे देते थे; कोई था नहीं उसका... तुम ये आम उसको दे दो। मैंने कहा, ठीक है। मैं उस बुढ़िया को देने गया, उस बुढ़िया ने कहा, ये आम घूरे पर फेंक दो। ऐसी चीजें कभी मेरे पास लाना मत! मैंने कहा, जैसी मर्जी! मैं घूरे पर फेंक आया। मैंने कहा, वह बुढ़िया भी लेने को राजी नहीं है।

फिर उन्होंने मुझे सुधारने का प्रयास नहीं किया। कहा, बात ही खतम करो। तुम सुधारे नहीं जा सकते। तुम बिल्कुल बिगड़ चुके हो।

तेजराम मीणा, तुम कहते हो कि "यही मेरी हालत है, जो महावीर की थी।"

यही हालत तुम्हारी नहीं हो सकती। कभी दूसरों का अनुकरण न करना। हां, अगर तुम घर में ही महावीर जैसे संन्यस्त होने की सामर्थ्य रखते होओ तो हो जाओ। मगर पहली तो भूल तुमने की कि तुम मुझसे सलाह ले रहे हो। महावीर ने किसी से सलाह नहीं ली थी।

फिर दूसरी बात यह है कि तुम सिर्फ तरकीब निकाल रहे हो। तुम्हारे घर के लोग विरोध में होंगे, लेकिन क्या तुम्हारी पत्नी ने कहा कि जब तक मैं जिंदा हूं तब तक संन्यास मत लेगा? यह नहीं कहा होगा तुम्हारी पत्नी ने। और क्या तुम सोचते हो जब पत्नी चल बसेगी तब तुम संन्यास ले लोगे?

और फिर मेरे संन्यास में तो कहीं जाना नहीं है, महावीर को तो जंगल जाना था। मेरे संन्यास में तो तुम्हें घर ही रहना है। ध्यान करो, वहीं ध्यान में डूब जाओ, कहीं जाने-आने का कोई सवाल ही कहां है? पत्नी डरती होगी कि तुम संन्यास लोगे, घर छोड़ दोगे। संन्यास की धारणा ही हमारी ऐसी हो गयी है। संन्यास शब्द ही सुनते से प्राण कंपते हैं। पत्नियां डर जाती हैं, बच्चे रोने लगते हैं, जैसे आदमी मर गया। मृत्यु से जैसी घबड़ाहट होती है वैसी संन्यास से होती है। मैं तो संन्यास को नयी व्याख्या, नयी परिभाषा, नया रंग, नया जीवन दे रहा हूं। कहां छोड़ना है, कहां जाना है, वहीं रहना है। इसलिए इस संन्यास में तो कोई विरोध का कारण नहीं है।

और फिर अगर तुम्हें लगता हो कि जैसा महावीर ने धैर्य रखा ऐसा तुम भी रख सकते हो, तो जरूर रख लो। मगर महावीर ने जो किया, वह करना। कि फिर घर में ऐसे हो जाना जैसे हो ही नहीं। बिल्कुल शून्यवत। तो फिर कोई मुझे अड़चन नहीं है। नहीं तो यह होशियारी की बात हो जाएगी।

चंदूलाल मारवाड़ी गंभीर रूप से बीमार थे। बीमार थे, लेकिन इलाज न करवाएं। दोस्तों ने बहुत आग्रह किया कि मित्र, डाक्टर को दिखाओ, ऐसे आखिर कब तक चलेगा? जब मित्रों ने बहुत दबाव डाला तो चंदूलाल ने पूछा, यह बताओ कि डाक्टर को दिखाने में खर्च कितना हो जाएगा? मित्रों ने हिसाब लगा कर बताया कि यही कोई एक सौ रुपये खर्च होंगे। चंदूलाल बोले, ऐं, सौ रुपया! अच्छा, और यह बताओ कि मरने के बाद अर्थी वगैरह में कितना खर्च होगा? मित्रों ने फिर हिसाब लगाकर बताया कि यही कोई पचास-साठ रुपये खर्च होंगे। चंदूलाल बोले, ठीक है, तब तो मरने में ही फायदा है। कम से कम चालीस रुपये तो बचेंगे।

तुम मारवाड़ी हिसाब से मत चलो। महावीर मारवाड़ी नहीं थे। ये किसी हिसाब के कारण नहीं रुक गये थे। तुम हिसाब-किताब बिठा रहे होगे, तुमने सोचा कि यह तो अच्छा बहाना मिला, मुफ्त में महावीर हुए जा रहे हैं। न हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाए। तेजराम मीणा महावीर हो गये। गंगापुर सिटी में कभी महावीर हुए हैं!

गांव के लोग एक बार चंदा लेने चंदूलाल मारवाड़ी के पास आए। वैसे तो वे जानते थे कि चन्दूलाल उन्हें कुछ न देगा, लेकिन उन्होंने सोचा, आखिर कोशिश करने में हर्ज क्या है? चंदूलाल बोले, चंदा तो जरूर दूंगा, दोस्तो, मगर यह बात गुप्त ही रहे तो अच्छा होगा, क्योंकि मैं गुप्तदान में विश्वास करता हूं। गांववाले बोले, बिल्कुल चिंता न करें चंदूलाल जी, यह बात बिल्कुल गुप्त रहेगी। चंदूलाल ने पूछा, अच्छा कितने का चेक दे दूं? गांववाले तो चौंक गये। बोले, एक सौ एक रुपये का दे दीजिए। चंदूलाल मारवाड़ी ने चेक तो काटकर दे दिया, लेकिन जब गांववालों ने देखा तो बोले, श्रीमान जी, इसमें आपने दस्तखत तो किये ही नहीं! चंदूलाल बोले, वह

तो मैंने पहले ही कहा था कि भाइयो, मैं गुप्तदान में विश्वास करता हूं। मैं नहीं चाहता कि लोगों को पता चले कि यह दान मैंने दिया है। दस्तखत मैं कभी नहीं करूंगा।

ऐसी होशियारी अगर बिठा रहे होओ, कि मुफ्त में चलो महावीर भी हो गये, घर के घर में रहे, तो तुम्हारी मौज! लेकिन तुम मारवाड़ी ही रहे फिर, महावीर न हुए। महावीर और मारवाड़ी का क्या मेल बैठेगा? होशियारियां न करो!

तुम पूछते हो, "आपने पूर्व प्रवचन में अभिव्यक्त किया कि श्री महावीर को संन्यस्त होने में उनके माता-पिता व ज्येष्ठ भ्राता ने विरोध किया और श्री महावीर मान गये, धैर्य रखा। यही समस्या हमारे साथ हो तो उसका समाधान बताने की अनुकंपा करें!"

यह समस्या तुम्हारे साथ हो ही नहीं सकती। पहले तो यह संन्यास भिन्न, तुम भिन्न, समस्या कैसे समान हो सकती है! कभी भी भूल कर महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट, इनको अपने ऊपर आरोपित करने की कोशिश न करना। नहीं तो तुम चूकोगे, बुरी तरह चूकोगे। और मन बड़ा चालबाज है--मन सदा से मारवाड़ी है। मन ऐसे हिसाब निकाल लेता है, ऐसी तरकीबें निकाल लेता है, बचने के ऐसे उपाय निकाल लेता है कि लगते बड़े शोभापूर्ण, सुंदर, मगर होते बड़े कूटनीति के और राजनीति के।

एक आदमी उल्लू खरीदने गया। उल्लू बेचनेवाले और कोई नहीं थे, थे चंदूलाल मारवाड़ी। उनके पास दो उल्लू थे। चंदूलाल ने एक का दाम दस रुपये बताया और दूसरे का बीस रुपये। ग्राहक ने पूछा, क्यों, भाई साहब, उल्लू दोनों एक ही समान हैं, फिर दाम में फर्क क्यों? चन्दूलाल ने कहा, जी, एक उल्लू है और दूसरा उल्लू का पट्ठा। उससे भी पहुंचा हुआ है। इसके दाम दुगुने लगेंगे।

होशियारी नहीं! समझदारी की बात करो। हां, अगर तुम सोचते हो कि सच में ही वही समस्या है, तो वही समाधान है। फिर घर में ही रहते महावीर जैसे हो जाओ। है उतना धैर्य, है उतना साहस? कर सकोगे वैसा? न कर सकते होओ, तो क्या इतना डरना, क्या इतना घबड़ाना! फिर यह संन्यास कोई भगोड़ा संन्यास नहीं है। न पत्नी की कोई हानि हो रही है, न मां की कोई हानि हो रही है, न बच्चों की कोई हानि हो रही है--सच तो यह है, उनको लाभ ही होगा। तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण हो जाओगे, तुम ज्यादा आनंदपूर्ण हो जाओगे, तुम ज्यादा मस्त हो जाओगे, तुम्हारे कारण घर में भी वसंत आ जाएगा। जहां कभी गीत नहीं जगे थे, वहां कुछ गीत जगेंगे। कभी संगीत न उठा था, कुछ संगीत उठेगा। प्रभु की कुछ चर्चा होगी। कुछ भजन होगा, कुछ कीर्तन होगा, कुछ ध्यान होगा। शायद वे भी डूबें। शायद वे भी भीग जाएं। उनका भी ख्याल करो। तुम्हारा संन्यास शायद उनके जीवन में भी एक नयी क्रांति की शुरुआत हो जाए। उन पर भी करुणा करो।

मगर हर हाल में संन्यास तो होना ही चाहिए।

या तो हिम्मत करो और उनसे कहना कि संन्यस्त तो मैं होता हूं। और या फिर दूसरी हिम्मत करो, जो और बड़ी हिम्मत है--ख्याल रखना, दूसरी हिम्मत, महावीर जैसे रहने की हिम्मत बड़ी हिम्मत है। वह कोई महावीर ही कर पाएगा। उतना निरपेक्ष होना बहुत कठिन होगा। घर जलता रहे और तुम देखते रहो!

बंगाल के बहुत बड़े विद्वान हुए ईश्वरचंद्र विद्यासागर। उनको वाइसराय ने उनकी विद्वत्ता के लिए, सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया था। अंग्रेजों के जमाने थे, और कलकत्ता तब राजधानी थी। वाइसराय कलकत्ता में ही होता था, और विद्यासागर भी कलकता में ही थे। तो वाइसराय ने एक विशेष सम्मेलन का आयोजन किया था जिसमें विद्वानों को सम्मानित किया जानेवाला था। विद्यासागर उसमें सर्वाधिक सम्मान पाने के लिए आमंत्रित किये गये थे। रहते वे सीधे-सादे ढंग से थे। उनके कपड़े भी बड़े पुराने तरकीब के थे। मित्रों

ने कहा, इन कपड़ों में वाइसराय भवन जाओगे? भद्द हो जाएगी। अच्छे कपड़े बनवा देते हैं, शेरवानी बनवा देते हैं, शानदार कपड़े पहनकर जाओ, इज्जत का सवाल है। तुम्हारी इज्जत का नहीं, बंगालियों की इज्जत का सवाल है।

पहले तो उन्होंने ना-नुच किया, लेकिन मित्र नहीं माने तो उन्होंने कहा, ठीक है। तो उन्होंने शानदार शेरवानी बनवायी, चूड़ीदार पजामा बनवाया, साफा वगैरह तैयार करवाया, हाथ के लिए बढ़िया उनके लिए छड़ी तैयार करवायी, सोने की मूठ लगवायी, सब तरह की तैयारी हो गयी। कल वाइसराय भवन उन्हें जाना है सम्मानित होने को और आज की सांझ वे घूमने गये थे; बगीचे से निकल रहे थे, उनके सामने ही... रोज घूमने जाते थे और इस मुसलमान को उन्होंने हमेशा देखा था। मीर साहब नाम के एक मुसलमान रोज वहां घूमने आते थे। लखनवी ढंग के आदमी थे। बड़े नफासत पसंद। उनकी चाल भी लखनवी थी। हाथ की छड़ी को घुमाते हुए जिस शान से वे चलते थे, वह देखते बनती थी!

वे आगे-आगे जा रहे थे, पीछे-पीछे विद्यासागर थे। उनका नौकर दौड़ता हुआ आया और उसने कहा, मीर साहब, मीर साहब, जल्दी चलिये, भागिये, घर में आग लगी है! मीर साहब ने कहा, चलता हूं। मगर चाल वही रही। वही लखनवी चाल, वही लहजा, वही हाथ की घूमती हुई छड़ी, न जरा जोर से दौडे, न भागे। नौकर तो समझा नहीं। नौकर तो समझा कि शायद मीर साहब समझे नहीं। उसने कहा, आपने सुना या नहीं? आप किस ख्याल में खोए हैं? घर में आग लग गयी, घर धू-धू करके जल रहा है, इस चाल से चले तो पहुंचते-पहुंचते राख हो जाएगा।

मीर साहब ने कहा, मैंने सुन लिया, लेकिन जिंदगी भर की चाल एक सड़े से घर के जल जाने के लिए बदल दूं? अरे, घर तो अब जल ही रहा है, जल ही जाएगा, चाल को क्यों गंवाऊं? अब जो हो गया हो गया, घर जल गया तो जल गया। और मैं पहुंच भी जाऊंगा तो क्या करूंगा? थोड़ी देर जल्दी पहुंचा, कि थोड़ी देर देर से पहुंचा! लेकिन जीन भर की चाल यूं न छोड़ दूंगा!

विद्यासागर ने सुना तो बहुत चौंके कि एक आदमी यह है कि मकान जल रहा है और यह जीवन भर की चाल नहीं छोड़ रहा है! अपने ढंग से ही चलेगा! उसी चाल से वह चले। विद्यासागर पीछे-पीछे गये कि यह आदमी देखने योग्य है। वहां भीड़ इकट्ठी थी, भीड़ ने घेर लिया मीर साहब को, लोग सांत्वना देने लगे। उन्होंने कहा कि इसमें सांत्वना की क्या बात है? चीजें जलती ही रहती हैं; यहां इस जगत में क्या बचने को है! आज मकान जल रहा है, कल मैं भी जल जाऊंगा। जल जाने दो। नाहक सांत्वना न दो। व्यर्थ की बातें न करो।

जो सांत्वना देने आए थे, वे भी थोड़ा धक्का खाए, चौंके कि यह क्या बात हुई! धन्यवाद भी नहीं, उलटा मीर साहब ने डांटा कि चुप रहो! अब मकान ही जल रहा है, इसमें क्या खास बात है! यह मकान भी जलेगा। ये सब मकान जल जानेवाले हैं। कोई आज जला, कोई कल जला, कोई परसों जला, देर-अबेर की बात है, यहां सब जल जाने वाला है, यहां सब राख हो जाने वाला है। मगर इस कारण कोई मन की शांति क्यों खराब करे! इस कारण कोई मन में बेचैनी लाए! इस कारण कोई अपने जीवन का प्रसाद छोड़ दे!

खड़े रहे वहां, देखते रहे, जैसे और सारे लोग देख रहे थे, जैसे किसी और का मकान जल रहा हो। दूसरे लोग हाय-तोबा मचा रहे थे, मगर मीर साहब खड़े रहे।

विद्यासागर को ख्याल आया--और एक मैं हूं कि सड़ा सा सम्मान वाइसराय के द्वारा किया जा रहा है, जिसमें कुछ खास मामला नहीं, कागज का एक सर्टिफिकेट मिलनेवाला है, और मैं जिंदगी भर के अपने कपड़े बदल कर जा रहा हूं। भाड़ में जाए वह सम्मान! वह दूसरे दिन पहुंच गये अपने उन्हीं पुराने कपड़ो में। मित्रों ने

देखा तो बहुत हैरान हुए; उन्होंने कहा कि हमने कपड़े बनवाए, वे कहां हैं? और यह कहां का सड़ा डंडा लेकर आ गये तुम, बांस, जो लेकर घूमते फिरते हो! ओर हमने सोने की छड़ी बनवायी है और मुट्ठी लगवायी है और हीरा जड़वाया है, उस सबका क्या किया? उन्होंने कहा, छोड़ो जी बात; बकवास छोड़ो! कल एक मुसलमान ने मुझे ऐसा... ऐसा दचकोरा, रात भर सोने नहीं दिया! मैं तक घबड़ा रहा था, उसका मकान जल रहा था, मैं घबड़ा रहा था, कि क्या करूं, क्या न करूं! और वह एक शानदार आदमी था!

तुम अगर इतने शानदार आदमी हो, तेजराम मीणा, अगर इतने तेजस्वी हो जैसा कि नाम है तुम्हारा, तो फिर कोई बात नहीं। मगर फिर घर में आग लगे, तो मौज से देखते रहना। फिर घर में यूं रहो जैसे सराय में हो। तो फिर तुम्हें कोई अड़चन नहीं है। फिर तुमने महावीर की बात को समझ लिया।

मगर अगर उतनी हिम्मत न हो तो नाहक महावीर का आवरण मत ओढ़ो। आने को छिपाओ मत, बचाओ मत, तरकीबें न खोजो। नहीं तो लोग अच्छी-अच्छी बातें खोज लेने में इतने कुशल हैं कि उन्होंने सोचा, अब हम क्या करें, जब महावीर जैसा व्यक्ती रुक गया, तो हम भी रुकेंगे। अब जब पत्नी मरेगी... और पत्नी तुमसे पहले मरेगी तुम सोचते हो! आमतौर से पत्नियां पहले नहीं मरतीं।

स्त्रियां पुरुषों से पांच साल ज्यादा जीती हैं, ख्याल रखना। और दूसरी मर्खता पुरुष और करते हैं कि पांच साल कम उम्र औरत से शादी करते हैं। खुद पच्चीस के तो बीस साल की लड़की चाहिए। तो पांच साल वह और पांच साल स्त्रियां ज्यादा जीती हैं। उनकी औसत उम्र पांच साल ज्यादा है, सो दस साल का फर्क। तेजराम मीणा, तुम्हें विदा करके, बाद मे बाई विदा होगी! दस साल बाद।

इसीलिए तो इतनी विधवाएं दिखलायी पड़ती हैं। उसका कारण है। कि पांच साल की एक तो पहले तुम गड़बड़ कर लेते हो। अगर गणित के हिसाब से चलो तो हमेशा पांच साल ज्यादा उम्र की औरत से शादी करना चाहिए। कई लिहाज से फायदे का है। थोड़ी अनुभवी भी होगी, ज्यादा सताएगी भी नहीं, थोड़ा मातृत्व भाव भी उसमें होगा, थोड़ी दया-ममता भी करेगी--और तुम्हें पहले विदा न करेगी। साथ ही साथ करीब-करीब जाना होगा। साथ ही साथ जाना अच्छा है। स्त्रियां पांच साल ज्यादा क्यों जीती हैं? मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, सब ही अध्ययन में लीन रहे हैं, पता नहीं लगा पाते ठीक से कि मामला क्या है? क्योंकि कहते तो हम यह हैं कि पुरुष मजबूत होता है। तो पुरुष को ज्यादा जीना चाहिए। लेकिन बात यह सच नहीं है।

पुरुष की मजबूती सिर्फ मस्कूलर है। हां, उसके पांस मसल मजबूत होते हैं। हम्माल वगैरह का काम करवाना हो तो उसके लायक हैं वे। बैलगाड़ी में जोतना हो तो जोत दो। उनकी मजबूती उस तरह की है। मगर एक और तरह की मजबूती है जो इससे भी ज्यादा गहन है। वह स्त्री में होती है; सहनशीलता की। टूटती नहीं जल्दी, कितने ही आघात लगें, सह जाती है, पी जाती है, पचा जाती है। पुरुष इतने आघात नहीं सह सकता। प्रकृति ने उसे बनाया मजबूत है, क्योंकि उसे बच्चों को जन्म देना होगा। एक बच्चे को तो जन्म देकर देखो, तेजराम मीणा! तब पता चलेगा। बस, एक में ही छठी का दूध याद आ जाएगा। फिर तुम यह न कहोगेः दो या तीन बस, तुम कहोगे, एक बस। कहां दो और तीन लगा रखे हैं, जिन्दा रहने देना है कि नहीं! एक हो गया तो बहुत।

एक तो नौ महीने पेट में बच्चे को लेकर चलना! जरा कोशिश तो करो, थोड़ा सा पत्थर बांधकर पेट पर एक नौ महीने चलो! कमर झुक जाएगी! उठते-बैठते नहीं बनेगा! सुध-बुध भूल जाएगी खाने-पीने की! होश-हवास गुम हो जाएंगे!

और बच्चे आजकल के तुम जानते ही हो! पेट से ही उपद्रव शुरू कर देते हैं--हड़ताल, घेराव, मुर्दाबाद, जिंदाबाद, क्या-क्या नहीं करते! वैज्ञानिक कहते हैं कि लड़के तो लातें फटकारते हैं। लड़कियां चुपचाप पड़ी रहती हैं। स्त्रियों को अनुभव हो जाता है दो-चार बच्चों के बाद कि बच्ची है भीतर कि बच्चा है। बच्चा तो वहीं से राजनिति शुरू कर देता है--लातें मारेगा, करवटे बदलेगा, शोरगुल मचाएगा। हरकतें शुरू कर दीं उसने। वह दिल्ली जाने की कोशिश में लग गया। लड़कियां चुपचाप रहती हैं।

मां को अनुभव होने लगता है कि लड़की है पेट में लड़का है। लड़कियां जरा शांत रहती हैं।

और फिर नौ महीने के बाद ही मामला हल नहीं हो जाता। फिर उनको रात लेकर सोओ! बच्चे भी एक से एक गजब के होते हैं, कि दिन भर तो सोएं और रात भर जगें! पता नहीं कौन सा गणित उनका है! कि दिन में तो खर्राटे लेंगे और रात में किसीको सोने न देंगे।

अलार्म घड़ी की जिसने ईजाद की, उससे किसीने पूछा कि तुमने अलार्म घड़ी क्यों बनायी? उसने कहा, मेरे घर में कोई बच्चे नहीं हैं।

जिनके घर में बच्चे हैं, उनको अलार्म घड़ी की क्या जरूरत! वे तो रात भर सोने ही नहीं देते। फिर चीं-पुकार, फिर चीं-पी, फिर कुछ गड़बड़। मगर स्त्रियां हैं कि कोई उनको अड़चन नहीं। वे रात भर सह लेंगी। और दिन भर काम में लगी रहेंगी, रात भर बच्चों में लगी रहेंगी। फिर भी कोई अड़चन नहीं। फिर भी उनमें एक तरह का सौम्य, एक तरह की सहनशीलता। इसलिए ज्यादा जी लेती हैं।

अन्यथा स्त्रियों के जीवन में तुमने रहने क्या दिया है जीने योग्य? कुछ भी तो नहीं बचने दिया। उनके जीवन को इस बुरी तरह मारा है, इस तरह से काटा हैं, पंगु किया है, कि क्या है उनकी जिंदगी में खुशी? कोई तुम सोचते हो, तेजराम मीणा, तुम्हारा दर्शन करके बहुत आनंद उपलब्ध होता है! बस, अपनी खोपड़ी को धिक्कारती हैं, अपने भाग्य को धिक्कारती हैं, और क्या करें!

चंदूलाल की पत्नी लड़की की शादी की बात रही थी चंदूलाल से कि अब लड़की के लिए कोई लड़का खाजो! और जल्दी करो! चंदूलाल ने कहा कि जल्दी में मत पड़ो। कोई ढंग का परिवार मिले, कोई ढंग लड़का मिले, तो ही काम हो। जल्दी में तो गड़बड़ हो जाएगी। चंदूलाल की पत्नी बोली, अगर जल्दी में गड़बड़ हो जाएगी, अगर मेरे मां-बाप जल्दी न करते, तो तुम जैसे लंगूर से मेरी शादी होती! अरे, जल्दी का ही तो यह है कि तुम जैसे लंगूर को भी पत्नी मिल गयी। नहीं तुमको पत्नी मिलने वाली थी!

तुम्हें रोक रही होगी पत्नी सिर्फ इसीलिए कि स्त्रियों को तुमने अपाहिज कर दिया है, पंगु कर दिया है, उनके हाथ-पैर तोड़ दिए हैं, आर्थिक रूप से उनका जीवन बिल्कुल ही कुंठित कर दिया है। सब तरह से उनको अपने ऊपर निर्भर कर लिया है। और फिर तुम संन्यास की बातें करो! और फिर स्त्री को पता भी नहीं होगा कि मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं, वह सन्यांस कैसा है। उसे तो पुराने ही संन्यास का ख्याल होगा। उसे समझाओ कि यह संन्यास पुराना नहीं है।

यह संन्यास बिल्कुल नयी अभिव्यंजना है। कहीं जाना नहीं, कहीं भागना नहीं, कुछ छोडना नहीं, कुछ त्यागना नहीं, जहां हो ठीक वैसे ही रहना है--रहने की और कला सीख लेनी है। रहने की और एक नयी शैली सीख लेनी है। और उस शैली से तुम्हारी पत्नी को कोई नुकसान होनेवाला नहीं है। और न हो तो उसको यहां ले आओ। उसको समझ में आ जाएगा। उसे तुम यहा लाओगे नहीं। क्योंकि वह आयी तो पहले उसका संन्यास हो जाएगा। स्त्रियों को बात जल्दी समझ में आ जाती है। क्योंकि मेरी बात सीधी-साफ है।

स्त्रियों को वह पुराना संन्यास घबड़ानेवाला है, स्वाभाविक। तुमने कितना अत्याचार किया पुराने संन्यास के नाम पर! पति जीवित रहे और स्त्रियां विधवा हो गयीं। लाखों स्त्रियां विधवा हो गयीं। फिर उनको किस तरह जिंदगी गुजारनी पड़ी--किसीके बर्तन धोने पड़े कि किसीके कपड़े सीने पड़े, कि किसीकी रोटी बनानी पड़ी, कि किसीको वेश्या हो जाना पड़ा। इन सबका पाप किसके ऊपर है? उनके बच्चे अनाथ हो गये। बच्चे तो तुम पैदा कर गये और फिर तुम संन्यासी हो गये! संन्यासी ही होना था तो शादी क्यों की? बच्चे क्यों पैदा किये? बच्चे पैदा कर लिये, पत्नी ले आए, घर बसा लिया, और फिर भाग खड़े हुए! फिर जिम्मेदारी छोड़कर भाग गये। लाखों लोग यह काम करते रहे और हमने इन भगोड़ों की बहुत सम्मान दिया। हमने इनको त्यागी-तपस्वी कहा। कोई मुनि, कोई महात्मा, कोई यति क्या-क्या हमने उनकी पूजा की, अर्चना की, वंदना की! थालियां उतारी, फूल-मालाओं से उनको सजाया, धूप-दीप जलाए--और इनके कारण कितना देश में अनाचार हुआ, कितना व्यभिचार हुआ; और इनके कारण कितने लोग दीन-हीन हुए, इस सबकी कोई चिंता नहीं।

मैं उस संन्यास के बिल्कुल विपरीत हूं।

तुम अपनी पत्नी को, अपने परिवार को मेरे संन्यास की धारणा समझाना। अच्छा हो उनको यहां ले आओ! बजाय महावीर बनने के उन्हें यहां ले आओ। और अगर तुम महावीर ही बनना चाहते होओ, तो फिर हिम्मत करके करना! फिर महावीर ही बन जाना! वह कुछ आसान मामला नहीं है, जैसा तुम सोच रहे हो। तुम यह मत सोचना कि यह बचने की तरकीब मिल गई। और धोखा तुम दोगे तो किसको दोगे? मेरा कुछ हर्जा नहीं है, तुम्हारी जैसी मर्जी! तुम्हें ऐसा करना हो, ऐसा कर लेना।

मगर ध्यान रहे, झूठों से मुक्ति नहीं हो सकती। और अपने को ही धोखा दिया तो बहुत पछताओगे। समय रहते जीवन को रूपांतरित करो, समय को गंवाओ मत, यूं ही गुजर न जाने दो।

आखिरी प्रश्नः भगवान,

सपने भी तो सच होते हैं; आज के सपने कल सच हो जाएंगे। फिर क्यों सपने का मतलब कल्पना या झूठ माना जाता है?

सहजानन्द! सपने सच नहीं होते। कभी-कभी संयोगवशात सच में और सपने में तालमेल हो जाता है, वह बात दूसरी है। मगर वह संयोग की बात है। लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का। सौ मैं निन्यानबे बार तो लगता ही नहीं। एकाध बार लग जाता है। लेकिन इससे कोई तुम धनुर्धर नहीं हो जाते।

मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में प्रसिद्ध कथा है कि वह अपनी पाठशाला के बच्चों को लेकर गांव में नुमाइश भरी थी, वहां गया। नुमाइश में कई तरह के स्टाल थे। एक स्टाल पर तीरंदाजी पर लोग दांव लगा रहे थे। लोग रुपए लगा देते थे, फिर तीर चलाते थे। तीर लग जाता तो दस गुना दुकानदार देता था उनको। जितना भी रुपया लगाते! दस लगाते तो सौ देता। अगर तीर न नगता तो दस रुपये गये। धंधा करने जैसा था। मिलता था दस गुना। सीधा जुआ था।

नसरुद्दीन ने अपने विद्यार्थीयों को कहा कि आओ! जाकर उसने सीधे सौ रुपए लगाए। उठाया तीर, अपनी टोपी संभालकर लगायी, खींचा धनुष और लड़कों से कहा, गौर से देखो! भीड़ लग गयी वहां कि नसरुद्दीन क्या करतब दिखा रहे हैं दुकानदार भी उत्सुक हो गया, लड़के भी भीड़ लगाकर खड़े हो गये--पूरा मदरसा, जहां नसरुद्दीन पढ़ाते थे, सबको ले आए थे। तीर चलाया बहुत दूर निकल गया तीर! जिस स्थान पर भेद करना था, वह तो यहीं रह गया, इनका तीर बहुत आगे चला गया। लोग खिल खिलाकर हंसे। लोगों ने तालियां पीटीं, हू-हल्ला मचाया, हूट किया। नसरुद्दीन ने कहा, चुप रहो, नासमझो! पहले बात तो समझो! एक

सन्नाटा छा गया। दुकानदार भी सन्नाटे में आ गया। नसरुद्दीन ने विद्यार्थियों से कहा, देखा, यह उस आदमी का तीर है जिस आदमी को अपने ऊपर जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास है। इससे पाठ समझो। लोग भी कहे कि बात तो ठीक है। तीर आगे निकल जाए, इसका मतलब जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास है।

नसरुद्दीन ने दूसरा तीर उठाया। चलाया। वह पहुंचा ही नहीं वहां तक। वह चार-छः कदम पर ही गिर गया। वह स्थान तक भी न पहुंचा जहां भेद करना था। फिर खिलखिलाहट आयी, फिर हु-हल्ला मचा। नसरुद्दीन ने कहा, चुप रहो नासमझो! फिर भी नहीं समझे? अपने लड़कों से कहा, बेटे, समझे? यह उस आदमी का तीर है जो अपने आत्मविश्वास से इतना घबड़ा गया कि वह दूसरी अति पर चला गया। हीनता का भाव अनुभव करने लगा। यह उस आदमी का तीर है। अब तो लोगों ने कहा कि बात तो पते की कह रहा है! ऐसे है झक्की, मगर बातें बड़ी पते की कह रहा है।

तीसरा तीर उठाया। तीसरा तीर गया और लग गया ठीक निशान पर। जाकर उसने सौ रुपए अपने उठाए और कहा कि, और हजार रुपये दो। दुकानदार ने कहा कि भई, यह क्या माजरा है? उसने कहा, यह मेरा तीर है। वह पहला तीर तो उस आदमी का तीर था जिसको जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास है। दूसरा तीर उसका था जो हीनता के भाव से भरा है। यह मेरा तीर है।

जो लग जाए, वह मेरा तीर! जो न लगे, उसके लिए कोई रास्ता खोजना पड़ेगा।

कभी तुम्हारे सपने लग जाते हैं--संयोगवशात। ऐसा मत सोच लेना कि सपने सत्य होते हैं। जो होनेवाला था, वह होनेवाला था, यह संयोग की बात है कि सपने से तालमेल खा गया। ऐसा कभी कभार होता है।

चंदूलाल और उनके मित्र ढब्बू जी आपस में बातें कर रहे थे। ढब्बूजी ने बातों ही बातों में पूछा कि मित्र चंदूलाल, एक बात बताओ। क्या तुम्हारे बचपन की कोई आकांक्षा कभी पूरी हुई या नहीं? चंदूलाल बोले, हुई; हुई क्यों नही! अरे, बचपन में जब मास्टर जी मेरे बाल पकड़कर मुझे पीटा करते थे तो मैं एक आकांक्षा करता था कि हे भगवान, काश मेरे सिर पर बाल न होते तो कितना अच्छा होता! और ईश्वर की कृपा से आज मेरे सिर पर एक भी बाल नहीं। चांद ही चांद है। चंदूलाल उनका नाम है। यह आकांक्षा पूरी हो गयी। ईश्वर ने सुन ली। ईश्वर सुनता है, जी, कहनेवाला कोई हो!

अब यूं कभी तीर लग जाए तो बात और।

चंदूलाल तो खुश हैं। क्योंकि बाल बनवाने जाते हैं तो कम पैसे में बन जाते हैं। बाल ही नहीं है तो बनाना क्या है?

कोई उनसे पूछ रहा था कि आपको तकलीफ नहीं होती चांद से? उन्होंने कहा, तकलीफ क्या, फायदा ही फायदा है। सिर्फ एक तकलीफ होती है कि सुबह-सुबह उठकर जब मुंह धोता हूं, तो कहां तक धोना, उसमें भर जरा अड़चन आती है! मतलब कभी-कभी पानी ज्यादा लग जाता है, बस, और कोई हर्जा नहीं है। नहीं तो लाभ ही लाभ है। हानि क्या हो गयी? और ये तो बुद्धिमानी के लक्षण हैं।

अब तुमने किसी सरदार को चांद निकलते देखी? क्या खाक निकलेगी चांद! पहले बुद्धिमानी तो होनी चाहिए। तो चांदवालों ने अपने लिए हिसाब कर रखा है--बुद्धिमानी। स्त्रियों को तुमने चांद निकलते देखी? क्या खाक! मैंने तो एक स्त्री देखी है अपने पूरे जीवन में अभी तक। पूरे भारत में भ्रमण करता रहा, करता रहा कि कोई स्त्री मिल जाए चांदवाली! एक स्त्री। मगर वह भी कुछ खास स्त्री नहीं। मतलब मुछाडियां स्त्री। उसको मूंछें और चांद, दोनों। गजब की स्त्री! संयोग से ही।

सहजानंद, सपने पूरे नहीं होते। कभी कोई सपना तालमेल खा जाता है, इससे नियम मत बनाना, वह अपवाद है। लेकिन लोग तो जो मान बैठते हैं उसके लिए अपवाद भी मिल जाए तो उसको नियम समझ लेते हैं।

दो मित्र आपसे में बात कर रहे थे। एक बोला कि यार, ज्योतिष में तो आपका पक्का भरोसा है! मेरे बेटे का हाथ देखकर ज्योतिषी ने कहा था कि जनाब, आपके बेटे के जीवन में काफी उतार-चढ़ाव है। और अंततः उसकी बात सच निकली। दूसरे ने पूछा, वह कैसे? पहला बोला, अरे, आजकल मेरा बेटा लिफ्ट मैन है। बस, सुबह से शाम तक ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, उतार-चढ़ाव में ही जिंदगी बीत रही है। क्या गजब का ज्योतिषी था! क्या बात कह गया! पते की बात कह गया!

ज्योतिषी इसी तरह की बातें कहते रहते हैं। हिसाब रखते हैं कि कौन सी बातें कहनी चाहिए। हर आदमी से वे बातें कहते रहते हैं। कि आपके जीवन में बड़ा उतार-चढ़ाव है। अब उतार-चढ़ाव किसके जीवन में नहीं होता! ऐसा कोई आदमी देखा है जिसके जीवन में उतार-चढाव न हो? चाहे लिफ्ट मैन हो या न हो, उतार-चढ़ाव तो होगा ही। नहीं तो करोगे क्या जिंदगी में? उतरोगे नहीं, चढ़ोगे नहीं तो करोगे क्या? काम ही क्या है और? उतरो और चढ़ो! ऐसे उलझे रहो। सीढ़ी लगाकर उतरते रहे, चढ़ते रहे। कोई धन की सीढ़ी लगाए है, कोई पद की सीढ़ी लगाए है; कोई, कोई कुर्सी पर चढ़ रहा है, उतर रहा है। तुम नहीं उतरोगे तो दूसरे उतारेंगे। और कभी-कभी तुम नहीं चढ़ोगे, दूसरे चढ़ा देंगे। दूसरे भी खेल देखते हैं उतरने-चढ़ने का। यही तो मुजरा है इस दुनिया का। लोग चढ़ रहे, उतर रहे। और है ही क्या यहां? बस, लहरें ही लहरें हैं।

ज्योतिषी कहते हैं, तुम्हारे हाथ में पैसा तो आएगा, टिकेगा नहीं। किसके हाथ में टिकता है! पैसा टिक जाए तो उसका नाम पैसा? अंग्रेजी में उसको करेंसी क्यों कहते हैं? करेंसी का मतलब चल-चलाव। आया, गया। आयाराम, गयारामः करेंसी का मतलब--ठहरता नहीं। ठहर जाए तो कोई पैसा है? जितना पैसा चलता है, उतनी कोई दुनिया में दूसरी चीज चलती है? एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे से तीसरे हाथ, चलता ही रहता है। न दिन देखे, न रात देखे, चलता ही रहता है। कहां-कहां चलकर तुम्हारे पास आता हैं! कितने पड़ाव, कितनी मंजिलें! तो हर आदमी को ठीक लगती है बात कि बिल्कुल ठीक है।

ज्योतिषी इस तरह की बातें हिसाब में बिठा रखते हैं कि जो सभी के लिए तीर की तरह लग ही जाएं। जिन में से कुछ न कुछ अर्थ निकल ही आए। कि जीवन में तुम्हारे प्रतिभा तो बहुत है, मगर बाधाएं भी बहुत हैं। अब यह किस पर लागू न होगा! हर आदमी मानता है उसके पास प्रतिभा बहुत है। अगर रुक रहा है तो दूसरों के द्वारा दी गयी बाधाओं के कारण रुक रहा है।

अरबी में कहावत है कि परमात्मा जब भी दुनिया में किसीको भेजता है, हर एक के कान में मजाक फूंक देता है। कह देता हैः तुमसे ज्यादा सुंदर, तुमसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति मैंने बनाया ही नहीं। सो हर आदमी भीतर यही धुन लिए आता है दुनिया में, मुझसे ज्यादा सुंदर, मुझसे ज्यादा प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति दुनिया में है ही नहीं। कहता नहीं किसीसे, क्योंकि कहना जरा शोभादायक नहीं मालूम होता, छिपाकर रखता है, मगर भीतर-भीतर यही सोचता है, सिद्ध करने की जीवन भर कोशिश करता है। मगर दूसरे भी इतने हैं बाधाएं डालनेवाले कि किसकी प्रतिभा को टिकने देते हैं!

नहीं, सहजानंद, सपने न तो पूरे होते, न पूरे हो सकते हैं। और सपनों को कल्पना इसलिए कहते हैं कि जो है, उससे तुम्हें चुकाते हैं। क्योंकि तुम उसमें खोए रहते हो जो होना चाहिए और हाथ से वह चूका जाता है, जो है। और जो है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। बस, वही है। उसमें ही जीना, जो है, उसमें ही पूरे के पूरे लीन होना ध्यान है, समाधि है।

सपनों में खोए रहना वर्तमान को अपने हाथ से चूकते जाना है। और वर्तमान के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

जरा सी चिंगारी काफी है

पहला प्रश्नः भगवान,

ऐसी भक्ति भरो प्राणों में, सब कीर्तन हो जाए
ऐसा उत्सव दो जीवन को, सब नर्तन हो जाए
मेरे जीवन के पादप को फूल नहीं मिल पाया
मैं हूं ऐसी लहर कि जिसको कूल नहीं मिल पाया
कहते हैं देवत्व छिपा है पत्थर के प्राणों में
पर मेरे अन्तर्मन का सौंदर्र्य नहीं खिल पाया
ऐसी चोट करो हे शिल्पी! मूर्ति प्रगट हो जाए
मुक्त बनें प्रच्छन्न कलाएं, सब नंदन हो जाए
ऐसी भक्ति भरो प्राणों में, सब कीर्तन हो जाए
ऐसा उत्सव दो जीवन को, सब नर्तन हो जाए
मैं वह वीणा हूं जो अब तक पड़ी रही अनगाई
नहीं सजी प्राणों की महफिल नहीं चली पुरवाई
नहीं खिला जीवन का मधुवन कोयल कुहुक न पाई
जला न दीपक, बजी न अब तक प्राणों की शहनाई
ऐसी तान सुना दो भगवन, प्राणों में भिद जाए
हृत्तंत्री के तार छेड़ दो, सब गायन हो जाए
ऐसी भक्ति भरो प्राणों में, सब कीर्तन हो जाए
ऐसा उत्सव दो जीवन को, सब नर्तन हो जाए

योग प्रीतम मैं वही कर रहा हूं, इसीलिए तो इतना विरोध है। मनुष्य सदियों से रोने का आदी रहा है। आंसुओं का पाठ उसे सिखाया गया है। धर्म का अर्थ ही उदासीनता, धर्म का अर्थ ही उदासी, ऐसा जहर उसके प्राणों में भरा गया है। यह कुछ तुम्हारा कसूर नहीं। इस पीड़ा में तुम अकेले नहीं हो, सारी मनुष्य जाति इसी संताप से घिरी है। और कठिनाई तो तब बहुत जटिल हो जाती है जब हम कांटों को फूल समझ लें। तो चुभते भी हैं, फिर भी उन्हें छोड़ते नहीं। शूलों को ही जिसने फूल समझ लिया हो, उसकी दुर्दशा तुम समझ सकते हो। चुभता है, छाती भिदती है, प्राण रोते हैं, मगर शूल शूल दिखायी नहीं पड़ता। आंखें संस्कारों से भरी हैं, वे उसमें फूल ही देखे चली जाती हैं। तुम्हारे जीवन को विकृत किया गया है।

हृदय तो पहचान लेता है कि कहां भूल हो रही है, मगर बुद्धि नहीं पहचान पाती। क्योंकि बुद्धि तुम्हारी तो छीन ली गयी है, तुम्हारी बुद्धि पर तो धूल डाल दी गयी है और तुम्हें उधार बुद्धि दे दी गयी है--बासी, सड़ी-गली। यद्यपि उस सड़ी-गली बुद्धि को शास्त्रों में लपेट कर दिया गया है। ऐसे-ऐसे प्यारे रंगीन कागजों में लपेटा है, कि तुम रंगीन कागजों में ही उलझे रह जाते हो, भीतर की गंदगी का तुम्हें बोध भी नहीं हो पाता।

इस शडयंत्र के पीछे राज है। वह राज तुम्हें दिखायी पड़ जाए तो शायद हृदय की वीणा बज उठे। बनी तो इसलिए थी कि बजती। बने तो तुम इसीलिए थे कि नाचते। जीवन उत्सव है। और जैसे वृक्षों में फूल खिलते हैं, वैसे ही फूल मनुष्य में भी खिलने ही चाहिए। अनिवार्य रूप से खिलने चाहिए। अपरिहार्य रूप से खिलने चाहिए। कभी एकाध के जीवन में न खिल पाएं तो उसे हम रुग्ण कहें, मगर यहां तो बात उलटी हो गयी है। कभी एकाध के जीवन में खिल पाते हैं। उस माली को क्या कहोगे, जो करोड़ों पौधे लगाए, और एकाध पौधे पर कभी कोई एकाध फूल आए; उसको माली कहोगे? उसको धन्यवाद दोगे? उसका आभार मानोगे? यही कहना होगा कि वह फूल उसके बावजूद आ गया होगा। वह फूल उसकी नजरों से बचकर आ गया होगा। नहीं तो आ नहीं सकता था। उसका बस चलता तो नहीं आ पाता।

यूं ही मनुष्य जाति की इस बगिया में कभी कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई मोहम्मद करोड़ों-करोड़ों में कभी कोई एकाध फूल खिलता है। और हम उस फूल के साथ कैसा व्यवहार करते हैं! हम जो व्यवहार करते हैं, वह भी बता देता है कि हमारे भीतर का फूल खिले तो कैसे खिले? जीसस को सूली दोगे, तो तुम्हारे भीतर का जीसस कैसे जगेगा? जीसस को सूली दी, तुमने अपने भीतर की संभावनाओं को सूली दे दी। तुमने आत्मघात कर लिया। बुद्ध को पत्थर मारोगे, तो तुम किसको पत्थर मार रहे हो? तुम अपने बुद्धत्व के ही द्वार पर अड़ंगे खड़े कर रहे हो। तुम अपना ही मंदिर गिरा रहे हो। तुम अपनी ही प्रतिमा खंडित कर रहे हो। तोड़ रहे हो तारवीणा के। फिर रोओगे जार-जार और कहोगे, यह हृत्तंत्री बजती क्यों नहीं? गीत क्यों नहीं है जीवन में? मधुमास क्यों नहीं आता? आने दो तब न! पतझड़ से तो सगाई कर बैठे हो। वसंत को तो टिकने नहीं देते। पर प्राणों में प्यास वसंत की है। क्योंकि प्राण बने वसंत के लिए थे, पतझड़ के लिए नहीं।

मनुष्य का पूरा अतीत इतना सड़ा-गला है, इतनी मवाद से भरा है, जगह-जगह से मवाद बह रही है, लेकिन तुम बस लीपा-पोती करने में लगे हो। इधर से बहती है मवाद तो यहां पट्टी बांध लेते हो, वहां से बहती है मवाद तो वहां पट्टी बांध लेते हो। तुम्हारी सारी आत्मा ही अगर सड़ न जाए तो क्या हो? और जब तुम्हारे जीवन में दीप नहीं जलते, गीत नहीं उगते, फूल नहीं खिलते, तो वे ही जो कारण हैं तुम्हारे जीवन को विनष्ट कर देने के, वे ही तुम्हें समझाते हैं कि यह तुम्हारे अतीत जन्मों में किये गये पापों का फल है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं बार-बारः तुम जो भोग रहे हो, वह तुम्हारे अतीत जन्मों में किये गये पापों का फल नहीं है, तुम्हारे पूरी मनुष्य जाति के अतीत के साथ जो दुर्घटना घटी है, उसका दुष्परिणाम है। तुम सामूहिक महापाप का फल भोग रहे हो। व्यक्तिगत तुमने क्या पाप किये हैं! व्यक्तिगत तुम पाप भी करोगे तो क्या करोगे? कुछ चोरी कर लोगे, कि कुछ जुआ खेल लोगे, कि कुछ शराब पी लोगे। कोई पाप में पाप हैं! कुछ गिनती करने योग्य हैं! और तुम्हारी नींद में, बेहोशी में तुमसे आशा भी क्या की जा सकती थी! अब नींद में कोई बड़बड़ाए, तो जागने पर हम उसे क्षमा नहीं कर देंगे!

मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपनी पत्नी को नींद में बड़बड़ाए, गालियां दे। उलटी-सीधी बातें करे। एक दिन पत्नी ने उसे झकझोरा और कहा कि नसरुद्दीन, नसरुद्दीन, ये क्या तुम नींद में अंट-शंट बकते हो? नसरुद्दीन ने कहा, अब तू सुन ही ले, समझ ही ले! कौन कहता है कि मैं सो रहा हूं? मगर जागने में तू बोलने ही नहीं देती, जबान नहीं खुलने देती, सो आदमी का बच्चा हूं, कुछ तरकीब तो निकालूंगा। सो आंखें बंद करके लेट जाता हूं, जो मुझे बकना है, जो मुझे कहना है, जो कहना तो था जागने में लेकिन जागने में तो झंझट खड़ी होती, सो नींद में बड़बड़ाता हूं।

ऐसे आदमी को तो माफ नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी नींद झूठी है, लेकिन सच में जो नींद में बड़बड़ा रहा हो, जगने पर उसे माफ नहीं कर दोगे?

अकबर की सवारी निकलती थी और एक शराबी अपने छप्पर पर चढ़ा हुआ था। शराबी तो जहां न चढ़ जाएं! छप्पर पर क्या काम था मगर बैठे थे छप्पर पर चढ़कर! सवारी निकली थी, हाथी पर चला जा रहा था अकबर, गालियां देने लगा, बड़ी वजनी गालियां देने लगा। दिल्ली का मामला है, पंजाबी रहा होगा! गाली देनी हो तो पंजाबी भाषा में जो लुत्फ है, वह किसी और भाषा में नहीं। जो वजनदार गाली पंजाबी में दी जा सकती है, वह किसी और भाषा में नहीं दी जा सकती। गुजराती में उसी गाली का अनुवाद करो, उसके बिल्कुल प्राण निकल जाते हैं। उसमें कुछ दम ही नहीं रह जाती। गोल-मटोल हो जाती है। तुम दो गाली और लगेगा कि रसगुल्ला बांट रहे हो। पंजाबी की लज्जत और है। उसक लज्जत वही है।

दीं उसने वजनी गालियां। अकबर भी भन्ना गया। यूं अकबर शांत आदमी था, इतना जल्दी भन्ना नहीं जाता था। तत्क्षण सिपाहियों को कहा, करो इसे बंद! और कल दरबार में हाजिर करो।

कल उस आदमी को दरबार में हाजिर किया गया। उसने झुक-झुक कर नमस्कार किया। चरणों पर सिर रखा, पगड़ी उतार कर रख दी। अकबर ने कहा, आज तो बड़े भले आदमी मालूम पड़ रहे हो, कल क्या हो गया था? उसने कहा, कल मैं नहीं था, शराब थी। जो कहा हो, सुना हो, सो ख्याल न लेना। मैंने कुछ भी नहीं कहा। शराब ने जो कहलवा दिया हो। मगर जो भी सजा देनी हो, मैं भोगने को राजी हूं। अकबर ने कहा, अब शराब थी तो क्या सजा देनी। शराब ही तुम्हें काफी सजा दे लेगी। जाओ, भाग जाओ! क्योंकि जब तुम होश में ही नहीं थे तो तुम्हारी गालियों का क्या अर्थ? तुम प्रशंसा भी करते तो बेकार थी, तुम स्तुति भी गाते तो बेकार थी, तुमने गालियां भी दीं तो बेकार हैं। होश में जो आदमी नहीं है, उसकी बात का कोई मूल्य है?

तुमने अगर अपने पिछले जन्मों में कुछ भूल-चूक भी करी हो, तो उसका क्या मूल्य है? बुद्ध ने ठीक कहा है कि बुद्धत्व के बाद कोई भूल करे तो जिम्मेवारी है। तो उसे सजा मिलनी चाहिए। मगर बुद्धत्व के बाद कोई भूल करता नहीं। बुद्धत्व के बाद तो कोई कांटा भी छुए तो फूल हो जाए। मिट्टी छुए कि सोना हो जाए। भूल भी करे तो ठीक हो जाती है। बुद्धत्व के बाद तो भूल हो सकती नहीं। बुद्ध ने ठीक कहा है कि बुद्धत्व के बाद कोई अगर भूल करे तो उत्तरदायित्व है। आदमी होश में है तो उत्तरदायित्व है। लेकिन बेहोशी में जो किया गया है, उसका क्या उत्तरदायित्व!

लेकिन तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें समझाएंगे कि तुम्हारे जीवन में आनंद नहीं, यह तुम्हारे अतीत जन्मों के पापों का फल है। मगर मैं तुमसे कहता हूं, यह तुम्हारे अतीत जन्मों के पापों का फल नहीं है, यह पूरी मनुष्य जाति के अतीत के साथ किये गये शडयंत्र का फल है। यह एक-एक आदमी की अलग-अलग बात नहीं है, यह हमारे पूरे के पूरे चेतना के मूलस्त्रोत को गंदा कर दिया गया है। जैसे कोई गंगोत्री पर ही जहर मिला दे। फिर जहां-जहां गंगा बहे, जिन-जिन घाटों पर बहे, वहां-वहां लोग विक्षिप्त होते चले जाएं, पागल होते चले जाएं। ऐसे तुम्हारी चेतना के मूल उत्स पर जहर डाल दिया गया है।

क्यूं डाला होगा? किसी ने क्यूं इतना श्रम उठाया है?

निहित स्वार्थों का हित है इसमें। शडयंत्र के पीछे यही राज है। प्रत्येक मनुष्य को अगर गुलाम बना रखना है तो उसके भीतर का गीत मत जगने देना। क्योंकि जिसके भीतर का गीत मुक्त हुआ, उसके प्राण मुक्त हुए। जिसके भीतर गीत के पंख लगे, उसकी आत्मा को पंख लगे। फिर तुम उसे सोने के पिंजरों में भी बंद करना चाहो

तो वह बंद नहीं होगा। तुम उसे बंद न कर सकोगे। मार सकते हो, मिटा सकते हो, मगर गुलाम न कर सकोगे। जिसके भीतर का आनंद मुक्त हो गया, उसके भीतर मोक्ष का फल लग गया। अब तुम क्या उसे गुलाम करोगे!

तो अगर आदमी को गुलाम करना हो तो पहली बात ध्यान में रखनी जरूरी है, उसे कभी आनंदित मत होने देना। सिर्फ दुखी आदमी ही गुलाम हो सकता है। इसलिए आदमी को दुखी बनाए रखो। सब आयोजन करो कि आदमी दुखी रहे, पीड़ित रहे, परेशान रहे। उलझा रहेगा परेशानियों में तो गुलाम रहेगा। दयनीय रहेगा, दीन रहेगा। उलझा रहेगा चिंताओं में तो उसकी बुद्धि पर कभी निखार न आएगा। कभी उसकी बुद्धि युवा न होगी। कभी उसकी बुद्धि पर धार न आएगी। बोथली होगी बुद्धि।

दुख में आदमी की बुद्धि बोथली हो जाती है। जैसे कि तलवार जंग खा जाए, सब्जी भी न कटे उससे। ऐसी तुम्हारी बुद्धि पर जंग मार दी गयी है। बड़ी तरकीब से मारी गयी है, बड़ी कुशलता से मारी गयी है। और उन सब का हाथ है जो आदमी को गुलाम बनाए रखना चाहते हैं। उसमें राजनेता सम्मिलित हैं--फिर चाहे वे राजा रहे हों, महाराजा रहे हों और चाहे आजकल के राजनेता हों, कुछ फर्क नहीं पड़ता। राजनीति के दांव-पेंच वही के वही हैं। राजशाही रहे, लोकतंत्र रहे, समाजवाद रहे, साम्यवाद रहे, कुछ भेद नहीं पड़ता। राजनैतिक की चाल वही, ढाल वही; राजनैतिक की भाषा वही, गणित वही। उसका जाल वही। उसका जाल है, लोगों की छाती पर बैठे रहना, उनकी गर्दन को कसे रखना, उनकी गर्दन में फांसी लगाए रखना।

लोग अगर प्रसन्न हों, आंनदित हों, नाचें, गाएं, मुक्त हो जाएंगे। उनके जीवन में इतनी प्रखरता, त्वरा और ऐसी चमक आ जाएगी कि तुम क्या उन्हें गुलाम करोगे! जरा सोचो तो, मेरे संन्यासी किसी राजनेता के पीछे चल सकते हैं! असंभव। मेरे संन्यासी किसी पंडित, पुरोहित की बकवास में आ सकते है! असंभव जिनके जीवन में जरा-सी भी सुगंध आनी शुरू हो गयी, वे हर तरह की मूढ़ता से मुक्त होने लगेंगे।

तो एक तो राजनेता, राजनीतिज्ञ, जो चाहता है कि लोगों के जीवन पर छाया रहे। और दूसरा पंडित-पुरोहित।

धर्म और राजनीति, दोनों ने मिलकर आदमी के प्राण लिये हैं। ऐसा फंदा कसा है कि न मरने देते हैं, न जीने देते हैं। मरने भी नहीं देते। क्योंकि मर जाओ तो फिर क्या सार! तो जिलाए तो रखना होगा। इसलिए हम कारागृह में भी कैदी को भोजन देते हैं। इतना नहीं देते कि इतना बलिष्ठ हो जाए कि तोड़ दे जंजीरों को, लेकिन भूखा भी नहीं मार डालते। क्योंकि मर ही जाए कैदी तो फिर कैदी किसको रखोगे? फिर अपनी जंजीरें लिए बैठे रहना खुद! जिलाते हैं उसे। न मरने देते हैं, न जीने देते हैं।

यूं देखा तुमने, शिव के मंदिर के बाहर नंदी बैठा होता है। शिव के नाम पर लोग हर गांव में नंदी छोड़ देते हैं। लेकिन शिव के मंदिर के सामने बैठे हुए नंदी में, या शिव पर छोड़े गये नंदी में और साधारण बैल में तुमने कभी हिसाब लगाया कितना फर्क है। होना तो नहीं चाहिए था, दोनों में कोई फर्क नहीं होना चाहिए था। सांड में और बैल में क्या फर्क होना चाहिए था! कुछ भी नहीं होना चाहिए था। लेकिन कहां बैल और कहां सांड! कहां सांड की मस्ती, उसकी चाल, उसका प्रसाद, कहां सांड की शान और कहां बेचारा दीन-हीन बैल! बैलगाड़ी में जुता है, कोल्हू में जुता है--जहां चाहो वहां जोतो।

जरा सांड को भी जोत कर देखा कभी, कोल्हू पर! न कोल्हू बचेगा, न तेल बचेगा, न तेली बचेगा! कभी बैलगाड़ी में सांड को जोड़कर गये, तीर्थयात्रा को? सांड पहुंच जाएगा तीर्थ, तुम कहीं भी, लौटकर भी न आओगे घर! सांड को बैलगाड़ी में जोतोगे, रास्ते पर भी नहीं चला सकते। इतना बल होगा उसमें, इतनी तेजस्विता होगी। फेंक-फांक कर बैलगाड़ी को तुम्हारी कहां भाग खड़ा होगा जंगल में, कहा नहीं जा सकता। और कहीं राह

में मिल गयी कोई नव यौवना, गऊमाता, तो तुम्हारी याद रखेगा? कि तुम बैलगाड़ी में बैठे हो! भाड़ में जाओ तुम, भाड़ में जाए तुम्हारी बैलगाड़ी! नंदी वहीं प्रेम रचाएगा। नंदी वहीं कृष्ण की बांसुरी बजाएगा।

लेकिन बैल बिचारा गाड़ी में जुता है, जुता है। ढोए चलता है बोझ। क्या हो गया! सांड की तरह पैदा हुआ था, तुमने बधिया कर दिया। तुमने उसमें जीवन-ऊर्जा का खंडन कर दिया, तुमने उसकी जड़ें काट दीं। वैसे ही प्रत्येक आदमी को बधिया कर दिया गया है। तुम्हारे तथाकथित धर्म और तुम्हारे तथाकथित राजनीति ने प्रत्येक आदमी के जीवन से गौरव छीन लिया है, गरिमा छीन ली है। घसिट सकता है, नाच नहीं सकता। बस घसिटने योग्य जिंदा छोड़ा है। सरक सकता है जमीन पर कीड़े-मकोड़ों की तरह, आकाश में उड़ नहीं सकता पक्षियों की तरह। दूर-दिगंत की यात्रा पर नहीं जा सकता। घुटने झुका कर प्रार्थना कर सकता है। लेकिन वह प्रार्थना मुर्दा होगी, उसमें बल नहीं होगा। वह यहीं की जाएगी, यहीं गिर जाएगी। क्या उठेगी आकाश तक! घुटने टेक सकता है। हर कहीं घुटने टिकवा लो। जहां शक्ति देखेगा वहीं जी हजूरी करने लगेगा।

धर्म गुरुओं और राजनेताओं के बीच एक साझा, समझौता है। दोनों ही चाहते हैं कि आदमी की छाती पर सवार रहें। और दोनों ने तय कर लिया है, बंटवारा कर लिया है। राजनेता आदमी के शरीर पर कब्जा रखना चाहता है, धर्मगुरु आदमी की आत्मा पर। और दोनों की विधि एक है कि आदमी को कभी प्रखर मत होने देना। उसमें कभी क्रांति के अंगार मत निखरने देना। धूल पर धूल जमाए जाना। राख ही राख रह जाए उसके प्राणों में। तो बस वह जी हुजूर रहेगा, गुलाम रहेगा। न्यस्त स्वार्थों की सेवा करेगा। जो उसे मार रहे हैं, उनके ही चरण दबाएगा। जो उसके जीवन के हंता हैं, जिन्होंने उसके जीवन का सारा रंग, सारा रस निचोड़ लिया है, जिन्होंने उसके जीवन से सारे इंद्रधनुष पोंछ डाले हैं, सारे फूल तोड़ लिये हैं, उनके ही गुणगान करेगा। उनको ही कहेगा--दाता; तुम्हारे बिना कैसे जी सकता हूं!

इसलिए, योग प्रीतम, कठिनाई हो गयी है। अन्यथा बड़ी सरल बात है। जीवन भक्ति से भर सकता है, भरना ही चाहिए। जैसे हर वृक्ष पर फूल लगने ही चाहिए। वह वृक्ष की नियति है। ऐसे मनुष्य के जीवन में भक्ति, भाव के सुमन--वह उसकी नियति है।

तुम कहत हो--

"ऐसी भक्ति भरो प्राणों में सब कीर्तन हो जाए"

जरूरत नहीं है कि मैं भरूं। सिर्फ मेरी तुम सुन लो और पत्थर जो तुमने पकड़ रखे हैं, जिनके कारण भक्ति के झरने फूट नहीं पाते, उनको छोड़ दो। लेकिन उन पत्थरों को तुम बड़ा कीमती समझते हो। उनको तुम इतना मूल्य देते हो जिसका हिसाब नहीं है। उनको तुम कहते हो--हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, कुरान, बाइबिल, गीता। कैसे छोड़ दें! ये कोई पत्थर थोड़े ही हैं, ये तो धर्म शास्त्र हैं। कैसे छोड़ दें! ये तो हमारे मंदिर है, मस्जिद हैं। ये तो हमारा काबा, काशी, इसे कैसे छोड़ दें! तो फिर नहीं भक्ति पैदा हो सकती। तुम्हारे कानों में पत्थर रहेंगे, मेरी बात ही तुम्हारे प्राणों तक नहीं पहुंच पाएगी।

मैं तो तैयार हूं, योग प्रीतम, तुम्हें जरा तैयारी दिखानी पड़े। क्योंकि भक्ति जबर्दस्ती नहीं थोपी जा सकती। जीवन में कुछ चीजें हैं जो जबर्दस्ती नहीं थोपी जा सकतीं। तुम्हें ही सहयोग करना पड़ेगा। तभी तुम्हारा स्वभाव प्रकट हो सकता है।

तुमने वचन प्यारे लिखे, तुम्हारी प्रार्थना प्यारी है! यही तो मैं चाहता हूं। यही मैं कर रहा हूं। लेकिन बाधाएं तुम्हारी तरफ से आती हैं।

कहते हो--

"ऐसी भक्ति भरो प्राणों में, सब कीर्तन हो जाए

ऐसा उत्सव दो जीवन को, सब नर्तन हो जाए"

और चाहता ही क्या हूं! उत्सव ही मेरे लिए धर्म है। नर्तन ही मेरे लिए ध्यान है। लेकिन तुम्हारे पैरों में इतनी जंजीरें हैं कि तुम नाचो कैसे! और जब नाच नहीं सकते तो सोचते हो आंगन टेढ़ा है। नाच न आवै आंगन टेढ़ा। आंगन को कसूर वार ठहराते हो जब, अपने पैरों की तरफ देखते नहीं। लेकिन तुम अपने पैरों में पड़ी जंजीरों को आभूषण मानते हो। और हो भी सकता है सोने की जंजीरें हों, हीरे-जवाहरात जड़ी हों, मगर जंजीरें जंजीरें हैं। सच तो यह है, सोने की जंजीरें ज्यादा खतरनाक होती हैं लोहे की जंजीरों से। क्योंकि लोहे की जंजीरों को तो तुम तोड़ना भी चाहो, सोने की जंजीरों को तुम बचाना चाहते हो। संपदा है। प्राणों के प्राणों में सम्हाल कर रख लेना चाहते हो। फिर नृत्य नहीं होगा।

और तुम क्यों देखते हो लोग मुझ पर नाराज हैं? मैं उनसे क्या छीन रहा हूं? उनकी उदासी छीन रहा हूं, वे मुझ पर नाराज हैं। उनकी उदासीनता छीन रहा हूं और वे मुझ पर नाराज हैं। उन्हें उत्सव देना चाहता हूं और वे मुझ पर नाराज हैं। उन्हें कीर्तन देना चाहता हूं, गायन देना चाहता हूं, वादन देना चाहता हूं, वे मुझसे नाराज हैं। उनके जीवन को एक समारोह बनाना चाहता हूं और वे मुझसे नाराज हैं। क्योंकि वे अब तक जैसा सोचते रहे हैं, कि धर्म क्या है--धर्म है भगोड़ापन, धर्म है त्याग। मैं कहता हूंः धर्म है महाभोग, तो वे मुझको भोगी कहकर गालियां देते हैं।

उनके लिए धर्म की परिभाषा नियत हो चुकी है। और जब तक उनकी परिभाषा न बदली जाए, उनके प्राण भी नहीं बदले जा सकते हैं। इसलिए मुझे तुम्हारी परिभाषाएं बदलनी पड़ रही हैं। चोट करनी पड़ रही है सतत। किसी भी तरह तुम्हें यह होश आ जाए कि तुमने गलत धारणाओं में अपने को घेर रखा है। कोई तुम्हारा दुश्मन नहीं है, ये गलत धारणाएं। लेकिन तुम उनमें गलती नहीं देखना चाहते। तुम तो उनको गौरव से सिर पर ढो रहे हो। तुम तो कहते हो, मेरी धारणाएं और गलत? कभी नहीं! सारी दुनिया गलत होगी, मेरी धारणाएं गलत नहीं हो सकती। तो फिर अपनी उदासी में राजी रहो। फिर मत मांगो कीर्तन, मत मांगो भजन।

तुम्हें सिखाया गया है कि धर्म गंभीरता है। और मैं तुमसे कहता हूंः धर्म गंभीरता नहीं है। धर्म तो अभिनय है, गंभीरता नहीं। धर्म तो लीला है, गंभीरता नहीं। लेकिन लंबे चेहरे बनाकर जो लोग बैठे हैं--और उनकी भी मजबूरी है कि उनको लंबे चेहरे बनाने पड़ेंगे। कोई उपवास किये बैठा है। कोई गर्मी में चारों तरफ धूनी रमाए बैठा है। यूं ही गर्मी है, धूप बरस रही है, आग बरस रही है, इससे भी उनका मन तृप्त नहीं हो रहा, उनको और आग जलानी है चारों तरफ, अंगारों के बीच में बैठना है। और चेहरा उदास नहीं होगा तो क्या होगा! कुम्हला न जाएंगे फूल तो क्या होगा! जरा गुलाब की झाड़ी के चारों तरफ अंगीठियां लगा कर तो देखो। फिर देखना कि गुलाब के फूल महात्मा बनते हैं कि मुर्झाते हैं। मुर्झाएं तो कहना कि अरे, इनको कुछ महात्मा होना नहीं आता।

तुम्हारे महात्मा भी मुर्झाए हुए हैं। मुर्दा हैं। लेकिन तुम्हें ख्याल में नहीं आती बात।

एक जैन मुनि को मेरे पास लाया गया था। उनके भक्तों ने कहा कि बड़े त्यागी हैं, बड़े तपस्वी हैं। क्या कुंदन जैसी देह! स्वर्ण जैसी देह। मैंने कहा कि लाओ, मैं भी देखूं। वे आए--जरूर थी कुंदन जैसी देह--जैसा कि बुखार में आदमी की हो जाती है न कुंदन जैसी देह। पीले पड़ गये थे। जैसे पीले पत्ते वृक्ष से गिरने के पहले। पतझड़ के पहले जो हालत हो जाती है।

अब यूं तुम्हारी मर्जी, चाहो कहो सोने के पत्ते, स्वर्ण काया हो गयी इनकी, पत्तों की, सचाई कुछ और है। मुर्दगी थी चेहरे पर। निरंतर उपवास, हड्डी-हड्डी हो रहे थे। अब निरंतर भूखा-प्यासा आदमी को रखोगे तो चेहरा पीला पड़ ही जाएगा। उस पीले चेहरे को भक्तगण कह रहे हैं--स्वर्ण जैसी काया, कुंदन जैसी देह। शब्दों में भी हम क्या-क्या छिपा लेते हैं! मैंने उनको कहा, पागलो, इस आदमी का इलाज करवाओ। अगर तुम्हें इससे कुछ प्रेम है तो थोड़ा अपना रक्तदान दो इसे। इसके शरीर से रक्त खो गया है और कुछ भी नहीं है। यह कुंदन जैसी देह नहीं है, ये मरणासन्न है।

वे तो बहुत चौंके। उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? अरे, यह त्याग-तपश्चर्या का बल है। मैंने कहा, यह कोई बल वगैरह नहीं है, यह आदमी सिर्फ निर्बल हो गया है। यह सूख गया है। मगर इसके सूखने को तुम आदर दे रहे हो। और आदर मिल जाए तो आदमी किसी भी तरह की मूर्खता करने को राजी हो जाता है। भूखा मरवाओ, सिर के बल खड़ा करवाओ, नंगा खड़ा कर दो, ठंढ में मारो, गर्मी में मारो, जो चाहो, जैसा करवाना हो करो। मगर उसके अहंकार की तृप्ति करते रहना। उसको आदर देना, सम्मना देना।

जिनको तुम त्यागी और मुनि कहते हो, उनको बिचारों को केवल एक सांत्वना हैः तुम्हारे आदर की। उनके अहंकार की तुम इतनी तृप्ति कर रहे हो, बस। बाकी उनके जीवन में कुछ भी नहीं है। न प्राणों में भक्ति है, न श्वासों में कीर्तन है, न आत्मा में उत्सव है, न पैरों में नर्तन है। और उनको तुम महात्मा जब कहते हो, तो कहीं जाने-अनजाने तुम भी उन जैसे ही बनने की कामना से भरते हो।

तुम आदर ही उसे देते हो जो तुम हो जाना चाहते हो। तुम्हारा आदर सांकेतिक है, प्रतीकात्मक है। वह तीर की तरह बता रहा है कि तुम क्या होना चाहते हो। हो पाओ या न हो पाओ, यह दूसरी बात है। जो हो गये, वे सूख गए; जो नहीं हो पाए, वे अधसूखे हो गये।

इस दुनिया ने अब तक जो हालत देखी है आदमी की, वह यह है; कुछ तो महामूढ़ थे, मंदबुद्धि थे, वे अहंकार की तृप्ति की आशा में हर तरह की मूर्खता करने को राजी हो गये। अधिकतर लोग इतने मूढ़ नहीं थे; मगर इतने बुद्धिमान भी न थे कि इस मूढ़ता को साफ मूढ़ता कह सकते। तो इसको उन्होंने आदर तो दिया, और कहा कि कभी हमारे भी सौभाग्य का उदय होगा, पुण्य कर्म का कभी भाव आएगा, कभी पुण्यों का फल संचित होगा, तो हम भी इस जीवन यात्रा पर निकलेंगे; जैसी महायात्रा पर अब आप गये, ऐसे हम भी जाएंगे। यद्यपि वे गये नहीं, लेकिन उनके पैरों में इस जगत में नाचने की क्षमता तो खो ही गयी। वे अधूरे-अधूरे हो गये। लक्ष्य तो वहां बन गया। रहे संसार में और लक्ष्य बन गया उदासीनता का।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने ठीक कहा है कि धर्म ने दो काम किये। कुछ लोगों के तो जीवन को बिल्कुल नष्ट कर दिया और कुछ लोगों के जीवन को अधमरा कर दिया। लोगों के जीवन को रूपांतरण तो मिला नहीं--या तो कुछ लोग मुर्दा होकर बैठ गये, जिनको तुम महात्मा कहने लगे; और कुछ लोग, जो इतने अतिवादी नहीं थे, जिनमें थोड़ी-बहुत सूझ-बूझ बाकी थी, वे इतने मुर्दा तो नहीं हुए लेकिन उनकी भी सांसें उखड़ी-उखड़ी हो गयीं; उनका जीवन विषाक्त हो गया। वे संसार में तो रहे, लेकिन अपराध के भाव से भर गये, कि हम जो कर रहे हैं, गलत है; हम जो जी रहे हैं, वह पाप है। होना तो नहीं चाहिए ऐसा, मजबूरी है, कमजोरी है; अभी हम इतने बलशाली नहीं हैं; अभी पुण्योदय नहीं हुआ; इसलिए भटक रहे हैं कीड़े-मकोड़े की तरह। मगर समझने लगे अपने को कीड़ा-मकोड़ा। और जो आदमी अपने को कीड़ा-मकोड़ा समझने लगे और जिसका जीवन अपराध के भाव से भर जाए, वह नाचे कैसे?

नाच के लिए कुछ अनिवार्य बातें चाहिए। तुम्हारे जीवन से अपराध भाव समाप्त होना चाहिए। तुम जीवन को उसकी समग्रता में अंगीकार करो। यह परमात्मा की भेंट है, प्रसाद है। इसे छोड़कर नहीं भागना है। इसे छोड़कर भागना परमात्मा का अपमान है। इसे छोड़कर भागना परमात्मा की निंदा है।

एक ओर तो तुम कहते हो, परमात्मा ने जगत बनाया, जीवन बनाया, अस्तित्व बनाया और दूसरी तरफ कहते हो--छोड़ना है! जिसे परमात्मा ने बनाया उसे छोड़कर भागना है। तुम्हें परमात्मा ने जीवन दिया और तुम परमात्मा को क्या उत्तर में दे रहे हो! पलायन। तुम्हारा जीवन से भागना और जीवन को सिकोड़ना और जीवन का त्याग स्पष्ट रूप से शिकायत है कि तूने गलत किया जो हमें जीवन दिया। तुम्हारे महात्मा तुम्हारे परमात्मा से ज्यादा समझदार मालूम होते हैं। उसने जीवन दिया, ये जीवन छोड़ना सिखाते हैं। नहीं, तुम्हारे जीवन में आनंद संभव हो पाएगा। ये धारणाएं तुम्हें छोड़नी होंगी।

तुम कहते हो--

"मेरे जीवन के पादप को फूल नहीं मिल पाया।"

कैसे मिले फूल? जड़ों पर पानी नहीं सींचते, जड़ों को तपश्चर्या करवा रहे हो--पानी देना तो भोग ही हो जाएगा, जड़ों को योग करवा रहे हो; और जब जड़ों को योग करवाओगे तो पादप पर फूल कैसे खिलेगा? वह शिखर पर फूल खिलता है वृक्ष के, क्योंकि उसकी जड़ें भूमि से रस लेने में समर्थ होती हैं। यहां जड़ें काट रहे, वहां फूलों की आशा कर रहे हो! जड़ों को काटना बंद करो! ये दोहरे काम बंद करो! ये विरोधाभासी काम बंद करो! तुम्हारा जीवन पाखंड हो गया है।

मैं अपने संन्यासियों के जीवन को बिल्कुल ही पाखंड से मुक्त करना चाहता हूं। वैसे जीओ जैसा नैसर्गिक है, जैसा स्वाभाविक है। भूख लगे तो भोजन। न भूख लगे तो कोई जरूरत नहीं है भोजन की। नींद आए तो नींद। कोई ब्रह्म मुहूर्त में उठने की आवश्यकता नहीं है। अगर ब्रह्ममुहूर्त में नींद अच्छी आती हो, अगर ब्रह्म को सोना है उस समय, तो सोने दो। तुम्हारे भीतर बैठा ब्रह्म तुमसे ज्यादा जानता है। लेकिन जबर्दस्ती खींचतान कर ब्रह्ममुहूर्त में मत उठा लो। कोई जबर्दस्ती न करो अपने ऊपर। जीवन को सरलता से लो, सुगमता से लो, सहजता से लो। स्वस्फूर्ति से जीओ। और तुम देखोगे, फूल खिलेंगे!

कहते हो तुम, योग प्रीतम--

"मेरे जीवन के पादप को फूल नहीं मिल पाया

मैं हूं ऐसी लहर कि जिसको कूल नहीं मिल पाया"

कूल तो पास ही है, मिला ही हुआ है, तुहीं झिझक रहो हो, कूल तक जाते नहीं, कूल से बचते हो।

कहते हो तुम--

"कहते हैं देवत्व छिपा है पत्थर के प्राणों में"

निश्चित छिपा है। मगर पत्थर की तो बात छोड़ो, तुम जीवंत हो, तुम्हें अपने भीतर के देवता का पता नहीं चल पाता है।

एक महिला ने लिखा है मुझे कि मेरे चारों बेटे आपके संन्यासी हो गये। मेरी लड़की भी अब आपकी संन्यासी हो गयी। मैं इधर आयी हूं तो मेरा मन भी डांवा-डोल हो रहा है। मैं भी आपके रस में भींग रही हूं, लेकिन क्या करूं, मैं महानुभाव पंथ में मानती हूं। और महानुभाव पंथ की यह धारणा है कि जीव कभी परमात्मा नहीं हो सकता। और यह मैं कैसे छोड़ूं! और मेरी तो यहां उदघोषणा हैः होने का सवाल ही नहीं है, जीव परमात्मा है। होने-वोने की क्या बात लगा रखी है!

यह क्या खाक महानुभाव संप्रदाय हुआ! इसने महानता छीन ली तुम्हारी और महानुभाव संप्रदाय इसका नाम है! मैं घोषणा कर रहा हूं कि तुम परमात्मा हो, यह तो मैं कह ही नहीं रहा कि जीव परमात्मा हो सकता है। हो सकने वगैरह की बात! तुम हो! तुम चाहो भी कुछ और होना तो नहीं हो सकते हो।

मगर इस महिला की मजबूरी मैं समझता हूं। उसे रस भी छू रहा है, उसे मेरी बात भी छू रही है, वृद्ध होगी; चार बेटों ने संन्यास लिया है, एक लड़की ने संन्यास लिया है तो वृद्ध होगी; जड़ें गहरी पकड़ गयी हैं, पुरानी धारणाओं में जकड़ गयी हैं। और धारणाएं भी क्या! कैसी व्यर्थ की धारणाएं! ऐसी धारणाएं जो तुम्हें परमात्मा भी न होने दें। और इनको भी पकड़े हो। जहर की बोतलों को छाती से लगाए हो। मगर इतने दिन तक जहर की बोतल को छाती से लगा रखा है कि आज कोई छीनना चाहे, छुड़ाना चाहे, तो तुम देना नहीं चाहते।

अब मैं तुमसे क्या छीन रहा हूं?

एक व्यर्थ की बकवास तुम्हारे मन में बैठी है कि आदमी परमात्मा नहीं हो सकता। कहा किसने? आदमी की बात ही छोड़ दो, इस अस्तित्व में परमात्मा के अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं। पत्थर भी परमात्मा है। और वृक्ष भी, पशु भी, पौधे भी, पक्षी भी। परमात्मा ही है अनंत-अनंत रूपों में प्रगट हुआ। ये उसी एक वीणा के स्वर हैं--अलग-अलग स्वर और अलग-अलग गीत, मगर वीणा वही। ये उसी एक सागर की लहरें हैं--कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई पूरब जाती है, कोई पश्चिम जाती है, मगर उसी एक सागर की लहरें हैं।

ऐसी सीधी-सादी बात को भी, जो तुम्हारी गरिमा और गौरव के अनुकूल है, जो तुम्हारे भीतर की भगवत्ता की उदघोषणा करती है, उसको भी मानने में मन को संकोच होता है, उसमें भी प्राण सिकुड़ते हैं, कि आदमी कहीं परमात्मा हो सकता है! वह तो हमारे महानुभाव पंथ में है ही नहीं। तो महानुभाव पंथ को पकड़ो, आदमी रहो! और कोई महानुभाव पंथ, परम महानुभाव पंथ खोज लो, जिसमें आदमी कीड़ा-मकोड़ा है; उसको पकड़ लो और भी अच्छा रहेगा!

फिर नास्तिक ही क्या बुरा है! वह तो समझो पराकाष्ठा हो गयी धर्म की। कि परमात्मा है ही नहीं, झंझट ही मिटाओ! हो और कहीं भूल-चूक से हो जाओ, या मिल जाए और गले लगा ले और छोड़े ही न; तुम लाख चिल्लाओ कि मैं महानुभाव पंथ को मानती हूं, यह क्या कर रहे हो, और वह कहे कि नहीं, मुझे तो प्रेम हो आया; कि हे देवी, मैं तो तुम्हें अपने में लीन करता हूं, कि तुममें मैं लीन होता हूं। तुम अपनी महानुभाव की पोथी बीच में अड़ाने की कोशिश करना, कुछ काम न आएगी। तो उससे तो नास्तिक ही बेहतर। वह कहता है, ईश्वर है ही नहीं, होने का सावल ही नहीं उठता।

ये महानुभाव पंथ वगैरह सब एक तरह की नास्तिकताएं हैं। जो धर्म कहता है मनुष्य ईश्वर नहीं हो सकता, वह धर्म सिर्फ नास्तिकता का आवरण ओढ़े बैठा हुआ है। आस्तिकता तो इस बात की घोषणा है कि मनुष्य इश्वर है! तत्वमसि। तुम वही हो। एक क्षण को भी अन्यथा न हुए कभी, न हो सकते हो कभी। लाख करो पाप, लाख निकल जाओ दूर, कहां जाओगे? उसके अतिरिक्त कोई स्थान नहीं है। जहां जाओगे, वही है। जो भी रहोगे, वही है। जो भी करोगे, वही है। बुरा करो तो, भला करो तो, सबके पीछे वही साक्षी बैठा हुआ है। सब खेल वही देख रहा है। मगर ऐसी-ऐसी अजीब-अजीब धारणाएं हैं, जो तुम्हारे पैरों को पंगु कर देती हैं, प्राणों पर पक्षाघात लग जाता है।

तुम कहते, योग प्रीतम--

"कहते हैं देवत्व छिपा है पत्थर के प्राणों में

पर मेरे अंतर्मन का सौंदर्य नहीं खिल पाया"

छिपा है पत्थर में, इसीलिए तो हमने पत्थर की मूर्तियां बनायीं। पत्थर की मूर्तियां बनाने का राज यही। मगर आदमी कैसा अजीब है! पत्थर की मूर्तियां बनाकर पूज लेता है, मगर आदमी में ईश्वर हो सकता है, यह नहीं मान सकता। पत्थर की मूर्तियां हमने इसलिए बनायीं, उसके पीछे मौलिक रहस्य यही था कि हम घोषणा कर सकें कि पत्थर और परमात्मा में कोई भेद नहीं है; पत्थर का भी परमात्मा हो सकता है। पत्थर भी परमात्मा हो सकता है। पत्थर भी परमात्मा है, जरा निखार की बात है, जरा रंग-रूप देने की बात है; जरा उठाओ छेनी, व्यर्थ को काट डालो, उघड़ आएगा परमात्मा जो छिपा था। अभी जो अनगढ़ पत्थर था, जरा कलाकार के हाथ में पड़ जाए, कृष्ण की मूर्ति बन जाएगा, बुद्ध की मूर्ति बन जाएगा। जब पत्थर भी कलाकार के हाथों में पड़कर बुद्ध और कृष्ण की मूर्ति बन जाता है, पूज्य हो उठता है, तो आदमी के तो कहने ही क्या!

कहते हो, योग प्रीतम--

"ऐसी चोट करो हे शिल्पी! मूर्ति प्रगट हो जाए

मुक्त बनें प्रच्छन्न कलाएं, सब नंदन हो जाए"

कर रहा हूं चोट। इसीलिए तो लोग तिलमिलाए हुए हैं। इसीलिए लोग तो गालियां दे रहे हैं। जितनी गालियां मुझको पड़ रही हैं, शायद ही किसीको पड़ती हों। मैं प्रसन्न होता हूं। प्रसन्न इसलिए होता हूं कि इसका मतलब हुआ कि चोटें लगनी शुरू हो गयीं। तभी तो लोग गालियां देने लगे, नहीं तो गालियां क्या देते? चोट पहुंचने लगी। कहीं-कहीं कुछ-कुछ किसीके जीवन में कुछ कंकड़-पत्थर टूटने लगे हैं, कुछ धारणाएं खंडित होने लगी हैं, घबड़ा गये हैं लोग, बेचैन हो गये हैं लोग, डर है उन्हें कि अब कहीं परमात्मा प्रगट हो ही न जाए उनके भीतर। आखिरी चेष्टा करेंगे वे, अपना जैसा रंग-ढंग है उसको वैसा ही बनाए रखने की।

मैं चौट करता रहूंगा। मेरा वश जितना चलेगा, चोट करूंगा। जितनी कठोर चोट कर सकता हूं, करूंगा। इसमें बिल्कुल निर्ममता करूंगा। जरा भी इसमें उदारता नहीं होगी।

कहते हो तुम--

"मैं वह वीणा हूं जो अब तक पड़ी रही अनगायी

नहीं सजी प्राणों की महफिल, नहीं चली पुरवाई"

योग प्रीतम, अब चलने लगी! मैंने तुम्हारी वीणा छेड़ी है! ये गीत जगने लगे! यह प्यारा गीत जग उठा! तार कहीं झनझनाने लगे। कहीं झननझन, झननझन। कहीं कुछ बज उठे घूंघर।

"नहीं खिला जीवन का मधुबन कोयल कुहुक न पाई"

अरे, आने लगी यह कोयल की कुहुक!

"जला न दीपक, बजी न अब तक प्राणों की शहनाई"

तुम प्रार्थना कर सकते हो मुझसे कि और चोट करो, हे शिल्पी! यह इस बात की सूचना है कि चोट में अब तुम्हें रस आ रहा है। अब तुम खिन्न नहीं हो, नाराज नहीं हो। अब तुम बेचैन नहीं हो। अब तुम शत्रु नहीं बने जा रहे हो। अब तुम जानते हो, यह चोट किसी मित्र की चोट है। किसी परम मित्र की चोट है।

"ऐसी तान सुना दो भगवन, प्राणों में भिद जाए

हृत्तंत्री के तार छेड़ दो, सब गायन हो जाए"

हो रहा है। और-और अपने द्वार-दरवाजे खोलो कि मैं बह सकूं तुममें। अवरोध हटा लो। क्रांति शुरू हो गयी है, दीया जल उठा है। और एक चिनगारी फिर सारे जंगल को जला डालती है।

"ऐसी भक्ति भरो प्राणों में, सब कीर्तन हो जाए

ऐसा उत्सव दो जीवन को, सब नर्तन हो जाए"

यह तुम कह सके हो, यह प्रार्थना तुम कर सके हो, यह सूचना है इस बात की कि बात बनने लगी है, गीत अंकुरित होने लगा है, वीणा में रुनझुन होने लगी। दूर सही, मगर कोयल कूकी है। फूल शायद अभी खिला न हो, लेकिन कली खिलने के निकट आ गयी है। जल्दी ही पखुडियां खुलेंगी, सुगंध उड़ेगी। चल पड़े हो। चलते रहना।

बुद्ध ने अपने अंतिम संदेश में भिक्षुओं को कहा हैः चरैवेति, चरैवति; चलते रहना, चलते रहना, रुकना मत। क्योंकि यह अनंत यात्रा है। यहां गीत पर गीत उठेंगे। यहां एक शिखर चढ़ोगे कि और ऊंचा शिखर दिखायी पड़ने लगेगा। यहां एक तारे को छुओगे कि और हजार तारे चुनौती बन जाएंगे। यह यात्रा शुरू तो होती है, इसका कोई अंत नहीं है। इसीलिए तो हम परमात्मा को अनंत कहते हैं। अगाध कहते हैं। अमाप कहते हैं। अतौल कहते हैं। अपरिभाष्य कहते हैं।

दूसरा प्रश्नः भगवान,

सबसे पहले मैं यह साफ कर दूं कि मैं निपट अज्ञानी हूं। आपका साहित्य पढ़ना जबसे शुरू किया तब से संन्यासी होने का भाव जाग्रत हुआ और मैं यहां चला आया। लेकिन अभी विधिवत संन्यासी नहीं हो पाया हूं। मगर जब से यहां आया हूं, एक अजीब सी शांति का अनुभव करता हूं।

मैं एक वर्ष के लिए सब कामधाम छोड़कर एकांत साधना में डूब जाना चाहता हूं। कृपया बताएं कि क्या ऐसा करना उचित होगा? और अंत में यह भी बता दूं कि मैं आपके प्रिय पात्र चंदूलाल की ही बिरादरी का हूं, गरज यह कि मारवाड़ी हूं।

सुरेशचंद्र मत लो चिंता, मारवाड़ियों को बिगाड़ने में मैं भी कुशल हूं! और जब मारवाड़ी को मैं बिगाड़ लेता हूं, तब मुझे भरोसा आ जाता है, मैं किसीको भी बिगाड़ सकता हूं। फिर मुझे मनुष्य पर आस्था आती है।

एक मारवाड़ी के घर में एक चोर घुसा। तिजोड़ी खोलने को ही था कि तिजोड़ी पर ही तख्ती लगी थी कि नाहक तोड़ने की कोशिश मत करो, तिजोड़ी खुली हुई है, ताला भी लगा नहीं है। कोई डायनामाइट लगाने की, या कोई हथौड़ी से तिजोड़ी खराब करने की आवश्यकता नहीं है। सो उसने दरवाजा खोला, तिजोड़ी का दरवाजा तो खुल गया, लेकिन दरवाजा ही खुलता रहा। खुलना था दरवाजे का कि एकदम चारों तरफ प्रकाश जगमगा उठा, बिजली की घंटियां बजने लगीं, चारों तरफ से सिपाही बंदूकें लिए दौड़ पड़े, उसे फौरन पकड़ लिया गया। दरवाजा सच में ही खुला था।

जब उसे सिपाही पकड़ कर ले जाने लगे तो सिर्फ इतना ही लोगों ने उसे बड़बड़ाते सुना कि आज से मेरी मनुष्य पर आस्था उठ गयी। एक सिपाही ने कहा, मनुष्य पर नहीं, सिर्फ मारवाड़ी पर। यह मारवाड़ी की कुशलता है। मनुष्य से आस्था मत खोओ। मनुष्य बेचारे की क्या हैसियत जो इतनी होशियारी कर सके! यह तो मारवाड़ी का काम है।

जब मैं एक मारवाड़ी को बिगाड़ लेता हूं तो मेरी समस्त मनुष्य जाति पर आस्था आ जाती है। फिर मुझे लगता है कि अब कोई चिंता की बात नहीं। अरे, जब मारवाड़ी तक बिगड़ गया!

सुरेशचंद्र, तुम्हें भी बिगाड़ लेंगे, तुम फिकर न करो। और यूं भी मारवाड़ी में सभी कुछ बुराई होती है, ऐसा नहीं। जहां कांटे होते हैं, वहां फूल भी होते हैं।

एक बार एक दार्शनिक ने चंदूलाल से पूछा, एक तरफ धन का ढेर लगा हो और दूसरी तरफ ज्ञान का ढेर लगा हो, तो चंदूलाल तुम क्या चुनोगे? चंदूलाल ने कहा, महानुभाव, मैं तो धन का ढेर चुनूंगा। दार्शनिक ने

कहा, मुझे पता था। अरे, आखिर मारवाड़ी ठहरे! यदि मैं तुम्हारी जगह होता तो ज्ञान चुनता। चंदूलाल ने कहा, वह तो ठीक है, क्योंकि जिसके पास जिस चीज की कमी होती है वह वही चुनता है।

तुम्हारा मारवाड़ीपन तो खिसलना शुरू हो गया, क्योंकि तुमने पहला ही वचन कहा, "सबसे पहले मैं यह साफ कर दूं कि मैं निपट अज्ञानी हूं।"

मारवाड़ी ऐसा कभी स्वीकार नहीं करता। यूं पहली ईंट तो भवन की गिर गयी। देखा, चंदूलाल ने क्या कहा! जिसके पास जिस चीज की कमी होती है, वह वही चुनेगा। आप ज्ञान का ढेर चुनोगे, क्योंकि अज्ञानी। मैं धन चुनूंगा, ज्ञानी तो मैं हूं ही। तो ज्ञान चुनकर मुझे और क्या करना है!

आशा इससे बंधती है कि तुम अपने को अज्ञानी स्वीकार कर रहे हो। यह क्रांति की शुरुआत है। मारवाड़ी हो, मामला तो कठिन, लेकिन असंभव नहीं।

चंदूलाल किसी बड़ी बीमारी के शिकार हो गये। उन्होंने डाक्टर से पूछा कि डाक्टर साहब, मैं बच जाऊंगा न? अवश्य, सौ फीसदी आशा है, डाक्टर ने जवाब दिया और कहा, डाक्टरी खोजों से पता चला है कि इस रोग में दस रोगियों में से एक व्यक्ति ही बच पाता है। मैं अब तक नौ लोगों का इलाज कर चुका हूं, वे सब मर गये। तुम्हारा नंबर दस है, बचने की पूरी आशा है।

तुम चिंता न लो। मैं वैसा डाक्टर नहीं हूं। मैंने तो नौ मारवाड़ियों का इलाज किया, नौ ही बच गये। तुम दसवें हो, क्या फिकर लेनी है, जब नौ बच गये, तो तुम भी बच जाओगे। न मानो तो तुम मेरे मारवाड़ियों से पूछ लो। माणिक बाफना से पूछो, सोहन बाफना से पूछो, सत्संग से पूछो--एक से एक पहुंचे हुए मारवाड़ी यहां हैं! अद्वैत बोधिसत्व से पूछो, कृष्णा से पूछो। अब तक जो मारवाड़ी मेरे हाथ में पड़ा है, बच ही गया! बच गया यानी बिगड़ गया! मेरा मतलब समझ लेना। मतलब मारवाड़ी नहीं रहा।

खूबियां हैं मारवाड़ियों की कुछ। एक बार किसी चीज को पकड़ लें; फिर छोड़ते भी नहीं। धन को नहीं छोड़ते, अगर ध्यान को पकड़ लें तो ध्यान को भी नहीं छोड़ते--यह भी ख्याल रखना। छोड़ना जानते ही नहीं। अब सवाल यह है कि क्या पकड़ा दो!

और सदभावी लोग होते हैं।

चंदूलाल की पत्नी कह रही थी कि कभी तुमने दिल में सोचा कि यदि मेरी शादी किसी और से हो जाती तो कैसा होता! चंदूलाल बोले, भला मैं किसी और का बुरा क्यों सोचूंगा?

भले आदमी होते हैं। सद-गृहस्थ होते हैं।

तो यूं कुछ चिंता न लो!

तुम कहते हो, "सबसे पहले मैं साफ कर दूं कि मैं निपट अज्ञानी हूं।"

वह तुमने अच्छा किया, कि सबसे पहले साफ कर दिया। लेकिन मुझे ही साफ मत करना, अपने भीतर भी साफ-साफ समझ लेना। कभी-कभी यूं आ जाता है कि दूसरे से कहने में तो हमको आसानी होती है--क्योंकि इस देश में हम इतने जालसाज हो गये हैं! जो देखो वही कहता है, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं।

मैं जबलपुर में बहुत वर्ष रहा। मेरे पड़ोस में ही एक सज्जन रहते थे, उनकी बड़ी ख्याति थी, कि वह बड़े धार्मिक पुरुष हैं, धर्मात्मा हैं। और ख्याति का कुल कारण इतना था, उनको कबीरदास जी और दादूदयाल इत्यादि के कुछ वचन आते थे। और तो उनमें कुछ था नहीं। मगर वह जगह-बेजगह कबीरदास जी के वचन ठोंक देते थे।

मैं जब उनके पड़ोस में रहा, तो उन्होंने कबीरदास के वचन मुझ पर भी ठोंके। और वे बड़ी विनम्रता दिखलाते थे, कि मैं तो आपके पैर की धूल हूं। स्वभावतः जिससे भी वे कहते थे मैं आपके पैर की धूल हूं, वही कहता, नहीं-नहीं, आप और पैर की धूल! मैं आपके पैर की धूल हूं। आप कैसी बात कर रहे हैं! यह तो भारतीयों का ढंग है। यह तो शिष्टाचार है। जब उन्होंने मुझसे कहा, मैं आपके पैर की धूल हूं, मैंने कहा, वह तो मुझे दिखायी ही पड़ता है। आप बिल्कुल पैर की धूल हैं। उन्होंने मुझे इतने गुस्से से देखा! एक क्षण को तो उनकी बोलती बंद हो गयी। कबीरदास जी वगैरह की सब दोहावली जो याद थी, एकदम भूल गयी। तुलसीदास की चौपाइयां एकदम चौपाये होकर भाग खड़ी हुईं। एकदम घुर्रा कर ही देखते रहे, कहा, क्या कहा? मैंने कहा, आपने जो कहा, मैंने सिर्फ उसको स्वीकार किया, मैंने कुछ कहा ही नहीं। आपने कहा आप पैर की धूल हैं, तो मेरी भी यह मान्यता है कि आप जंचते बिल्कुल पैर की धूल ही हैं। आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।

वह मुझसे ऐसे नाराज हुए कि फिर मुझे मिलें ही नहीं। रास्ते पर मिल जाएं तो मुंह फेर लें। मगर मैं भी कुछ किसीको यूं छोड़ देनेवाला नहीं। वह मुंह फेरें तो मैं उनके सामने जाऊं। चक्कर भी लगाना पड़े मुझे तो भी कोई बात नहीं मगर उनका एक चक्कर लगाऊं, कि जयरामजी! ठीक-ठाक हैं न! विनम्रता का क्या हुआ? और कबीरदास के पद! वे तो इतने घबड़ाने लगे मुझसे कि पता लगा कर निकलें कि मैं घर के बाहर हूं कि भीतर। मैं भी छोड़नेवाला नहीं। मैं वक्त-बेवक्त उनके घर जाकर दरवाजा खटका दूं। पहले तो उनकी नौकरानी दरवाजा खोल देती थी, फिर उन्होंने नौकरानी को बता दिया कि इस व्यक्ति को दरवाजा मत खोला करे। इसको देखकर ही मुझे एकदम गुस्सा चढ़ता है।

उनकी नौकरानी ने मुझसे कहा कि आप क्यों उनके पीछे पड़े हैं? वह कहते हैं कि मुझे देखकर ही गुस्सा चढ़ता है। मैंने कहा कि वे सज्जन, महात्मा आदमी, उनको कहीं गुस्सा चढ़ सकता है! अरे, कभी नहीं! तुम मुझे भीतर तो ले चलो, मुझे मिलाओ तो, मैं देखूं कैसे गुस्सा चढ़ता है! अरे, उसने कहा, आप बिल्कुल, और यह बात मत कह देना आप, नहीं तो मेरी भी नौकरी गयी! वह तो आपका नाम लेकर एकदम भनभना जाते हैं, कि इस आदमी ने मुझसे कहा कि तुम मेरे पैर की धूल हो। मैंने कहा, मैंने यह कहा नहीं, यह उन्होंने ही कहा था, मैंने सिर्फ स्वीकृति दी।

मगर शिष्टाचार का हिसाब और है, यहां मतलब कुछ और होते हैं।

तो इतना ही भर ख्याल रखना कि तुम जो कहते हो मैं निपट अज्ञानी हूं, ऐसा किसी शिष्टाचार के कारण मत कहना। मैं मानता हूं कि तुम हो। इसमें कोई अड़चन की बात ही नहीं है। यहीं से तो शुरुआत हो सकती है बात की। तुम अगर दिल में यह सोचते होओ कि मैं कहूंगा कि अहा, क्या विनम्र व्यक्ति हो, क्या निरहंकारी व्यक्ति हो, ऐसा मैं नहीं कहूंगा। वे अहंकार के पोषण करने के बड़े सुगम और बड़े प्राचीन तरीके हैं।

लोग निरहंकारिता में भी अहंकार को पाल लेते हैं। और अज्ञान के पीछे भी यह आशा रखते हैं कि लोग अब कहेंगे कि हां, ज्ञानी। और अभी मैंने दो दिन पहले एक ज्ञानी की पिटाई की है। तो तुमने सुनी होगी! तुमने सोचा होगा, सबसे पहले मैं साफ ही कर दूं! नहीं तो मैं पिटाई ही करने लगूं। मगर पिटाई मुझे करनी हो तो मैं छोड़ता ही नहीं! तुम लाख कुछ करो!

इसको तुम अपने भीतर साफ-साफ समझ लेना कि मैं अज्ञानी हूं। यह सत्य की तरफ पहला कदम है। कहीं भूलकर भी, भ्रांति से भी, जरा-सा भी ज्ञान का आग्रह मत रखना। क्योंकि उतना ही आग्रह अड़चन हो जाएगी। और कभी-कभी जरा-सा रेत का तिनका आंख में पड़ जाए, तो काफी होता है, आंख बंद हो जाती है। जरा-सा तिनका और पहाड़ सामने दिखायी पड़ता था, जरा-सा तिनका आंख में पड़ गया कि पहाड़ दिखायी नहीं पड़ता।

और ऐसी छोटी-छोटी भ्रांतियां हमारी आंखों में पड़ जाती हैं कि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, दिखायी नहीं पड़ता। ज्ञानी को नहीं दिखायी पड़ता, सिर्फ अज्ञानी को दिखायी को पड़ सकता है।

लेकिन इसका यह मतलब मत समझा लेना, मारवाड़ी हो, इसलिए मुझे समझा-समझा कर कहना पड़ रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अज्ञानी हो गये तो बस परमात्मा मिल गया! परमात्मा पाने के लिए तुम अज्ञानी मत हो जाना। अगर पाने की आकांक्षा से अज्ञानी हुए तो अज्ञानी हुए ही नहीं। वह तो ज्ञान की ही तरकीब रही। वह तो होशियारी ही रही। फिर भी होशियारी रही। कि चलो, अज्ञानी हुए जाते हैं; अगर यह तरकीब है परमात्मा के मिलने की, तो मारवाड़ी बच्चा क्या नहीं कर सकता!

यह मैं तरकीब नहीं बता रहा हूं परमात्मा को पाने की, अज्ञान में परमात्मा का दर्शन होता है, यह सहज परिणाम है। यह सहज घटना घटती है। यह उसका फल नहीं है। इसलिए तुम साधन नहीं बना सकते अज्ञान को। साधन बनाना है तो चूक ही जाना है।

तुम कहते हो, "आपका साहित्य जब से पढ़ना शुरू किया तब से संन्यासी होने का भाव जाग्रत हुआ और मैं यहां चला आया।"

अब यहां क्या कर रहे हो जब भाव जाग्रत हो गया? क्या भाव को सुलाने की कोशिश कर रहे हो? कि सो जा मेरे राजा बेटा, सो जा मुन्ना! कि देख, न उठा सिर! कि अब तो सो जा, देख यहां तक आ गया, अब क्या करना है, अब सो जा, अब सब देख लिया, अब सो जा! जब भाव जग गया है, तो अब देर न करो!

लेकिन आदमी ऐसा ही है! बुरा भाव जगे तो तत्क्षण करता है। जैसे किसीको गाली देना हो, तो उस वक्त तुम यह नहीं कहते कि कल देंगे, जी! कोई आज ही क्यों दें! चौबीस घंटे बाद आएंगे। उस वक्त तुम उसी वक्त निपटारा करते हो। अगर वह आदमी भी कहे कि भई, ऐसी जल्दी क्या है, अब कल निपटेंगे, सुलझेंगे, आज इतना ही रहने दो, तो भी तुम कहोगे कि यह तूने गाली दी, हम रुक नहीं सकते अब! बदला अभी देना पड़ेगा!

अच्छा काम करना हो तो भाव उठ जाता है, फिर तुम काहे की प्रतीक्षा कर रहे होते हो!

ध्यान रखो, बुरा कुछ करना हो तो रुकना, ठहरना! क्योंकि जो रुका, वह रुका। जो अभी नहीं किया, उसने फिर कभी नहीं किया। जब भाव त्वरा में हो, तो अगर बुरा भाव हो और रुक जाओ तो उससे रुक जाओगे, अगर भला भाव हो, उससे रुक जाओ तो उससे रुक जाओगे। गणित एक ही है। करना हो तो तत्क्षण कर लेना चाहिए।

जब यह नेक इरादा उठा है, तो क्या हिसाब बिठा रहे हो! अब क्या सोच रहे हो? धीरे-धीरे भाव मर जाएगा। हजार बातें उठ आएंगी, हजार विचार उठ आएंगे कि लेने में फायदा क्या, हानि क्या; घर क्या परिणाम होगा, पत्नी क्या कहेगी, पिता क्या कहेंगे, मां क्या कहेगी, जाति के लोग क्या कहेंगे, बिरादरीवाले--चंदूलाल इत्यादि क्या कहेंगे? इस सब सोच-विचार में खो जाएगा भाव। भाव तो बड़ी नाजुक चीज है। जैसे गुलाब की कोमल पखुड़ी। इतनी आपा-धापी मचायी विचारों की कि कहीं दब जाएगा गुलाब का फूल, कहीं खो जाएगा। ऐसे सुंदर भाव जब जगते हों तो छलांग ले लेनी चाहिए।

तुम कहते हो--भाव जाग्रत हुआ, मैं यहां चला आया। लेकिन अभी संन्यासी नहीं हो पाया हूं।

अब हो जाओ, भैया! बहुत देर वैसे ही हो गयी! फिर कल का क्या भरोसा? मैं आज यहां हूं, कल नहीं। आज तुम्हारे भीतर भाव है, कल नहीं।

एक सज्जन ने तीन दिन पहले पत्र लिखा कि मैं आपके हाथ के द्वारा ही संन्यास लेना चाहता हूं। आप इसका उत्तर दें।

मैं आज उत्तर देने जाने ही वाला था कि आज उनका दूसरा प्रश्न आ गया कि कृपा करके अब उस प्रश्न का उत्तर न दें, भाव जा चुका है।

अभी तीन दिन में ही भाव चला गया। अच्छा ही हुआ मैं तीन दिन रुक गया, नहीं तो ये बिचारे फंस जाते। ये मुसीबत में पड़ जाते। इनको बड़ी अड़चन हो जाती।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन भागी आयी और कहा कि वे फांसी लगा रहे हैं। मैंने कहा, तू फिकर मत कर, मैं उनको जानता हूं, वे फांसी-वासी नहीं लगाएंगे! उसने कहा, आप मानिए! वे दरवाजा बंद किये हैं और दरवाजा खटखटाती हूं तो वे कहते हैं, गड़बड़ मत करो, मैं फांसी लगा रहा हूं। मैंने कहा, इतनी देर लगती है क्या फांसी लगाने में? लगा-लुगू चुके होते! अभी बोलते है न? कहा, हां, बोलते हैं। तो मैंने कहा, बिल्कुल फिकर मत कर! पर उसने कहा, नहीं, आप चलो। तो मैं गया।

मैंने दरवाजा खटखटाया, उन्होंने कहा, दरवाजा मत खटखटाओ, मैं फांसी लगा लूंगा। मैंने कहा, लगाना है तो जल्दी लगाओ। क्योंकि दरवाजा हम लोग कब तक रुके रहें, न खटखटाएं? दूसरे भी काम हैं। तुम लगा-लूगू लो जल्दी से। तो हम फिर तुम्हारा निपटारा करके दूसरा काम करें। उसने कहा, आप कब आ गये! मैंने कहा कि तुम्हारी पत्नी ले आयी। तुम कितनी देर से दरवाजा बंद किये हो? तीन-एक घंटे हो गये। तो तीन घंटे से तुम क्या कर रहे हो, फांसी नहीं लगी? उसने कहा, अब आप से क्या छिपाना! मैंने कहा, दरवाजा खोला। दरवाजा खोलकर उसने जल्दी से दरवाजा बंद करके मुझे भीतर लिया और कहा, पत्नी को भीतर मत आने देना।

मैंने देखा कि वे स्टूल पर खड़े हैं और दोनों कंधों में रस्सी बांधे हुए हैं। मैंने कहा, यह कोई फांसी लगाने का ढंग है? अरे, गले में लगाओ महाराज! कि पहले लगायी थी गले में, लेकिन उससे बड़ी सांसे घुटती हैं!

अब ये हाथ में बांधे हुए तीन घंटे से खड़े हैं। कि तुम तीन जन्म खड़े रहो! ऐसे कहीं फांसी लगेगी।

अब ये तीन दिन पहले इनको भाव उठा था, तीन दिन में ही खतम हो गया! बड़े जल्दी खतम हुआ। वह भाव भी कोई ढंग का नहीं था। उसमें बेईमानी थी। मेरे हाथ से ही संन्यास लेना है! आशा रखी होगी कि न मैं हां कहूंगा और न यह झंझट आएगी। फिर शायद तीन दिन में डरे होंगे, कहीं मैं हां कह ही दूं, फिर? अब कहीं कह ही न दूं, कह ही न दूं--मेरा क्या भरोसा! मैं कोई भरोसे का आदमी हूं! सो उन्होंने सोचा, बेहतर है झंझट खतम करो। तीन दिन लगाए कंधे में रस्सी खड़े रहे, स्टूल पर। अब उनने देखा होगा कि कहीं जवाब दे ही दे कि अच्छा, आ जाओ आज! और आज मैं देने जा ही रहा था जवाब कि अच्छा, अब आज आ ही जाओ, अब गले में ही लगा लें! काहे को, ऐसे हाथ में लगाए कब तक खड़े रहोगे? सो उन्होंने पहले ही छुटकारा कर लिया कि अब आप जवाब देना ही मत; अब भाव नहीं रहा है।

भाव का क्या भरोसा? आज है, कल न हो। अरे, सुबह था और सांझ न हो। जब प्रश्न लिखा था तब रहा हो और अब न रहा हो। भाव तो यूं जाता है, हवा की तरंग की तरह। इसका कुछ भरोसा है?

तुम कहते हो, "मगर जबसे यहां आया हूं, एक शांति अनुभव कर रहा हूं।

इतने जल्दी अनुभव न करो! कहीं यह भी तरकीब न हो कि अब शांति तो अनुभव हो ही गयी, अब संन्यास क्या लेना, अब घर चलो, भैया! अपनी दुकानदारी देखें, अपना कारबार देखें!

जब बिना संन्यास लिये सिर्फ संन्यासियों के आसपास की हवा में तुम्हें शांति मिल रही है, तो संन्यास लेने से क्या नहीं घटित होगा! इसकी थोड़ी कल्पना करो! थोड़ी कल्पना को दौड़ाओ! थोड़े भाव को पंख दो, उड़ाओ! थोड़ा और ऊंचे उड़ो। थोड़ा आकाश को देखो। जब यहां सिर्फ आने मात्र से तुम्हें एक अजीब सी शांति का अनुभव हो रहा है, तो जब तुम प्रविष्ट हो जाओगे इस गंगा में, जब डुबकी मारोगे, जब स्नान करोगे, जब रंग

जाओगे इस रंग में, इस रौनक में; इस गौरव में, इस गरिमा में, तो क्या संभव नहीं होगा! असंभव भी संभव हो सकता है।

अब तुम कहते हो कि "मैं एक वर्ष के लिए सब कामधाम छोड़कर एकांत साधना में डूबना चाहता हूं।"

मेरे हिसाब में यहां तुम्हारा मारवाड़ी प्रवेश कर रहा है। तुमने सोचा होगा कि पहले एक वर्ष साधना करके देख लेनी चाहिए--एकांत--फिर आगे हिसाब करेंगे! पहले अनुभव तो कर लो कि ध्यान से क्या मिल सकता है, एकांत से क्या मिल सकता है--कुछ मिलता भी है कि नहीं? तो एक साल पहले पूरा अनुभव कर लो। जब पक्का हो जाए कि हां, सौदा करने योग्य है, तो फिर संन्यास लेंगे।

अब संन्यास की बात नहीं पूछी है उन्होंने? भाव भी उठा है, लेकिन यह अब एक नयी बात उठा दी कि "एक वर्ष के लिए सब कामधाम छोड़कर एकांत साधना में डूबना चाहता हूं।"

मगर एक वर्ष के लिए! ध्यान रखना, उसमें अवधि है। कि अरे, एक ही वर्ष की बात है! छुट्टी ले रहे हैं एक वर्ष की। फिर एक वर्ष के बाद फिर कूद पड़ेंगे मैदान में। और अगर नहीं जंचा यहां कुछ, कि एकांत और मौन में कुछ मिलना है, तो एक साल में जो गंवाया है, एक साल भर जरा दुगुनी मेहनत करके उसको वापस पा लेंगे, उसमें क्या हर्जा है, क्या इतना नुकसान है!

संन्यास पहले घटित होने दो। और मैं नहीं कहता कि एकांत में जाओ जाओ और कामधान छोड़कर जाओ। क्योंकि एकांत में तुम करोगे क्या? कामधाम की ही सोचोगे कि अब एक साल के बाद जब घर लौटेंगे, तो कामधाम को कैसा जमाना है? करोगे क्या एकांत में? उपवास के दिन आदमी करता क्या है? कल क्या-क्या भोजन करेगा, इसका विचार करता है। और क्या करेगा? भोजन का विचार ही आदमी उपवास के दिन करता है। और तो दिनों में दूसरे भी काम रहते हैं।

एकांत में तुम क्या करोगे अभी? और फिर मैं कोई एकांत का ऐसा पक्षपाती नहीं हूं। कोई एक साल के लिए घर-द्वार छोड़कर जाने की जरूरत नहीं है। संन्यासी बनो, घर में ही चौबीस घंटे में एक घंटा एकांत के लिए निकल लो, तेईस घंटा काम में डूबे रहो। बस, वह एक घंटा ज्यादा सार्थक होगा। यह एक साल ज्यादा सार्थक नहीं होगा। और एकदम ज्यादा दवा भी नहीं। नहीं तो कभी-कभी नुकसान हो जाता है। भारी नुकसान हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन को पता चल गया कि इस आश्रम में एक फल है जिसको खा लेने से आदमी जवान हो जाता है। सो पहले तो वह खुद ही खोजता फिरा, लेकिन वृक्ष यहां बहुत हैं और उसको कुछ समझ में न आया, सो उसने संत महाराज से पूछा। कि भैया, अब तू ही बात दे! संत ने उसे एक फल तोड़ कर दे दिया। वह घर ले गया। सोचा तो था खुद ही खाने के लिए कि बूढ़ा आदमी हूं तो खा लूंगा। लेकिन जैसे ही उसने पत्नी को दिखाया, पत्नी ने झपट्टा मारा और खा ही गयी--इसके पहले कि वह कुछ कहे। वह एकदम जवान हो गयी। वह तो बूढ़े के बूढ़े रहे, वह जवान हो गयी। और एकदम उसने, पत्नी ने मुल्ला का हाथ पकड़ा और कहा, चलो जरा, ब्लू डायमंड हो आएं! मुल्ला बहुत बचना चाहे कि लोग क्या कहेंगे, मगर पत्नी अब जवान भी हो गयी--ऐसे ही पत्नी मजबूत होती हैं और अब जवान भी हो गयी, सो मुल्ला को घसिटना पड़ा।

दूसरे दिन आया और उसने संत का कालर पकड़ लिया एकदम। कहा कि तबियत तो हो रही है कि तेरी गर्दन दबा दूं। हद्द कर दी तूने! ऐसी फजीहत हुई! ब्लू डायमंड में उसने मुझे पटक दिया। भीड़ इकट्ठी हो गयी। मेरे कपड़े-लत्ते निकाल दिये और वह तमाशा आधा घंटा दिखाया कि मुंह दिखाने योग्य नहीं रहा, अब बस्ती में निकल नहीं सकता, ऐसी की तैसी उस फल की!

इतना नाराज होने लगा कि संत महाराज ने कहा, आप घबड़ाओ न, परेशान न होओ, एक फल और ले जाओ, उसको एक और खिला दो, उसका पिछला जनम हो जाएगा! फिर एक छोटी सी बग्घी गाड़ी ले लेना, उसमें उसको बिठाकर घुमाते रहना, तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।

एक वर्ष के लिए सब कामधाम छोड़ कर जाओगे, सोचोगे क्या, करोगे क्या वहां बैठ कर? कामवासना पकड़ेगी, धनवासना पकड़ेगी, जमाने भर के ख्याल आएंगे, विचार उठेंगे। उससे कुछ लाभ नहीं होगा।

मैं भागने के लिए नहीं कहता। न छोड़ने के लिए कहता हूं। जीवन को सरलता से रूपांतरित होने दो। घर में ही रहो, संन्यासी होकर रहो। तेईस घंटे परिवार के लिए, संसार के लिए, एक घंटा अपने लिए--एक घंटा मेरे लिए--बस, उस एक घंटे से काम हो जाएगा। वह एक घंटा तुम्हारे जीवन में पर्याप्त क्रांति ले आएगा। उतना पर्याप्त है। जरा सी चिनगारी काफी है!

आज इतना ही।